भूमिका

"कोटि चन्द्र सुशीतल,
निताइ पद कमल।"

आस्वादन

श्रीचैतन्य महाप्रभु के अभिन्न तनु हैं, श्रीनित्यानन्द। उनके स्वभाव के अनुराग–वलय में विश्व बन्धुत्व का सुर ध्वनित होता है। श्रीनित्यानन्द तत्त्व विश्वपालनी शक्ति की विचित्र महिमा से युक्त है। अनन्त, शेष, संकर्षण के रूप में चरित्र का सौन्दर्य परिस्फुटित है। सख्य रस की चरम पुष्टि के साधन में श्रीनित्यानन्द समुन्नत, समुज्ज्वल मूर्ति हैं। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर तथा कविराज कृष्णदास के संस्कृत भाषा में नित्यानन्द वन्दना में उनके दिव्य चरित्र की ओजस्विता पूर्ण तथा माधुर्य से परिमण्डित असाधारण आकर्षण क्षमता श्रीकृष्णनाम के प्रचार में सार्वजनिक निर्भीक रूप से विस्तार में अभय, अमृत, अशोक भूमिका जाति के इतिहास में स्मरणीय अध्याय है। निर्मल चरित्र न होने पर मानव प्रकृति का रूपान्तर करके दुर्विनीत, अधम, पतित, लांछित, चरित्र भ्रष्ट को शुद्धाचार में प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता। इस कठिन व्रत के पालन में श्रीनित्यानन्द के "जगाइ–माधाइ" उद्धार में निर्भीक क्षमा मूर्ति की शुभ्र यशोमण्डित रूपमाधुरी का सन्धान प्राप्त करते हैं। उसके अलावा कृष्ण विमुख लोगों को कृष्णोन्मुख करने के प्रेमान्दोलन में श्रीचैतन्य महाप्रभु के संकल्प को रूपान्तरित करने में कर्म विग्रह अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीनामाचार्य हरिदास ठाकुर का महान त्यागादर्श स्मरणीय है। श्रीनित्यानन्द प्रभु की लीला की विशिष्टता है पहले उद्धार बाद में दान।

चरित्र शुद्धि के आन्दोलन के मार्ग दर्शक हैं श्रीनित्यानन्द प्रभु। इस प्रकार के करुण, दयालु, सरल प्रेमी महान दिव्य चरित्र के अधिकारी, निरभिमानी, अक्रोधी, परमानन्द नगरवासियों की जड़ भोग तन्द्रा, मोह निद्रा की जकड़न के त्याग के मन्त्र मन्द्रमधुर श्रीकृष्ण नाम के ध्वनि विग्रह श्रीनित्यानन्द की महिमामृत आस्वादन लुब्ध अन्तरंग बन्धुवर्य श्रीराधाकुण्ड समाश्रयी सर्व वैष्णवादरणीय महन्त श्रीमद् अनन्तदास बाबाजी महाराज

श्रीचैतन्यभागवत ग्रन्थ में श्रीवृन्दावनदास ठाकुर की भावाविष्ट लेखनी के मुख से श्रीमन्महाप्रभु के स्तवावलम्बन से मुखर हो उठे हैं। शास्त्राभिज्ञ कुशल बुद्धि ग्रन्थकार ने अक्लान्त श्रम की निपुणता से अनुभव की ओस में नहाये हुये श्रद्धार्घ्य को चर्चित मानस भावना से दिव्य कुसुम चयन से इस माला को पिरोने में महाजीवन श्रीनित्यानन्द के स्वरूप, लीला तथा तत्त्व को सहज, सरल, सरस तथा सजीव भाव से वर्णन किया है। "अतिगूढ़ नित्यानन्द एइ अवतारे चैतन्य जानाय यारे से जानिते पारे ॥" श्रीचैतन्य की कृपा न होने पर श्रीनित्यानन्द तत्त्व के आस्वादन की किसी की भी सामर्थ्य नहीं है। मंजरीभाव साधना के अन्यतम प्रचारक साधक श्रेष्ठ श्रीमत् कुंजबिहारीदास बाबाजी महाराज के साथ मेरे पिताश्री तथा श्रीगुरुदेव श्रीमन्नित्यानन्द वंशीय प्रभुपाद प्राण किशोर गोस्वामी महाराज का भजन स्मरण मानस की अन्यतम मधु वार्त्तालापन का गहरा सम्बन्ध था। इस स्निग्ध सम्बन्ध के सूत्र से ही हम दोनों मानस लीला में पुष्प चयन के लिये उद्यमी हैं। अनन्त श्रीराधाकुण्ड के भूषण स्वरूप कुंजबिहारीदास बाबाजी महाराज के कृपाश्रित हैं, परम प्रीतिमय वर्तमान में श्रीराधाकुण्ड के महन्त श्रीमद् अनन्तदास बाबाजी महाराज।

परम भागवत गौड़ीय वैष्णव श्रीग्रन्थ की लीला स्मृति की स्वर्णपेटिका के तुल्य बाबाजी महाराज दिव्य रसास्वादन के क्षेत्र में श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी के कृपाभिषिक्त हृदय से श्रीनित्यानन्द महिमा के आस्वादन में अग्रसर हुये हैं।

श्रीमन्नित्यानन्द की कृपा शक्ति के परमाश्रय में श्रीरघुनाथ की श्रीचैतन्य चरण प्राप्ति की एकनिष्ठ अभिलषित साधन सिद्धि का चरम तथा परम भाव संकेत लोभातुर जीवनादर्श का अनुपम सौन्दर्य ही परिस्फुटित है तथा आनुगत्य के अनुराग की अनुकूलता साधक प्रवर बाबाजी महाराज के स्वाभाविक जीवन की साधना की परिणति ने ही प्राप्ति की भावना को लालसा की स्वर्णिम किरण की छटा में पूर्ण स्पष्ट सार्थकता से माधुर्य मण्डित बना दिया है।

श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु ने क्षमा के आयुध से सुसज्जित होकर प्रेम वर्षी अनुराग का उद्गीरण करके सभी को अपना बना लिया है। ऋषियों की मिलन-प्रार्थना व्याकुलता से पूर्ण विश्व की एकता के मन्त्र के घनीभूत विग्रह हैं श्रीनित्यानन्द। श्रीनित्यानन्द का स्वरूप हृदय में अनुभव के माध्यम से

उनके विश्वमय प्रेम के साम्राज्य के गठन की उदार महान संकल्प की दिशा हमारी आँखों के सामने उद्‌भासित होगी।

शास्त्रानुगत्य ही भजन की नींव है। स्वकपोल कल्पित वक्तव्य तथा शास्त्र सिद्धान्त एक वस्तु नहीं है। वर्तमान युग में स्वकपोल कल्पित वक्तव्य ही सुसज्जित करनेकी परिपाटी से सिद्धान्त बनता जा रहा है, इस विषय में शास्त्र के ज्ञाताओं की मौन उदासीनता से अनुमोदन की उदारता आने वाले समय में अशास्त्रीय भावनाओं को बढ़ावा देगा शास्त्र वाक्यों के संग्रह में सुनिपुण अध्यवसायी निर्भीक निरपेक्ष पारदर्शी, शास्त्र की समीक्षा से सिद्धान्त की स्थापना में सुदृढ़ चेता पुरुषों का आलस्य हीन प्रयास तथा प्रचेष्टा सभी कालों में अभिनन्दनीय होती है। स्ववक्तव्य के प्रकाश में यथेच्छा चारिता की दौड़ है लेकिन शास्त्र सिद्धान्त की प्रतिष्ठा में शृंखलित विधिनीति का सौन्दर्य विज्ञान पकड़ बनाये हुये हैं। स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनके प्रत्यक्ष तथा परोक्ष कृपा के परिकर वृन्दों की दृष्टि तथा अनुभव की गहराई से श्रीनित्यानन्द की पावन मूर्ति को शास्त्र विद् ग्रन्थकार ने शाश्वत काल के मन्दिर में सुप्रतिष्ठित किया है। शास्त्र गूढ़ परमवेद्य नित्यानन्द तत्त्व के रूपान्तर में भावोद्यान के पुष्प चयन में कृतार्थ पुरुष बाबाजी महाराज की श्रीनित्यानन्दैक शरण माधुरी, अनुपम अलौकिक लेखनी के मुख से आस्वादन तथा भोग की प्रचुरता हमारे दैन्य तथा हताश से भरे जीवन में केवल प्रेम की वेदी रचना नहीं है, दिल में श्रीनित्यानन्द प्रभु की एक साथ ऐसी तथा मानव प्रेम प्रतिभोज्ज्वल मूर्ति की पावन लीला के अमृत आस्वादन का लोभ जगाती है। "श्रीनित्यानन्द-महिमा" ग्रन्थ में शास्त्र, पदावली, वेदव्यास श्रीचैतन्यलीला के वृन्दावनदास ठाकुर, कविराज कृष्णदास की भावना का विचित्र सिद्धान्त कुसुम संग्रन्थन चारुता से सुनिर्मल भजन धारा का सन्धान प्राप्त करते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु के परिकर वृन्द, स्वयं श्रीमन्महाप्रभु तथा उनके बाद के महाजनों ने स्पष्टाक्षरों में जिस प्रकार श्रीनित्यानन्द तत्त्व की बातों की घोषणा की है, उसकी अन्यथा बातें उनके ही अनुभव के नित्य सत्य को अस्वीकार, अनादर करने को बाध्य हो जाते हैं। पतित पावन, अधम-तारण, करुणा निर्झर श्रीनित्यानन्द प्रभु के दुर्लभ चरित्र के रहस्यों का आस्वादन अत्यन्त मुश्किल है। श्रीचैतन्य-महाप्रभु की नाम-प्रेमदान लीला की नींव की प्रतिष्ठा में श्रीनित्यानन्द प्रभु की दान वैभव सहिष्णुता तथा त्यागपूत चरित्र माधुर्य की

वीर्य दीप्ति–लावण्यमय आँसुओं की बाढ़ में प्रेमोन्माद, ध्यानानन्द में नामानन्द में उन्मत्त उत्ताल सहज चंचल स्वभाव एकमात्र प्रेमसिन्धु के तरंग उच्छ्वास के साथ ही तुलना करने के योग्य है, फिर भी वर्णन शायद अधूरा रह गया। परम प्रीतिमय बाबाजी महाराज मेरे अत्यन्त अन्तरंग मानस भावना के अन्यतम सुहृत हैं। उनके द्वारा अध्ययन किये हुये पराविद्या के अभ्यास में पूर्वापर सिद्धान्तरत्न के संग्रह में, अनुभव की कसौटी पर सोने की परख करने की भाँति आग्रह यत्न, श्रमशीलता, दृढ़तापूर्वक आदर सत्कार की रीति, सबसे ऊपर निष्ठा श्रद्धापूत, परम्परा प्राप्त शास्त्र वाक्यों के आनुगत्य तथा अभिलाषा को ही साधन रीति के सुकुमार ने अम्लान चिरन्तन आदर्श को ही सुप्रतिष्ठित किया है। ग्रन्थ की भाषा सहज, सरल, आड़म्बर रहित, युक्तिपूर्ण तथा निर्मल प्रसाद के गुणों से समृद्ध है।

श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु के पाँच सौ बीसवें वार्षिक आविर्भाव के पूत स्मरण के अर्घ्य के रूप में यह शरण मन्त्र साहित्य मालिका भक्त, विद्वान्, प्रेमी सज्जन तथा नित्यानन्द तत्त्वान्वेषी अनुरागी जनों के चित्त के सौन्दर्य की पोषकता में सहायक हो। आशा करता हूँ बंग साहित्य के क्षेत्र में तथा श्रीनित्यानन्द चरित्र चिन्तन के शाश्वत सम्पद्–गृह में इसकी शोभा हमेशा उज्ज्वल बनी रहेगी। श्रीश्रीनिताइ–गौर प्रभु के युगल चरणों में इस ग्रन्थ के बहुतायत में प्रचार की प्रार्थना करता हूँ।

श्रीश्रीबलदेव आविर्भाव
(राखी पूर्णिमा)
रविवार 21 अगस्त 1994
4 था भाद्र, 1401 सन् बंगला।

वैष्णव दासानुदास
श्रीविनोद किशोर गोस्वामी
सभापति – चालता बागान
गौड़ीय वैष्णव सम्मिलनी
सभापति – अनंग मोहन हरिसभा
सभापति– हाबड़ा गौड़ीय वैष्णव सम्मिलनी
प्रतिष्ठाता तथा साधारण सम्पादक
श्रीकृष्ण चैतन्य मण्डल
संहति भारती – कोलकाता

प्रथम संस्करण का निवेदन

चिन्मय या अलौकिक भगवत्तत्त्व केवल शास्त्र वाक्यों से तथा भ्रम–प्रमादरहित महाजन की वाणी से ही जाना जाता है। इस सम्बन्ध में किसी का भी स्वकपोल कल्पित मतवाद विद्वान्जनों के लिये ग्राह्य नहीं है। अत्यन्त गूढ़ या परम रहस्यमय श्रीश्रीनित्यानन्द तत्त्व की आलोचना का मुझ जैसे अज्ञानान्ध व्यक्ति का किसी प्रकार का अधिकार नहीं है। विशेषरूप से परम निगूढ़ छन्नावतार श्रीश्रीगौरांग लीला में अत्यन्त दुर्ज्ञेय तत्त्व श्रीश्रीनित्यानन्द जिस महान उद्देश्य की साधना के लिये विश्व में अवतीर्ण हुये हैं तथा श्रीहरिनाम प्रचार के उद्देश्य से विश्व के सर्वत्र जिस अनौखी उद्दीपनामयी आनन्द शक्ति को संचारित किया है, भक्ति की अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि के अलावा अन्य किसी उपाय से ही वह ज्ञात होने की सम्भावना नहीं है। लेकिन श्रीगौरांग के युग के मनुष्य को प्रेम भक्ति प्रदाता निताइ की महिमा के साथ यथा किंचित् परिचित होना ही होगा, क्योंकि परम रहस्यमय श्रीनिताइचाँद के अति दुर्ज्ञेय तथा दुरवगाह आचरण से साधारण के संदिग्ध होने की सम्भावना अधिक है। लेकिन श्रीगौरांग की श्रीमुख की वाणी—

नित्यानन्दे याहार तिलेक द्वेष रहे।
दास हइलेओ सेइ मोर प्रिय नहे॥ **(चै.च.)**

अर्थात् नित्यानन्द तत्त्व में एक बूँद भी अवज्ञा पैदा होने पर श्रीगौर भजन सम्पूर्ण रूप से निष्फल हो जाता है। श्रीगौरांगदेव ने स्वयं तथा श्रीगौर के पार्षदों ने जिस प्रकार से श्रीनित्यानन्द तत्त्व का वर्णन किया है उसमें गड़बड़ होने से ही इस सुमहान तत्त्व के प्रति अवज्ञा सुनिश्चित है तथा अपराध भी अवश्यम्भावी है। इस समय काल के प्रभाव से श्रीनित्यानन्द तत्त्व के सम्बन्ध में सर्वत्र ही स्वकपोल कल्पित विभिन्न प्रकार के मतवाद का प्रचार तथा प्रसार बढ़ रहा है। इस कारण श्रीनित्यानन्द की महिमा के बारे में कुछ लिखने की वासना दिल में निहित रहने पर भी योग्यता की कभी के कारण इतने दिन वह सम्भव नहीं हुआ।

कोलकाता शोभा बाजार स्थित श्रीश्रीनित्यानन्द आश्रम के वर्तमान अध्यक्ष श्रीश्रीनित्यानन्द वंशावतंस परम पूज्य प्रभुपाद श्रीयुत निताइचाँद गोस्वामी महोदय ने लम्बे समय तक प्रतिवर्ष नियम सेवा में या कार्तिक व्रत में श्रीराधाकुण्ड में रहकर यहाँ के आनन्दोत्सव की शोभा बढ़ायी है। उसी सिलसिले में वह श्रीश्रीनित्यानन्द की आविर्भाव तिथि के उपलक्ष्य में उनके कोलकाता स्थित आश्रम में अकसर एक पक्ष की अवधि तक चलने वाले उत्सव के आयोजन में श्रीनिताइ कथा कहने के लिये इस अयोग्याधाम को सादर आमन्त्रित करते थे। मैं भी अवसर तथा सुविधानुसार किसी-किसी वर्ष इस सेवा का सौभाग्य प्राप्त करता था। सबसे पहले उन्होंने ही मुझे उनकी सभा में वर्णित नित्यानन्द की महिमा वली को ग्रन्थाकार में प्रकाशित करने की प्रेरणा प्रदान की। उसके साथ उनकी कृपा से धन्य श्रीमान् अरुण कुमार नन्दी (एडवोकेट कोलकाता हाइकोर्ट) का अत्यन्त आग्रह ही इस ग्रन्थ के प्रकाशन का मूल हेतु है।

पिछले ज्येष्ठ के महीने में श्रीमान् हिमांशुपाल जलवायु परिवर्तन के लिये मुझे शिलांग में अपने मित्र श्रीयुत कैलाशचन्द्र साहनी के ग्रीष्मावास में लेकर गये। वहाँ एकान्त में पन्द्रह दिन से अधिक रहते हुये इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार की। श्रीश्रीनित्यानन्द वंशावतंस परम पूज्य प्रभुपाद श्रीयुत विनोद किशोर गोस्वामी महोदय मेरे विद्यागुरु परमाराध्य श्रीश्रीकृष्ण चरण दास बाबाजी महाराज काव्य-व्याकरण, वैष्णव दर्शन तीर्थ, न्यायाचार्य (स्वर्ण पदक प्राप्त) महोदय के विरह उत्सव की स्मृति सभा में सादर आमन्त्रित होकर श्रीवृन्दावन पधारे। उस समय श्रीवृन्दावन के केशीघाट ठौर में उन्होंने ब्रज के विद्वान्, विशिष्ट पण्डित, वक्ता तथा भजनानन्दी प्राचीन वैष्णवगणों की सभा में उनकी देशव्यापी प्रचार संस्था संहति भारती का एक महत्त्वपूर्ण अधिवेशन भी किया। तब उन्होंने स्वयं कृपा करके इस दीन के वृन्दावन स्थित आश्रम में शुभागमन किया तथा इस ग्रन्थ की अत्यन्त चमत्कार गवेषणात्मक तथा तथ्य पूर्ण भूमिका काव्य कला की लालित्य पूर्ण भाषा में लिखकर दी। इस प्रकार की वाग्मितार पाण्डित्य तथा भावावेग पूर्ण भूमिका लेखा लेखन कला के कुशल श्रीप्रभुपाद के द्वारा ही सम्भव है।

इसके पश्चात् श्रीनवद्वीप निवासी श्रीश्रीनित्यानन्द वंशावतंस परम पूज्य प्रभुपाद श्रीयुत तरुण कृष्ण गोस्वामी महोदय श्रीराधाकुण्ड में आकर श्रीश्रीनित्यानन्द महिमा ग्रन्थ के मुद्रण की बात सुनकर श्रीकुण्ड में इस दीन

की कुटिया में स्वयं आये तथा अत्यन्त आग्रह के साथ मुद्रण की सहायता के लिये पाँच सौ रुपये देकर ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये उत्साह प्रदान किया। परम श्रद्धेय परम भागवत श्रीयुत बद्रीनारायण भागवत भूषण (कनाड़ा) महोदय ने सम्पूर्ण मुद्रण के लिये आर्थिक सहायता प्रदान की है। श्रीकुण्डेश्वरी के श्रीचरणों में उनकी रति, मति की प्रार्थना करता हूँ। मुद्रणालय की विभिन्न प्रकार की असुविधा के कारण ग्रन्थ के प्रकाशन में विलम्ब हुआ है- इसके लिये प्रतीक्षारत विद्वान् भक्तों के निकट क्षमा प्रार्थी हूँ। स्नेहास्पद श्रीमान् हरे कृष्णदास तथा श्रीमान् श्याम चरणदास ने प्रूफ संशोधनादि मुद्रणालय विषयक सभी कार्य सम्पन्न किया है, उनकी भजनोन्नति की कामना करता है। अत्यन्त सावधानी के बावजूद कुछ त्रुटियाँ रह गयी हैं, विद्वान् भक्तवृन्द संशोधन करते हुये ग्रन्थास्वादन करें तो इस दीन का प्रयास सार्थक होगा।

इत्यलम्।

सम्पादक
बसन्त पंचमी
श्रीचैतन्याब्द - 508

सर्वाधिकार सुरक्षित

समर्पण

श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु में जिनका प्रगाढ़ अनुराग था, मेरे परमाराध्य श्रीश्रीगुरु महाराज के साथ जो चिर सौहार्द सूत्र में आबद्ध थे, जिसकी अनुपम भागवती कथा की रसमाधुरी की धारा श्रोताओं के दिल में आनन्द पुलक जगाती थी, जिनके कृपाशीर्वाद से ही इस अयोग्याधम को श्रीकुण्डवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन झालिदा (पुरुलिया; निवासी परम श्रद्धास्पद नित्यधाम गत श्रीश्रीकमलाकान्त चक्रवर्ती महाशय के श्रीकरकमलों में यह "नित्यानन्द महिमा" ग्रन्थ परम भक्ति के साथ समर्पित हुआ।

कोई हैडिंग नहीं है।

अपने सिर के गर्मरक्त की धारा से जगाइ-माधाइ के युगयुगों से संचित महा-महा-पातक पुंज को एक क्षण में धो दिया। सिर का रक्त न देकर अन्य उपाय से भी निताइ उनका उद्धार कर सकते थे, लेकिन वह तो नित्यानन्द हैं, नित्यानन्द के बिना उनमें और कुछ भी नहीं है। वह विश्व में किसी को भी निरानन्द में नहीं रख सकते। यदि जीवों के निरानन्द को दूर करके उन्हें नित्यानन्द दान करने के लिये उनके सिर का रक्त देने की आवश्यकता हो तो वह उसे भी हास्य मुख से दान करने के लिये प्रस्तुत हैं। दयालु निताइ के इस प्रयास या आचरण से विश्व के मनुष्यों ने उनसे यही शिक्षा प्राप्त की। धन्य-धन्य है निताइचाँद की करुणा, धन्य हैं निताइ के युग के मनुष्य।

श्रीग्रन्थकार

श्रीश्रीनित्यानन्द महिमा

चित्त दृढ़ हआ लागे महिमा ज्ञान हैते। (चै.च.)

बड़गूढ़ नित्यानन्द एइ अवतारे।
चैतन्य देखाय यारे से देखिते पारे॥ (चै.भा.)

श्रीश्रीराधाकुण्ड निवासी
पण्डित श्रीमद् अनन्तदास बाबाजी महाराज
के द्वारा
संकलित
हिन्दी भाषा में अनुवादक
वैष्णव पद रजः कृपा प्रार्थी
डा. ब्रज दुलाल गोस्वामी
(गौर कथा, चण्डी चिन्ता, स्तवावली इत्यादि
अनेक ग्रन्थों के अनुवादक)
सुपुत्र. स्व. कविराज वनमाली गोस्वामी
(वैद्य शास्त्री)

256. गोपीनाथ बाग, वृन्दावन-पिन-281121, (उ.प्र.) (भारत)
सम्पर्क सूत्र : 9897815697

परिशिष्ट

इस परिशिष्ट में हमने श्रीश्रीनित्यानन्द की महिमा को व्यक्त करने वाला श्रीश्रीवृन्दावनदास कृत श्रीश्रीनित्यान्दाष्टकम्, श्रीनवद्वीपचन्द्र गोस्वामी द्वारा रचित उसका पद्यानुवाद, श्रीश्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत श्रीश्रीनित्यानन्दाष्टकम् तथा पद कल्पतरु में लिखे हुये कई पदों को उद्धृत किया है।

श्रीश्रीनित्यानन्दाष्टकम्

शरच्चन्द्रभ्रान्तिं स्फुरदमल कान्तिं गजगतिं
हरि प्रेमोन्मत्तं घृत-परम-सत्त्वं स्मितमुखम्
सदा घूर्णन्नेत्रं कर-कलित वेत्रं कलिभिदं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधिं॥1॥

शरद चन्द्रेर भ्रान्ति, स्फुरित निर्मल कान्ति,
मत्त-गज गति महाशूर।
हरि-प्रेमे महामत्तं, गृहीत परम सत्त्व,
हास्यमय मुख सुमधुर॥
सर्वदा उद्घूर्ण नेत्र, करेते गृहीत वेत्र,
कलि बिदरये देखि याँरे,
सेइ प्रभु नित्यानन्द, भजन-तरुरकन्द,
निरवधि भजि आमि ताँरे॥1॥

रसानामागारं स्वजन-गण सर्वस्वमतुलं
तदीयैकप्राण-प्रतिम-वसुधा-जाह्नवा-पतिम्।
सदा प्रेमोन्मादं परम विदितं मन्द मनसां
भजे नित्यानन्दं भजन तरु-कन्दं निरवधिं॥2॥

रसेर आगार प्रभु, स्वजन-सर्वस्व विभु,
तुलना नाहिक त्रिभुवने।
तदीयैक प्राणोपमा, वसुधा-जाह्नवी-रामा,
पति भावे सेवे श्रीचरणे॥

सर्वदा उन्मत्त प्रेमे, विदित ये त्रिभुवने,
मन्दमति चिनये याँहारे।
सेइ प्रभु नित्यानन्द, भजन-तरुर कन्द,
निरवधि भजि आमि ताँरे ॥2॥

शची-सूनु-प्रेष्ठं निखिल जगदिष्टं सुखमयं
कलौ मज्जज्जीवोद्धरण-करोद्दाम करुणम्॥
हरेराख्यानाद् वा भव जलधि-गर्वोन्नति हरं
भजे नित्यान्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि॥3॥

शचीनन्दनेर प्रेष्ठ, निखिल जगतेर इष्ट,
नित्य सुख मय कलेवर।
कलिमग्न जीवोद्धारे, उद्दाम करुणा करे,
गौर हरि बोलाय निरन्तर॥
भवाब्धिर गर्वोन्नति, गौर हरि नामे रति,
याचि विलाय सेइ सर्व्वद्वारे।
सेइ प्रभु नित्यानन्द, भजन तरुर कन्द,
निरवधि भजि आमि ताँरे॥3॥

अये भ्रातर्नृणां कलि - कलुषिणां किं नु भविता
तथा प्रायश्चित्तं रचय यदनायासत इमे।
ब्रजन्ति त्वामित्थं सह भगवता मन्त्रयति यो
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु कन्दं निरवधिं॥4॥

ओहे भाइ कि करिबे, कलि कलुषित जीवे,
रच तादेर प्रायश्चित्त तथा।
याहे सुखे सशरीरे, पाय तोमाय सब नरे,
तबे घुचे मोरमनो व्यथा॥
एइ रूपे नाना रंगे, श्रीकृष्ण चैतन्य-संगे,
मन्त्रये ये नीति-अनुसारे।
सेइ प्रभु नित्यानन्द, भजन-तरुर कन्द,
निरवधि भजि आमि ताँरे॥4॥

यथेष्टं रे भ्रातः! कुरु हरि-हरि ध्वानमनिशं
ततो वः संसाराम्बुधि-तरण दायो मयि लगेत्।
इदं वाह्वास्फोटैरहति रटयन् यः प्रति गृहं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि॥5॥

यथा इष्ट साध्य भाइ, सदा नाम गाओया चाइ,
गौरहरि ध्वनि कर मुखे।
तबे से संसार-सिन्धु, सन्तरणे भय बिन्दु,
नाहि; आमिदायी,-थाक सुखे॥
बाहु स्फोट करि एइ, बोलाय बलये येइ,
नाम-प्रेम याचे सर्व द्वारे।
सेइ प्रभु नित्यानन्द, भजन-तरुर कन्द,
निरवधि भजि आमि ताँरे॥5॥
बलात् संसाराम्भोनिधि-हरण कुम्भोद्भव महो
सतां श्रेयः सिन्धून्नति कुमुद बन्धुं समुदितम्।
खल-श्रेणी-स्फुर्ज्जेत्तिमिर-हर-सूर्य-प्रभमहं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधिं॥6॥
जीवेर भावाब्धि त्रास, सबले करिते नाश,
अगस्त्य समान तेजमय।
सतेर कल्याण-सिन्धु, बाड़ाइते येन इन्दु,
नवद्वीपे सतत उदय॥
सूर्य-प्रभा सम येइ, उदित भुवने एइ,
हरितेछे खल अन्धकारे।
सेइ प्रभु नित्यानन्द, भजन तरुर-कन्द,
निरवधि भजि आमि ताँरे॥6॥
नटन्तं गायन्तं हरिमनुवदन्तं पथि पथि-
ब्रजन्तं पश्यन्तं स्वमपि नदयन्तं जनगणम्।
प्रकुर्व्वन्तं सन्तं सकरुण-दृगन्तं प्रकलनाद्
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधिं॥7॥
नाचे गाय हरि बले, पथे पथे जाय चले,
आपना आपनि हेरे रंगे।
जीवेर दुरित देखि, सकरुण भावे आँखि,
अपांगे चाहिया महाभंगे॥
उच्च सिंहनाद करि, नाशि जीवेर मद करि,
भक्ति करि तारये संसारे।
सेइ प्रभु नित्यानन्द, भजन-तरुर कन्द,
निरवधि भजि आमि ताँरे॥8॥

सुविभ्राणं भ्रातुः कर सर सिजं कोमल तरं
मिथो वक्तालोकच्छ्वलित-परमानन्द-हृदयम्।
भ्रमन्तं माधुर्यैरहह! मदयन्तं पुरजनान्
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधिं॥9॥
महाप्रभुर कर पद्म, सुकोमल अति हृद्य,
निज करे करिया धारण।
परस्परे श्रीवदन, दोंहे करि आलोकन,
प्रेमानन्दे हृदय मगन॥
भ्रमये माधुर्य-ठामे, मत्त करि पुरजने,
प्रेमानन्द ये देय संसारे।
सेइ प्रभु नित्यानन्द, भजन-तरुर कन्द,
निरवधि भजि आमि ताँरे॥10॥
रसानामाधारं रसिक वर सद्वैष्णव धनं
रसागारं सारं पतित-पतितारं स्मरणतः।
परं नित्यानन्दाष्टकमिदमपूर्वं पठतियः
तदङ्घ्रि-द्वन्द्वाब्जं स्फुरतु नितरां तस्य हृदये॥11॥
रसागार रसाधार, सज्जनेर धनागार,
पतित उद्धार श्रवणेते।
हेन नित्यानन्द पाय, स्मरिले ये ज्वाला जाय,
प्रेम पाइ याँहार नामेते॥
एरूप अपूर्व्व येइ, नित्यानन्दाष्टक एइ,
पड़ये ये भक्ति सह कारे।
नित्यानन्देर पाद पद्म, ताहार हृदये सद्य,
स्फुरिबेइ विदित संसारे॥12॥

इति श्रीवृन्दावन दास-ठक्कुर-विरचितं
श्रीश्रीनित्यानन्दाष्टकम् सम्पूर्णम्।

श्रीश्रीनित्यानन्दाष्टकम्

प्रेमे घूर्णितः नयन पूर्णित, चञ्चल मृदु गति निन्दितं,
बदन मण्डल, चाँद निरमल, वचन अमृत खण्डितम्।
असीम गुण गणे, तारिले जगजने, मोहे काहे करु क्वचितम्,
जयति जय, वसु-जाह्नवा प्रिय, देहि मे स्वपदान्तिकम्॥1॥

मिहिरमण्डल, श्रवणे कुण्डल, गण्डमण्डले दो लितं,
किये निरुपम, मालतीरदाम, अंगे अनुपम शोभितम्।
मधुर मधु मदे, मत्तमधुकर, चारु चौदिके चुम्बितं,
जयति जय, वसु-जाह्नवा प्रिय, देहि मे स्वपदान्तिकम्॥2॥

आजानु लम्बितु बाहु सुवलित, मत्त करिवर निन्दितं,
भाय्या भाय्या बलि, गभीर डाकइ, करु दशदिग् भेदितम्।
अमर किन्नर, नाग नरलोक, सर्वचित्त सुदर्शितं,
जयति जय, वसु-जाह्नवा प्रिय, देहि मे स्वपदान्तिकम्॥3॥

क्षणे हुहुंकृत, लम्फ झम्फ कृत, मेघ निन्दित गर्जितः,
सिंह डमरु, क्षीण कटि तट, नीलपट्टवासशोभितम्।
सो पहुँ धूनी तीरे, सघने धावइ, चरण-भारे मही कम्पितं,
जयति जय, वसु-जाह्नवा प्रिय, देहि मे स्वपदान्तिकम्॥4॥

अवनी मण्डल, प्रेमे बादल, करल, अवधौत धावितं,
तापी दीनहीन, तार्किक दुर्ज्जन, केह ना भेल वञ्चितम्।
श्रीपद पल्लव, मधुर माधुरी, भकत भ्रमर सुख पीतं,
जयति जय, वसु-जाह्नवा प्रिय, देहि मे स्वपदान्तिकम्॥5॥

ओमणि-मञ्जीर, चारु तरलित, मधुर मधुर सुनादितं,
अतुल रातुल, युगल पदतल, अमल कमल सुराजितम्।
तेजिया अमर, अवनी हिम कर, निताइ नख शोभितं,
जयति जय, वसु-जाह्नवा प्रिय, देहि मे स्वपदान्तिकम्॥6॥

याँहार भये, कलि भुजग भागल, भेल सबे हर्षितं,
तपन किरणे, जनु तिमिर नाशइ, तैछे कमल सुराजितम्।
दुरित भये क्षिति, अवहि आतुर, भाव तारकरु नाशित,
जयति जय, वसु-जाह्नवा प्रिय, देहि मे स्वपदान्तिकम्॥7॥

ईषत हसइते, झलके दामिनी, कामिनी गणमनमोहित,
सो पहुँ धनी तीरे, नाजानि कार भावे, अवनी उपरे गिरितम्।
वचन बलइते, अधर कम्पइ, बाहु, तुलि क्षणे रोदितं,
जयति जय, वसु-जाह्नवा प्रिय, देहि मे स्वपदान्तिकम्॥8॥

॥ इति श्रीकृष्णदास-कविराज गोस्वामीपाद विरचितं
श्रीश्रीनित्यानन्दाष्टकं सम्पूर्णम्॥

श्रीश्रीमन्नित्यान्नद की महिमा व्यंजक पदावली

जय जय नित्यानन्द रोहिणी कुमार।
पतित उद्धार लागि दुबाहु पसार॥
गद गद मधुर मधुर आध बोल।
यारे देखे तारे प्रेमे धरि देइ कोल॥
डगमग लोचन घुरये निरन्तर।
सोनार कमले येन फिरये भ्रमर॥
दयार ठाकुर निताइ पर दुःख जाने।
हरिनामेर माला गाँथि दिल जग जने॥
पाप पाषण्डी यत करिल दलने।
दीन हीन जने कैला प्रेम वितरणे॥
आहा गौरांग बलि पड़े भूमि तले।
शरीर भिजिल निताइयेर नयनेर जले॥
वृन्दावन दास मने एइ विचारिल।
धरणी-उपरे किबा सुमेरु पड़िल॥1॥

★ ★ ★

अञ्जन गञ्जन, लोचन रञ्जन,
गति अति ललित सुठान।
चलत खलत पुन, पुन उठि गरजन,
चाहनि बंक नयान॥
गौर गौर बलि, धन देइ करतालि,
कञ्ज नयाने बहे लोर।
प्रेमेते अवश हैया, पतितेरे निरखिया,
आइस आइस बलि देह कोर॥
हुहुंकार गरजन, मालसाट पुनः पुन,
कत कत भाव विथार।

कदम्ब केशर जनु, पुलके पुरल तनु,
भाइयार भावे मातोयार॥
आगम निगम पर, वेद विधि अगोचर,
ताहा कैल पतितेरे दान।
कहे आत्मा राम दासे, ना पाइल कृपा लेशे,
रहि गेल पाषाण समान॥2॥

★ ★ ★

देख देख मोर नित्यानन्द।
भुवन मोहन प्रेम आनन्द॥
प्रेम दाता मोर निताइ चाँद।
जने जने देइ प्रेमेर फाँद॥
निताइ-वरण कनक=चाँपा।
विधि दिले रूप अञ्जलि मापा॥
देखिते निताइ सवाइ धाय।
धरि कोले निते सबारे चाय॥
निताइ बोले बोल गौर हरि।
प्रेमे नाचे बाहु ऊर्ध्व करि॥
नाचत निताइ गौर रसे।
वञ्चित ए राधा वल्लभ दासे॥3॥

★ ★ ★

निताइ गुण मणि आमार निताइ गुण मणि।
आनिया प्रेमेर वन्या भासाइल अवनी॥
प्रेमेर वन्या लइया निताइ आइला गौड़ देशे।
डुबिल भकतगण दीन हीन भासे॥
दीन हीन पतित पामर नाहि बाछे।
ब्रह्माद दुर्लभ प्रेम सबकारे याचे॥
आवध्य करुणा सिन्धु काटियामुहान।
घरे घरे बुले प्रेम अमियार वाण॥
लोचन बले मोर निताइ येवा ना भजिल।
जानिया शुनिया सेइ आत्मघात कैल॥4॥

★ ★ ★

पँहु मोर नित्यानन्द राय।
मथिया सकल तन्त्र, हरिनाम महामन्त्र,
करे घरि जीवेर बुझाय॥
चैतन्य अग्रज नाम, त्रिभुवन अनुपाम,
सुर धनी तीरे करि थाना।
हाट करि परबन्ध, राजा हैल नित्यानन्द,
पाषण्डी दलन वीर वाना॥
रामाइ सुपात्र हैया, राजा आज्ञा चालाइया
कोतोयाल हैला हरि दास।
कृष्ण दास हैला डाडूया, केहो जाइते नारे भाइया,
लिखन पढ़े श्रीनिवास॥
पसारिया विश्वम्भर, आर प्रिय गदाधर,
आश्चर्य चत्वरे बिकि किनि।
गौरीदास हासि हासि, राजार निकटे बसि,
हाटेर महिमा किछु शुनि॥5॥

★ ★ ★

निताइ केवल पतित जनार बन्धु।
जीवेर चिर पुण्य फले, विहि आनि मिलाइले,
रंकमाझे रतनेर सिन्धु॥
दिग नेहारिया जाय, डाके पँहु गोराराय,
धरणी ते पड़े मुरछिया।
प्रिय सहचर मेलि, निताइयेर करे धरि,
कान्दे चाँद बदन हेरिया॥
नव गुञ्जारुण आँखि, प्रेमे छल छल देखि,
सुमेरु वाहिया मन्दाकिनी।
मेघ गभीर स्वरे, भाइ भाइ रव करे,
पद भरे कम्पित मेदिनी॥
निताइ करुणा मय, जीवे दिल प्रेमाश्रय,
हेन दया जगते विदित।
निज नाम संकीर्त्तने, उद्धारिला जगजने,
वासु केने हइला वञ्चित॥6॥

★ ★ ★

संकीर्त्तने नित्यानन्द नाचे।
प्रिय पारिषदगण काछे॥
गोविन्द माधव घोषेर गान।
शुनि केवा धरये पराण॥
पतितेर गलाय धरिया।
कान्दे पहुँ सकरुण हैया॥
गद गद कहे पतितेरे।
शुनि याहा पाषाण बिदरे॥
तो सभार धारि बहु धार।
धर धर प्रेमेर पसार॥
तो सभार दुर्गति नाशिब।
ब्याजेर सहित प्रेम दिब॥
तारा प्रेमे चाहे मुख चान्दे।
गलाय धरिया तार कान्दे॥
से हेन करुणा सोङरिया।
वासु घोष मरये झुरिया॥

★ ★ ★

गजेन्द्र गमने निताइ चलये मन्थरे।
यारे देखे तारे भासाय प्रेमेर पाथारे॥
पतित दुर्गति पापीर घर घर गिया।
ब्रह्मार दुर्ल्लभ प्रेम दिछेन याचिया॥
येना लय तारे कय दन्ते तृण धरि।
आमारे किनिया लओ बोल गौरहरि॥
तो सभार लागिया कृष्णेर अवतार।
शुन भाइ गौरांग सुन्दर नदीयार॥
शुनिया कान्दये पापी चरणे धरिया।
पुलके पुलके अंग गर गर हिया॥
तारे कोले करि निताइ जाय आन ठाम।
हेन मते प्रेमे भासाओल पुर ग्राम॥
दैवकीनन्दने बोले मुञि अभागिया।
डुबिलु विषय कूपे निताइ ना भजिया॥४॥

★ ★ ★

नाचे नित्यानन्द, भुवन आनन्द,
वृन्दावन गुण शुनियारे।
बाहु युग तुलि, बोले हरि हरि,
चलन मन्थर भाँतिया रे॥
किबा से माधुरी, वचन चातुरी,
गदाधर मुख हेरिया रे।
माधव गोविन्द, श्रीवास मुकुन्द,
गाओत ओ रस भरिया रे॥
नाचे नित्यानन्द चान्द रे।
कहे गद् गद्, चले पथ आध,
पातिया प्रेमेर फान्द रे॥
ओ चान्द बदने, हास सघने,
अरुण लोचन भंगिया रे।
कुसुम हार, हियार उपर,
सुघड़ रंगिया संगिया रे॥
रातुल चरणे रतन नूपुर,
रंगेर नाहिक ओर रे।
मनेर आनन्दे, श्रीनिवास सूत,
गति गोविन्द चित भोर रे॥9॥

★ ★ ★

निताइ मोर जीवन-धन निताइ मोर जाति।
निताइ विहने मोर आर नाहि गति॥
संसार सुखेर मुखे तुल्या दिब छाइ।
नगरे मागिया खाब गाइया निताइ॥
ये देशे निताइ नाइ से देशे ना जाब।
निताइ विमुख जनार मुख ना देखिब॥
गंगा याँर पाद जल हर शिरे धरे।
हेन निताइ ना भजिया दुःख पाइमरे॥
लोचन बले मोर निताइ येवा नाहि माने।
अनले भेजाइ तार माझ मुख खाने॥10॥

★ ★ ★

निताइ पद कमल, कोटी चन्द्र सुशीतल,
याँर छायाय जगत जुड़ाय।
हेन निताइ बिने भाइ, राधाकृष्ण पाइते नाइ,
दृढ़ करि धर निताइर पाय॥
से सम्बन्ध नाहि यार, वृथाइ जन्म गेल तार,
कि करिब विद्या कुले तार।
मजिया संसार सुखे, निताइ ना बलि मुखे,
से पापी अधम सभार॥
अहंकारे मत्त हैया, निताइ पद पासरिया,
असत्य के सत्य करि माने।
ए भव संसार माझे, निताइ चाँद येना भजे,
तार जन्म हैल अकारणे॥
निताइ चाँद दया हबे, ब्रजे राधा कृष्ण पावे,
कर रांगा चरणेर आशे।
नरोत्तम बड़ दुःखी, निताइ मोरे कर सुखी,
राखि रांगा चरणेर पाशे॥11॥

★ ★ ★

गूढ़ रूपे राम, पुरे निज काम,
अनंग मञ्जरी हैया।
रास रस काजे, वैसे ब्रजमाझे,
आनन्दे गोविन्द लैया॥
हरि हरि! के बुझे रामेर रीत।
पुरुष प्रकृति, अनन्त मूरति,
धरि पहुँ करे प्रीत॥
राइयेर भगिनी, अनुजा आपनि,
पिन्धन नीलिम वास।
बसन्त केतकी, जाती, यूथी जिति,
मृदुल मृदुल भाष॥
सख्य देहे सखा, दास्ये दास लेखा
वात्सल्ये लालक प्राय।
दास वृन्दावन, मानस रतन,
बुझिया सोंपल ताय॥12॥

★ ★ ★

श्रीश्रीनित्यानन्द-महिमा

श्रीश्रीगौरलीला में श्रीनित्यानन्द तत्त्व अत्यन्त ही गूढ़ या परम रहस्यमय है। श्रीचैतन्य भागवत में श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने लिखा है- "बड़ गूढ़ नित्यानन्द एइ अवतारे।" श्रीभगवान् की लीला के मूल सहाय श्रीसंकर्षण श्रीकृष्ण-राम आदि लीलावतार गणों के साथ प्रतिकल्प में ही अवतीर्ण हुआ करते हैं। श्रीरामावतार में श्रीलक्ष्मण के रूप में, श्रीकृष्ण-अवतार में श्रीबलराम के रूप में, श्रीगौर अवतार में श्रीनित्यानन्द के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। अन्यान्य अवतारों की अपेक्षा इस अवतार में अर्थात् श्रीगौरावतार में श्रीनित्यानन्द 'अत्यन्त गूढ़' या अत्यन्त ही रहस्यमय हैं, अतः मानव बुद्धि के सर्वथा दुर्ज्ञेय (कठिनाई से जाने-जाने के योग्य हैं।)

श्रीमन्महाप्रभु ने ही लीला में नित्यानन्द तत्त्व की गूढ़ता का सम्पादन किया है। श्रीनित्यानन्द के साथ प्रथम बार मिलन से पहले श्रीमन्महाप्रभु सब वैष्णवों से एक दिन अचानक बोले-

आरे भाइ दिन दुइ तिनेर भितरे।
कोनो महापुरुष एक आसिब एथारे॥ (चैः भाः)

जिस दिन श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु श्रीनवद्वीप में श्रीनन्दनाचार्य के घर आये, उस दिन प्रातःकाल श्रीगौरसुन्दर सब वैष्णवों के साथ मिलकर बोले- "भक्तवृन्द! मैंने जिस महापुरुष के आगमन की बात तुम लोगों से कही थी वह अवश्य ही आ गये हैं। क्योंकि पिछली रात को मैंने एक अनोखा सपना देखा था! एक तालध्वज रथ मेरे दरवाजे के सामने आकर खड़ा हो गया, उस रथ के ऊपर एक प्रकाण्ड शरीर वाले महापुरुष थे। उनके कन्धे पर एक विशाल स्तम्भ था, बाँयें हाथ में बेंत के साथ बँधा हुआ एक कमण्डल था। नीला वस्त्र धारण किये हुये थे, सिर पर नीले वस्त्र की पगड़ी की कैसी अनुपम शोभा थी! बाँयें कान में एक अत्यन्त विचित्र कुण्डल था। उनकी आकृति देखकर लगा वह मानों ब्रज के बलदेव हों। बार-बार वह प्रश्न पूछने लगा क्या यह निमाइ पण्डित का मकान है? इस प्रकार का परम प्रचण्ड महा अवधूत वेश तथा इस प्रकार की उद्दण्ड मूर्ति मैंने और कभी नहीं देखी। उस

मूर्ति का दर्शन करके मुझे अत्यधिक सम्भ्रम तथा विस्मय का उदय हुआ। मैंने उनसे पूछा– 'आप कौन महानुभाव हैं? उन्होंने हँसते हुए, कहा– "अरे भाई! कल तुम्हारे साथ मेरा परिचय होगा।" श्रीचैतन्यभागवत के वर्णन में—

"सबाकार स्थाने प्रभु कहेन आपने।
आजि आमि अपरूप देखिल स्वपने॥
तालध्वज एक रथ संसारेर सार।
आसिया रहिल रथ आमार दुयार॥
तार माझे देखि एक प्रकाण्ड शरीर।
महाएक स्तम्भ स्कन्ध-गति नहे स्थिर॥
बेत्र-बान्धा एक काना कुम्भ बाम हाते।
नील वस्त्र परिधान, नीलवस्त्र माथे॥
बाम-श्रुति मूले एक कुण्डल विचित्र।
हलधर-भाव तान बुझिये चरित्र॥
'एइ बाड़ी निमाइ-पण्डितेर हय हय।'
दशबार बिशबार एइ कथा कय॥
महा-अबधूत-वेश परम प्रचण्ड।
आर कभु नाहि देखि एमन उद्दण्ड॥
देखिया सम्भ्रम बड़ पाइलाम आमि।
जिज्ञासिल आमि-'कोन्! महाजन तुमि॥
हासिया आमारे बले एइ भाइ हय।
तोमार आमार कालि हषे परिचय॥

यह बात कहते ही श्रीमन्महाप्रभु का भावान्तर उपस्थित हो गया। वह बाह्यज्ञान रहित होकर श्रीबलदेव के आवेश में आविष्ट हो गये। 'मद्य लाओ, मद्य लाओ' कहते हुये हुंकार करने लगे! भक्तगणों का चित्त भय से तथा विस्मय से अभ्भिभूत हो गया। श्रीवास पण्डित बोले– 'प्रभु! तुम जो मदिरा चाहते हो, वह मदिरा तो तुम्हारे पास ही है, कृपा करके जिसको देते हो वह मदिरा– वही तो उसे पाता है।' प्रभु की आँखें लाल हो गयीं। वह हलधर के भाव में शरीर के अंगों को हिलाने डुलाने लगे। कुछ समय पश्चात् हल्का सा बाहरी ज्ञान दिखायी पड़ने पर भक्तगणों से बोले–

हेन बुझि मोड चित्त लय एक कथा।
कोनो महापुरुषेक आसियाछे एथा॥

पूर्वे आमि बलियाछों तोमा-सबार स्थाने।
कोनो महाजन-संगे हैब दरशने॥
चलहरि दास, चल श्रीवास-पण्डित।
चाह गिया देखिके आइसे कोन भित॥ (वही)

श्रीमन्महाप्रभु के आदेश से श्रीवास तथा हरिदास तुरन्त उस महापुरुष की खोज में निकल गये। नवद्वीप के सभी जगह खोजते-खोजते दिन का लगभग तीन पहर बीत गया। कहीं भी किसी आगन्तुक की खबर न पाकर वे लौटकर आ गये तथा प्रभु के चरणों में निवेदन किया—

निवेदिल आसि दोंहे प्रभुर चरणे।
उपाधिक कोथाह नाहि दरशने॥
कि वैष्णव, कि संन्यासी, कि गृहस्थ स्थल।
पाषण्डीर घर आदि देखिल सकल॥
चाहिलाम सर्व नवद्वीप यार नाम।
सबे ना चाहिल प्रभु गिया अन्यग्राम॥
दोंहार बचन शुनि हासे गौरचन्द्र।
छले बुझा इल - बड़ गूढ़ नित्यानन्द॥ (वही)

इस अत्यन्त गूढ़ श्रीनित्यानन्द को जानने तथा देखने का एकमात्र उपाय ही श्रीवृन्दावनदास ठाकुर के वर्णन में मिलता है- "चैतन्य देखाय यारे से देखिते पारे।" (चै: भा:)। श्रीवास, हरिदास की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ईषत्हास्य के साथ (मन्द मुस्कान के साथ) बोले, "भले ही तुम लोगों को उनकी खबर न मिली हो, लेकिन वह आये हैं- यह सुनिश्चित है। वह अत्यन्त गूढ़तत्त्व हैं, अत: वह कहीं गूढ़ रूप से ही अवस्थान कर रहे हैं। चलो सभी उन्हें खोजने चलें। भक्तवृन्द आनन्दोल्लास के साथ 'कृष्ण कृष्ण' कहते हुये श्रीमन्महाप्रभु के साथ चले। श्रीमन्महाप्रभु सबको साथ लेकर सीधे श्रीनन्दनाचार्य के घर जाकर उपस्थित हुये। भक्तगणों ने श्रीमन्महाप्रभु के साथ नन्दनाचार्य के घर पर जो देखा, उसे हम श्रीचैतन्य भागवत की भाषा में ही आस्वादन करेंगे—

बसियाछे एक महापुरुष-रतन।
सबे देखिलेन येन कोटि-सूर्य सम॥
अलक्षित-आवेश बुझन नाहि जाय।
ध्यान-सुखे परिपूर्ण हासये सदाय॥

महाभक्तियोग प्रभु बुझिया ताँहार।
गण सह विश्वम्भर हैला नमस्कार॥
× × × × ×
नित्यानन्द सम्मुखे रहिला विश्वम्भर।
चिनिलेन नित्यानन्द आपन-ईश्वर॥
हरिषे स्तम्भित हैला नित्यानन्द-राय।
एक-दृष्टि हइ विश्वम्भर-रूप चाय॥
रसनाय लिहे येन दरशने पान।
भुजे येन आलिंगन नासिकाये घ्राण॥
एइमत नित्यानन्द हइया स्तम्भित।
ना बले ना करे किछु सबेइ विस्मित॥

जिस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं अत्यन्त गूढ़ नित्यानन्द का पार्षदगणों को दर्शन कराया उसी प्रकार उन लोगों के श्रीनित्यानन्द की चेष्टा को समझ न पाने पर विस्मित होने पर महाप्रभु ने स्वयं श्रीनित्यानन्द को अवगत कराने का उपाय भी रच लिया। श्रीवास पण्डित को इशारे से प्रभु ने श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्णमाधुर्यमय एक श्लोक पाठ करने का आदेश किया। प्रभु का इशारा समझ कर तुरन्त श्रीवास पण्डित ने भावरस में सराबोर होकर मीठे गले से श्लोक का पाठक किया—

बर्हापीड़ं नटवर वपुः कर्णयोः कर्णिकारं
विभ्रद्वासः कनक कपिशं वैजयन्तीञ्च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधर सुधया पूरयन गोप वृन्दै-
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीत कीर्त्तिः॥

(भा. 10-21-5)

पूर्व रागवती ब्रज सुन्दरियों के श्रीकृष्ण के वेणुनाद के माधुर्य के वर्णन में प्रवृत्त होने पर उनके चित्त में श्रीकृष्ण के जिस मधुर रूप की स्फूर्ति हुई थी, श्रीशुकदेव उसका वर्णन कर रहे हैं- "सिर पर मोर मुकुट, दोनों कानों में कर्णिकार (कनेर) के पुष्प, परिधान में स्वर्णिय पीत वस्त्र तथा गले में वैजयन्ती की माला धारण करके नटवर नागर श्रीकृष्ण ने अधर सुधा से मुरली के छिद्रों को भरते हुये गोप बालकों के द्वारा प्रशंसित होकर अपने पदचिहनों से सुशोभित वृन्दाविपिन में प्रवेश किया।" श्रीवास के मुख से श्लोक श्रवण करते ही श्रीनित्यानन्द आनन्द के आवेश से मूर्छित हो गये। उनका शरीर स्पन्दन रहित हो गया, महा आनन्द की मूर्छा से वह अचेत हो

गये!! महाप्रभु के बारम्बार श्लोक का पाठ करते रहने पर श्रीनित्यानन्द प्रभु महाविशाल हुंकार, गर्जन, नृत्य, भूमि पर गिर पड़ना, लोट-पोट होना इत्यादि अद्‌भुत भाव की उन्मत्तता में प्रभु महा व्याकुल हो पड़े। श्रीवृन्दावन दास ठाकुर के वर्णन में प्रभु की प्रेमोन्मत्तता का यह भावचित्र प्रत्यक्ष की भाँति नयनों के समक्ष तैर जाता है—

पुनः पुनः श्लोक शुनि बाढ़ये उन्माद।
ब्रह्माण्ड भेदये हेन शुनि सिंह नाद॥
अलक्षिते अन्तरीक्षे पड़ये आछाड़।
सबे मने भावे किबा चूर्ण हैल हाड़॥
अन्येर कि दाय वैष्णवेर लागे भय।
रक्ष कृष्ण रक्ष कृष्ण सबै सङरय॥
गाड़ागड़ि जाय प्रभु पृथिवीर तले।
कलेवर पूर्ण हैल नयनेर जले॥
विश्वम्भर-मुख चाहि छाड़े घन श्वास।
अन्तरे आनन्द क्षणे क्षणे महा-हास॥
क्षणे नृत्य, क्षणे गान, क्षणे बाहुताल।
क्षणे जोड़े जोड़े लम्फ देइ देखि भाल॥
देखिया अद्‌भुत कृष्ण उन्माद-आनन्द।
सकल-वैष्णव संगे कान्दे गौरचन्द्र॥ (चै.भा.)

इस प्रकार का अत्यन्त विशाल विपुल भाव-वैभव महासंकर्षण श्रीबलदेव के सिवाय और कहीं पर भी सम्भव नहीं है। यह तो साधारण भाव नहीं है, यह विश्व को बहाने वाली उत्ताल तरंगमय, महाप्रलय पयोधि की भाँति भावोच्छास की महा बाढ़ है!! विश्व के मानव ने प्रलयकारी महाकाल भैरव के महाताण्डव नृत्य का भीषण विवरण श्रवण किया है, कवियों ने महाकाश में बिखरे हुये जटा जाल व्योमकेश श्रीधूर्जटी की सृष्टि संहारक महाताण्डव नृत्य लीला का ओजस्वी भाषा में वर्णन किया है- इसमें अद्‌भुत रस, वीररस, रौद्र रस का आविर्भाव अवश्य होता है, लेकिन महा संकर्षण के भी अंशी साक्षात् श्रीबलदेव के महाप्रेम रसमय आविर्भाव श्रीमन्नित्यानन्द की महाताण्डव लीला में वीररस का अथवा रौद्र रस का प्रकाश नहीं है। यह महाप्रेम रस सिन्धु का अश्रुत पूर्व (पहले न सुना हुआ), अदृष्टचर अनिर्वचनीय महाविशाल भावोच्छास विशेष है। जिस सुविशाल भावोच्छास में केवल श्रीनन्दनाचार्य का घर ही नहीं- केवल नवद्वीप ही नहीं- सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड प्रवाहित तथा विक्षुब्ध हो गया

था- इसमें कोई संशय नहीं है। श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं जिस प्रकार लीला पार्षद गणों को अत्यन्त गूढ़ नित्यानन्द को दिखाकर एवं नित्यानन्द का अलौकिक भावोच्छास जगाकर उन लोगों को अत्यन्त रहस्यमय नित्यानन्द को अवगत कराया है, उसी प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु के स्तवन आदि के उद्देश्य से विश्व मानव को अत्यन्त गूढ़ नित्यानन्द तत्त्व के साथ परिचित कराया है। क्यों कि श्रीचैतन्य देव के न बताने पर कोई भी निताइ को नहीं जान सकता।

श्रीचैतन्यभागवत में मध्य खण्ड के द्वादश अध्याय में दिखायी पड़ता है, श्रीनवद्वीप में श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु बाल्य भाव में सर्वत्र विचरण करते हैं। एक दिन ' श्रीमन्महाप्रभु के पास आये हैं, बाल्य भाव में दिगम्बर, मुखमण्डल अत्यन्त मधुर उदार हास्य रस युक्त। श्रीनयनों से निरन्तर अपूर्व आनन्द की धारा प्रवाहित हो रही है। "मोर प्रभु निमाइ पण्डित नदीयार" कहते हुये। निरन्तर हुँकार कर रहे हैं। श्रीचैतन्यभागवत की भाषा में—

दैवे एक दिन यथा प्रभु बसि आछे।
आइलेन नित्यानन्द ईश्वरेर काछे॥
बाल्य भावे दिगम्बर हास्य श्रीवदने।
सर्वदा आनन्द धारा बहे श्रीनयने॥
निरवधि एइ बलि करेन हुंकार।
मोर प्रभु निमाइ पण्डित नदीयार॥

श्रीमन्महाप्रभु श्रीनिताइचाँद की महाज्योतिर्मय परम सुन्दर दिगम्बर मूर्ति का दर्शन करके हंसने लगे। शीघ्र अपने सिर का कपड़ा खोलकर उन्हें पहनाया। बाल्यावेश में श्रीनित्यानन्द केवल उदार हंसी ही हँसते चले हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं श्रीनिताइचाँद के श्रीअंग में दिव्य चन्दन आदि सुगन्धित लेप लगाया, गले में दिव्य माला पहनाकर अपने सामने बैठने के लिये आसन दिया। श्रीनित्यानन्द के दिव्यासन पर बैठने पर भक्तवृन्दों के सम्मुख प्रभु ने स्वयं हाथ जोड़कर श्रीमन्नित्यानन्द की स्तुति प्रारम्भ की—

नामे नित्यानन्द तुमि, रूपे नित्यानन्द।
एइ तुमि नित्यानन्द राम मूर्तिमन्त॥
नित्यानन्द-पर्यटन, भोजने व्यभार।
नित्यानन्द बिना किछु नाहिक तोमार॥

तोमारे बुझिते शक्तिमनुष्येर कोथा?
परम सुसत्य-तुमि यथा, कृष्ण तथा॥   **(चैः भाः)**

श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं अत्यन्त गूढ़ या रहस्यमय निताइ तत्त्व इस छोटी सी बात में गूढ़रूप से ही व्यक्त की है। महाप्रभु की यह श्रीमुख की वाणी एक तरफ जितनी सहज, सरल है, दूसरी तरफ उतनी ही परत निगूढ़ या विपुल तात्पर्य पूर्ण है। जैसे सिन्धु के ऊपर लहरें देखने में अत्यन्त सुन्दर तथा मन को मोहने वाली होने पर भी उसके तले में अतल गहराई है तथा वह विभिन्न प्रकार के रत्नों का भण्डार है; उसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभु की निताइ स्तुति की ये वाणियाँ अत्यन्त सहज, सरल होने पर भी इसके अन्दर निताइ तत्त्व की अथाह गहराई है तथा इसमें निमाइ की महिमा रूपी अत्यन्त अनर्घ्य रत्नों का खजाना भी विद्यमान है। इस प्रबन्ध में श्रीमन्महाप्रभु की इस स्तुति वाणी की विस्तृत व्याख्या करके ही हम श्रीनित्यानन्द की महिमा की आलोचना करेंगे। श्रीमन्महाप्रभु ने पहले ही कहा– "नाम से नित्यानन्द हो तुम।" श्रीकृष्ण का नित्यदास जीव नित्यानन्द या शाश्वत आनन्द का प्यासा होकर भी कृष्ण बहिर्मुखता के कारण अनादिकाल से मायाबद्ध दशा में अनित्य या क्षणिक विषयानन्द के नशे में इस विश्व में कितने सैकड़ों बार जन्म, मृत्यु, त्रिताप आदि की ज्वाला तथा विभिन्न प्रकार के नरक आदि का दुःख भोगते हुये घूम रहा है। उन्हें नित्यानन्द या शाश्वत आनन्ददान के निमित्त श्रीभगवान् युगों-युगों में विभिन्न रूपों में विश्व में अवतीर्ण होते रहते हैं। श्रीकृष्ण ने श्रीगीताशास्त्र में उनके विश्व में अवतरण के हेतु के सम्बन्ध में कहा है—

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥"

श्रीभगवान् कह रहे हैं, 'हे अर्जुन! साधुगणों के परित्राण, दुष्कृतगणों के विनाश तथा धर्म (भागवतधर्म) की संस्थापना के निमित्त मैं युग-युग में विश्व में अवतीर्ण होता रहता हूँ।' यह सब ही जीव को नित्यानन्द या शाश्वत आनन्ददान के निमित्त है। जीव कुल को नित्यानन्द दान के लिये श्रीहरि अनेकों बार ही विश्व में अवश्य ही अवतीर्ण हुये हैं, लेकिन किसी बार भी वह 'नित्यानन्द' नाम से अवतीर्ण नहीं हुये। इस बार ही श्रीकृष्ण के अभिन्न-विग्रह ब्रज के श्रीबलदेव 'नित्यानन्द' नाम से अवतीर्ण हुये हैं। श्रीमन्महाप्रभु 'नामे नित्यानन्द तुमि' इस वाक्य से मानों विश्व को अवगत कराना चाह रहे हैं, श्रीनिताइचाँद का 'नित्यानन्द' नाम अन्वर्थ है। जीव को

भक्त के रूप में पाने के लिये श्रीभगवान् जितने अवतारों में करुणा के सोपान में जितना नीचे उतरे हैं, श्रीनित्यानन्द ही उसके चरम सोपान पर अवतीर्ण हैं! जगाइ, मधाइ उद्धार लीला ही उसका उज्ज्वल साक्ष्य देता है। करुणा के अवतार श्रीश्रीनिताइचाँद अन्य प्रकार से भी उस लीला का साधन कर सकते थे, लेकिन माधाइ के द्वारा फेंके हुये कलसे के किनारे के आघात से अपने माथे की गरमरक्त की धारा का दान करके उन्होंने यही प्रमाणित किया कि महापात की के उद्धार के कार्य में करुणा के अन्तिम सोपान पर वह अवतीर्ण हैं। जगाइ, मधाइ श्रीगौरलीला के पार्षद हैं, उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के लीलाकाल में श्रीनवद्वीपधाम में जन्म ग्रहण किया है प्रभु श्रीश्रीनिताइ–गौरांग की प्रेम के रस से गढ़ी हुई मूर्ति तथा उनकी देव गुह्य दिव्यलीला उनके नयन गोचर हुई है, अत: उनका उद्धार–कार्य (साधन) ऐसा कुछ कठिन कार्य नहीं है; लेकिन इस लीला के माध्यम से कारुण्यघन विग्रह श्रीश्रीनिताइचाँद ने विश्ववासियों को अवगत कराया– जगाइ, मधाइ की अपेक्षा भी करोड़ों–करोड़ों गुणा महा महापातकी के उद्धार कार्य में यदि आवश्यक हुआ तो करुणा की मूरत श्रीनिताइचाँद चेहरे पर मुस्कान लिये हुये अपने सिर के गरम रक्त की धारा बहाने के लिये भी तैयार हैं! यही महा कारुण्य का चरम निदर्शन है– यही प्रेम रस का महावतरण है!! इस महाकारुण्य को निरन्तर हृदय में धारण करके ही महाप्रेम की मूरत निताइ का नगर–नगर में परिभ्रमण है!! श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने लिखा है—

"सहजे परमानन्द नित्यानन्द राय।
अभिमान शून्य सर्वनगरे बेड़ाय॥ **(चै: भा:)**

मायाबद्ध जीव के हृदय में ही रज, तमोगुण जन्य अभिमान विराजित रहता है, माया स्पर्श रहित सच्चिदानन्द विग्रह श्रीभगवान् के हृदय में अभिमान किस प्रकार रहेगा? अत: यहाँ 'अभिमान रहित' बात के अन्दर निश्चित ही दूसरा कोई रहस्य निहित है, समझना होगा। श्रीमद्भागवत में जीव को जड़ीय देह–दैहिकादि का अभिमान त्यागकर के स्वरूप का अभिमान जगाने का उपदेश प्रदान किया गया है, यह साधन–भजन सापेक्ष है तथा वरण करने योग्य है– निन्दनीय या त्याग करने के योग्य नहीं है। श्रीभगवान् के हृदय में भी निरन्तर स्वरूपाभिमान या ईश्वराभिमान जाग्रत रहता है, अन्यथा ऐसी लीला का प्रकाश तथा भक्तानुग्रह कभी भी सम्भव नहीं है। माधुर्य लीला में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने ईश्वराभिमान का त्याग अवश्य ही किया है, लेकिन

अभिमान शून्य नहीं हो पाये हैं। क्योंकि नन्दनन्दनाभिमान में ब्रज के पार्षदगणों के प्रेम रस का आस्वादन किया है, फिर असुरादि के निधन के समय ईश्वराभिमान का भी उदय हुआ है। गौरलीला में उन्होंने श्रीराधारानी के अभिमान में ब्रजमाधुरी का आस्वादन किया है तथा भक्तानुग्रह प्रकाश में ईश्वरामिभमान की भी अभिव्यक्ति हुई है। किसी भगवत्स्वरूप में ही अभिमान रहित होना सर्वथा असम्भव है। श्रीकृष्ण के अभिन्न विग्रह एकमात्र ब्रज के श्रीबलदेव ही श्रीगौरलीला में श्रीनित्यानन्द के रूप में अवतीर्ण होकर सर्वथा अभिमानशून्य हुये हैं। उन्होंने दाँतों में तिनका धारण करते हुये जीव के द्वार-द्वार पर भ्रमण करके जी व की करुणा की कामना की है। दाँतों में तिनका धारण करने का उद्देश्य क्या है? प्रेमीभक्तगण असाधारण दैन्य के उद्वेग से दाँतों में तिनका धारण करके श्रीभगवान् की करुणा की प्रार्थना किया करते हैं। दाँतों में तिनका धारण करके स्वयं को पशु के समान अधम समझते हुये दैन्य प्रदर्शित करना होता है। इससे श्रीभगवान् का हृदय करुणा से पिघल जाता है। जैसे श्रीरूप-सेनातन के रामकेलि ग्राम में दाँतों में तिनका धारण करते हुये दैन्योक्ति प्रदर्शित करने पर प्रभु ने उनसे कहा था- "दैन्य छाड़, तोमार दैन्य फाटे मोर मन।" (चै: च:) आज गोलोक के ठाकुर प्रभु नित्यानन्द दाँत से तिनका काट कर जीव को नित्यानन्द रसमाधुरी का आस्वादन करवाने के लिये जीव की ही आवश्यकता से उनकी कृपा का उद्वेग घटित करा रहे हैं। जीव उनके प्रति करुणा करके हरिनाम ग्रहण करके नित्य प्रेमानन्द का अधिकारी होने पर ही वह मानों धन्य हो सकते हैं। धन्य हैं श्रीनिताइचाँद धन्य-धन्य है उनकी असाधारण करुणा। इसलिये महाजन ने गाया है—

अनुखन अरुण नयन घन घुरत
ढरकत लोर विथार।
किये घन करुण वरुणालय सञ्चरु
अमिया बरिखे अनिवार॥
नाचत रे निताइ वर-चाँद।
सिञ्चइ प्रेम सुधारस जगजने
अद्‌भुत नटन सुछन्द॥
चलतहि टलमल अंग।
मेरुशिखर किये तनु अनुपम रे

झलमल भाव तरंग॥
रोयत हसत चलन गति मन्थर
हरि बलि मूरछि विभोर।
खेने खेने गौर गोर बलि धायइ
आनन्दे गरजत घोर॥
पामर पंगु अधम जड़ आतुर
दीन अवधि नाहि माना
अविरत दुर्लभ प्रेम-रतनधन
याचि जगते करु दान॥
अविचल थिर प्रेम धन-वितरणे
निखिल ताप दूरे गेला
दीन हीन सबहु मनोरथ पूरल
अबला उनमत भेला॥
ऐछन करुण नयान अवलोकने
काहु न रहु दुरदिन।
बलराम दास काहे भेल वञ्चित
दारुण हृदय कठिन॥

महाप्रभु ने इसीलिये कहा है– "नामे नित्यानन्द तुमि।" उसके बाद कहा– "रूपे नित्यानन्द।" विश्व के सभी मानव सौन्दर्य के उपासक हैं। वे आँखों से सुन्दर रूप देखना चाहते हैं, कानों से सुन्दर बातें सुनना चाहते हैं, जीभ से सुन्दर अत्यन्त स्वादिष्ट आहार की वस्तुयें भोजन करना चाहते हैं, नाक से सुन्दर सुगन्धित द्रव्य सूँघना चाहते हैं, त्वक् (चमड़ी) से सुन्दर अत्यन्त कोमल वस्तु के स्पर्श की कामना करते हैं, वे सुन्दर की बातें सोचते-सोचते सुन्दर को प्रेम करना चाहते हैं। विश्व के जड़ीय रूप, शब्द, रस, गन्ध स्पर्श के सेवन से उन्हें तृप्ति नहीं मिलती है। क्योंकि जड़ीय विषय नश्वर, क्षणभंगुर तथा परिणाम में विरस प्रदान करने वाले हैं। यौवन में कुछ सौन्दर्य रहता है लेकिन वह कितने दिनों के लिये ? "द्वित्रीदिनान्येव यौवनमिदम्" यौवन दो तीन दिन के लिये है, अर्थात् देखते ही देखते सब समाप्त हो जाता है आज जो देखने में सुन्दर लगता है, दो दिन के पश्चात् ही वह असुन्दर हो जाता है। अत: मानव की जो सौन्दर्य-के आस्वादन की शाश्वत कामना है, यह हमारे उस "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" अनन्त सुन्दर, अनन्त मधुर श्रीभगवान् के सौन्दर्य के आस्वादन का ही इशारा दिया करते हैं। भगवन्माधुरी अलौकिक

नित्य तथा कभी समाप्त नहीं होने वाली है, अतः श्रीभगवान् के रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्शादि में ही मानव के सौन्दर्य-भोगास्वादन की चरम तृप्ति है! इसीलिये भक्तवृन्द जड़ीय विषय भोग की स्पृहा का त्याग करके भगवन्माधुरी के आस्वादन से धन्य या कृतार्थ हुआ करते हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनिताइचाँद से कहा- 'तुम रूप में नित्यानन्द हो'; अर्थात् निताइ का रूप शाश्वत आनन्द प्रदान करने वाला है। सौन्दर्य कामी मानव का नित्यानन्द के रूप दर्शन में ही सौन्दर्य-कामना की सार्थकता है। महाजन के वर्णन में उस अतीन्द्रिय रूप का आभास मिलता है। श्रीलोचनदास ठाकुर ने श्रीश्रीनित्यानन्द के नित्यानन्द-रसमय रूप का वर्णन किया है—

एइमते आनन्दे सानन्दे चलि जाय।
देखिल से अवधूत नित्यानन्द राय॥
आरक्त गौरांग कान्ति परम सुन्दर।
झलमल अलंकारे अंग मनोहार॥
कटि तटे पीतवास विराजित शोभा।
शिरे लटपटि पाग चम्पकर आभा॥
चलिते नूपुर पदे झनझनि शुनि।
कुरंग-नयनी चित्त तरल सन्धानी॥
हासिते बिजुरी येन खसिया पड़िछे।
कामिनी आपन लाज ताहातेइ दिछे॥
मेघ जिनि गर्जन गम्भीर शब्द शुनि॥
कलि-मत्त हाथीर दमन सिंह मणि॥
मातल कुञ्जर येन गमन सुन्दर।
प्रसन्न बदने प्रेमधारा निरन्तर॥
पुलके आकुल अंग प्रेमे डगमगि।
कम्प स्वेद आदि भाव रस अनुरागी॥
कलि-दर्प दमन कनक दण्ड धरे।
राता उतपल करतल मनोहरे॥
अंगद कंकन हार केयुर किंकिणी।
गण्ड युगे कुण्डल येमन दिनमणि॥

इस वर्णन में मनुष्य की भाँतिरूप काचित्र अंकित होने पर भी मनुष्य में कभी यह सौन्दर्य-माधुर्य नहीं दृष्टिगोचर होता है। इस विश्व में असंख्य मनुष्य विचरण कर रहे हैं, उनमें से किसी-किसी में आकृति गत सौन्दर्य भी

है, फिर कवि के काव्य में उपन्यास में उत्तम-उत्तम रूप का वर्णन भी मिलता है, लेकिन वह सब मनुष्य का ही है। यहाँ जिस रूप का चित्र अंकित हुआ है, वह अमानुषिक (अमानवीय), अलौकिक यहाँ तक कि बिल्कुल ही असाधारण है। यह भगवत्ता का स्वत: सिद्ध सौन्दर्य है। इस सौन्दर्य को देखकर किसी सौन्दर्य प्रिय कामिनी के चित्त में काम-लालसा नहीं जागती है- इस सदा सुन्दर के पदतल में सिर लोट लगाना चाहता है। यह सौन्दर्य सभी के चित्त में थोड़ा-बहुत भक्ति-भाव का चित्त अंकित कर देता है। उपासना की आकांक्षा जगा देता है!! मन-प्राण सब भूलकर उन चरणों में लोट लगाता है तथा प्रार्थना जागती है- "हे मेरे प्राणाराम! मनोनयना कर्षी सुन्दर ठाकुर! तुम मुझे अपने श्रीचरणों में सदा के लिये दास बनाकर रखे।" लौकिक रूप देखते-देखते वितृष्णा आती है और इस अलौकिकरूप के दर्शन से सदा के लिये आकांक्षा जगाती है। उस चिर सुन्दर में, चिर मधुर में जिनका चित्त आकृष्ट है, उनकी उक्ति इस प्रकार है—

"जनम अवधि हाम, ओ रूप निहारिनु
नयन ना तिरपित भेला
लाख लाख युग, हिये हिये राखिनु
तबु हिया जुड़न न गेला॥"

इस नित्यानन्द रसमय रूप के दर्शन का सौभाग्य जिनको प्राप्त हुआ है; वे उस रसमय, प्रेममय, आनन्दमय, चिर सुन्दर की सेवा में हमेशा के लिये धन्य होते हैं, नित्यानन्द की कृपा से वे नित्यानन्द के अधिकारी होते हैं। प्रेम भक्ति जगत् के अमर कवि श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने नन्दनाचार्य के घर में श्रीनित्यानन्द के रूप का जो वर्णन किया है, उसका पाठ करने पर वह रूप मानो आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो उठता है—

नन्दन आचार्य महा भागवतोत्तम।
देखि महा तेजो राशि येन सूर्य सम॥
महा अवधूत वेश प्रकाण्ड शरीर।
निरवधि गभीरता देखि महाधीर॥
अहर्निश बदने बलये कृष्ण नाम।
त्रिभुवने अद्वितीय चैतन्येर धाम॥
निजानन्दे क्षणे क्षणे करये हुंकार।
महामत्त येन बलराम अवतार॥

कोटि चन्द्र जिनिया बदन मनोहर।
जगत-जीवन हास्य सुन्दर अधर॥
मुकुटा जिनिया श्रीदशनेर ज्योति।
आयत अरुण दुइ लोचन सुभाति॥
आजानुलम्बित भुज सुपीवर वक्ष।
चलिते कोमल बड़ पदयुग दक्ष॥

श्रीमन्नित्यानन्द जब श्रीनन्दनाचार्य के घर पर आकर पहुँचे, नन्दनाचार्य ने देखा उनके घर में एक महापुरुष का आगमन हुआ है। उनके श्रीअंग से महातेज फूट रहा है; उनका शरीर जैसा विशाल है वैसा ही सूर्य के समान समुज्ज्वल है। वेश विन्यास महा अवधूत की भाँति है। उनके शरीर के अनुरूप ही उनके हृदय का भाव महागम्भीर है तथा महा धीरता का आधार है। मुख में निरन्तर श्रीकृष्णनाम का अमृत प्रवाह चल रहा है। वह अपने आनन्द में स्वयं ही विभोर हैं। विशाल सिन्धु की भाँति वह भाव की गम्भीरता लिये हुये हैं, फिर उस गम्भीरता के अन्दर से सिन्धु की गर्जन की भाँति बीच-बीच में हुंकार की आवाज निकल रही है! आनन्द की उन्मत्तता को देखकर लगता है मानो साक्षात् ब्रज के बलदेव हैं। उनका मुख करोड़ों चन्द्रमा से भी अधिकतर मनोहर है, अधरोष्ठ पके हुये बिम्बफल की भाँति स्निग्धता में, सुचिक्कणता (चिकनाई) में तथा अरुणिमा में (लालिमा) में मानो सौन्दर्य का पूर्ण आधार हैं! मुक्ता (मोती) को निन्दित करने वाली दन्त पंक्ति की कैसी अनुपम छटा है! नयन युगल लालिमा युक्त, आयत तथा सुस्निग्ध-अत्यन्त तीक्ष्ण प्रतिभा के व्यंजक हैं! उनके मुखमण्डल की शुचि शुभ्र हास्यच्छटा वह हास्य तो हास्य नहीं है- मानो जगत् का जीवन हैं; नव सौन्दर्य, नव माधुर्य, समुज्ज्वल छटा से मानो सभी का नया जीवन जगा रहे हैं!! दोनों भुजायें आजानुलम्बित हैं, अत्यन्त पुष्ट तथा विशाल वक्ष है। सुस्निग्ध श्रीचरणयुगल कमल की भाँति लालिमा युक्त कोमल तथा सुरभित हैं- नृत्य छन्द की भाँति उसमें अत्यन्त मधुर गति भंगिमा है!!

रूप में नित्यानन्द श्रीनिताइचाँद इस प्रकार अलौकिक सौन्दर्य, माधुर्य तथा लावण्य के असीम सागर हैं। इस अलौकिक अनुपम रूप माधुर्य के चिन्तन से, इस सौन्दर्य-माधुर्यरस की अमृतमयी मूर्ति के ध्यान से - नित्य या शाश्वत आनन्द से हृदयपूर्ण हो जाता है। मानव के चित्त से बदबूदार जड़ीय रूप रस की प्यास हमेशा के लिये निवृत्त होकर हृदय में प्रेमानन्द रस का एक

अनोखा नन्दन कानन विकसित हो उठता है। श्रीभगवान् के अर्चा विग्रह में भी साधक चिन्मय रूप माधुरी का सन्धान पाते हैं। उस लोकातीत रूपमाधुर्य के आस्वादन से साधक का हृदयपूर्ण हो जाता है। लेकिन जरा महत्कृपा के योग की आवश्यकता होती है। श्रीपाद रामानुज स्वामी ने कृपा करके धनुर्दास नामक एक मल्ल को श्रीरंगनाथ का दर्शन कराया था। धनुर्दास एक सुन्दरी रमणी को घोड़े की पीठ पर बिठाकर तथा धूप से बचाने के लिये उसके सिर पर छाता लगाकर श्रीरंगनाथ का दर्शन करने आता था। इस कदाचार हेतु एक दिन तिरस्कृत होकर उसने कहा था, इस रमणी का रूपमाधुर्य जगत् में दुर्लभ होने के कारण ही वह उसकी सेवा किया करता है। उसकी बात स्वामीजी के कर्णगोचर होने पर उसके प्रति कृपा के उद्रेक के कारण उसको सम्बोधन करते हुये कहा था, "धनुर्दास! तुम यदि एक बार श्रीरंगनाथ के रूपमाधुर्य का दर्शन करो तो फिर उस कुत्सित स्त्री का और मुँह नहीं देखना चाहोगे।" स्वामीजी की बात से विस्मित होकर धनुर्दास ने कहा था- "स्वामिन! मैं तो प्रतिदिन ही श्रीरंगनाथ का दर्शन कर रहा हूँ, कहाँ, वैसा तो कुछ परिवर्तन अनुभव नहीं किया है।" तब स्वामीजी ने धनुर्दास का हाथ पकड़कर श्रीरंगनाथ के समक्ष उपस्थित होकर कहा था-

अयं धनुर्दास रमाधिनाथः।
श्रीरंगनाथो जगतामधीशः।
अस्याक्षि वैपुल्य मिदं त्वयाद्य
दृष्टं किलै वाप्रतिमं हि सम्यक्॥

वत्स धनुर्दास! तुम इस बार श्रीरंगनाथ का दर्शन करो। वो देखो, त्रिजगत् के अधीश्वर रमानाथ श्रीरंगनाथ तुम्हारे सम्मुख विराजमान हैं। असमोर्ध्व सौन्दर्य-माधुर्य के निकेतन श्रीरंगनाथ के इन विशाल नयनों का तुम जी भरकर निरीक्षण करो।' श्रीरामानुज स्वामी की कृपा से श्रीधनुर्दास ने जगन्मोहन श्रीरंगनाथ के आकर्ण विस्तृत (कान तक फैले हुये) नयन द्वय का दर्शन करके आनन्द जात मूर्च्छा को प्राप्त हुआ था तथा हमेशा के लिये उस सौन्दर्यामृत सिन्धु में उसका नयन, मन मग्न हुआ था। धनुर्दास पुनः घर लौटकर नहीं आया था, स्वामीजी के आश्रय में श्रीरंगनाथ की सेवा में उसने बाकी जीवन बिताया था। अतः इस समय महत्कृपा के आश्रय में साधक 'रूप में नित्यानन्द' श्रीमन् निताइचाँद की श्रीविग्रहमाधुरी के आस्वादन से

भी नित्यानन्द या शाश्वत प्रेमानन्द का अनुभव प्राप्त होकर धन्य होंगे- इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।

इसके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनिताइ की स्तुति के प्रसंग में कहा- "एइ तुमि नित्यानन्द राम मूर्तिमत्त॥" अर्थात् साक्षात् ब्रज के बलदेव ही श्रीनित्यानन्द के रूप में इस गौरलीला में अवतीर्ण हैं। श्रीपाद स्वरूप दामोदर, श्रीमुरारी गुप्त, श्रीकवि कर्णपूर, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर, श्रीलोचनदास, श्रीपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामी- जिन्होंने भी श्रीनित्यानन्द तत्त्व का वर्णन किया है, सभी ने श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु को ब्रज का बलदेव तत्त्व कहकर ही सम्बोधित किया है। श्रीमन्महाप्रभु स्वयं अत्यन्त स्पष्ट रूप से कह रहे हैं- "एइ तुमि नित्यानन्द राम मूर्तिमत्त।"

इस समय काल के प्रभाव से नित्यानन्द तत्त्व को लेकर जगत् में विविध प्रकार के अशास्त्रीय तथा कल्पित मतवाद का प्रचार तथा प्रसार हो रहा है। कोई-कोई कहता है- 'नित्यानन्द ब्रज की श्रीराधा हैं। इसीलिये वह अत्यन्त गूढ़ हैं कारण यह है कि अत्यन्त गूढ़तत्त्व श्रीराधा के अलावा अन्य कोई हो ही नहीं सकता।' अच्छा, यदि ऐसा ही हो तो क्या श्रीमन्महाप्रभु के उल्लिखित पार्षदगणों में से किसी को भी इस बात का पता नहीं होता? यहाँ तक कि श्रीमन्महाप्रभु भी क्या यह नहीं जानते थे? उनमें से तो किसी ने भी यह नहीं कहा। श्रीनित्यानन्द यदि वह अखण्ड मादनाख्य महाभाव-स्वरूपा श्रीराधा तत्त्व होते तो नित्यानन्द गत प्राण पार्षदगण अवश्य ही उसे व्यक्त करते। महाप्रभु या पार्षदगणों के वाक्य में यदि इस सम्बन्ध में कोई संकेत भी रहता तो इसे मानने में कोई बाधा नहीं रहती। लेकिन ऐसा कहीं भी दिखायी नहीं पड़ता है। यदि कोई कहे कि गूढ़ तत्त्व होने के कारण ही किसी ने व्यक्त नहीं किया है। तो फिर इस समय के अर्वाचीन (नये) साधकगण उसे किस साहस से व्यक्त कर रहे हैं। वास्तव में राधा होने से ही नित्यानन्द अत्यन्त गूढ़ हैं, वैसा नहीं है, उनकी गूढ़ता के और भी बहुत से हेतु तथा प्रमाण मौजूद हैं। जिसकी आलोचना के लिये ही इस प्रबन्ध की अवतारणा हुई है। कोई कहता है, ब्रज में श्रीकृष्णप्रेम के विषय तत्त्व हैं, आश्रय-तत्त्व श्रीराधा हैं। उसी प्रकार गौरलीला में विषय तत्त्व गौरांग हैं, आश्रय तत्त्व निताइ हैं, अतः निताइ राधा क्यों नहीं होंगे? इस प्रकार की अन्ध युक्ति का कोई अर्थ नहीं होता।

जगत् के सिद्ध साधक कोटि भी सब भक्ति का आश्रय हैं तो क्या सभी राधा हैं? शास्त्र तथा महाजन की वाणी के अवलम्बन से ही रहस्यमय ईश्वर

तत्त्व ज्ञात हुआ जाता है, ईश्वर तत्त्व के निर्धारण में व्यक्ति विशेष की कल्पना जात किसी सिद्धान्त का कोई स्थान नहीं है। कोई कहता है, मेरे गुरु साक्षात् श्रीभगवान् हैं, उन्होंने जो कहा है वह प्रामाणिक क्यों नहीं होगा ? इस सन्दर्भ में श्रीनरोत्तमदास ठाकुर महाशय की वाणी विशेष ध्यान देने योग्य है- "साधु शास्त्र, गुरु वाक्य, हृदये करिया ऐक्य, सतत भासिब प्रेम माझे।" (प्रे: भ: च: 12) अर्थात् श्रीगुरु के वाक्य के साथ यदि श्रीभगवत् प्राप्ति के साधन भूत शास्त्र के तथा सदाचार परायण साधुगणों के वाक्यों का मेल हो तभी उसे बिना विचारे ग्रहण करना चाहिये। शास्त्री सद्गुरु का श्रीचरणाश्रय प्राप्त होने पर उनका वाक्य कभी भी शास्त्र वाक्य या साधु वाक्य के प्रतिकूल नहीं होगा। यदि होता है, तो वह व्यक्ति विशेष की कल्पना जात वाणी मात्र ही जानना होगा।

फिर कोई-कोई कहता है, निताइ ब्रज की चन्द्रावली का अवतार हैं, इसीलिये दण्ड भंग लीला में राधा स्वरूपा श्रीमन्महाप्रभु के साथ उनका विरोध दिखायी पड़ता है। इस प्रकार की असंगत उक्ति कितना ग्रहण करने के योग्य है, उसे विवेकी व्यक्ति सोचकर देखना। दण्ड भंग लीला में क्या श्रीमन्महाप्रभु के साथ श्रीनित्यानन्द का विरोध व्यक्त हुआ है ? श्रीवृन्दावनदास ठाकुर महाशय ने श्रीचैतन्यभागवत में श्रीनित्यानन्द की दण्ड भंग लीला का इस प्रकार वर्णन किया है—

ठाकुरेर दण्ड श्रीजगदानन्द बहे।
दण्ड थुइ नित्यानन्द स्वरूपेरे कहे॥
ठाकुरेर दण्डे मन दिओ सावधाने।
भिक्षा करि आमिह आसिब एइ क्षणे॥
आथे-ब्याथे नित्यानन्द दण्ड धरि करे।
बसिलेन सेइ स्थाने विह्वल अन्तरे॥
दण्ड हाते करि हासे नित्यानन्द राय।
दण्डेर सहित कथा कहेन लीलाय॥
अहे दण्ड आमि यारे बहिये हृदये।
से तोमारे बहिबेक एत युक्त नहे॥
एत बलि बलराम परम प्रचण्ड।
फेलिलेन दण्ड भाङ्गि करि तिन खण्ड॥

(अन्त्य खण्ड-2 य अध्याय)

इस वाक्य से यह स्पष्ट रूप से जाना जाता है कि श्रीनित्यानन्द का श्रीमन्महाप्रभु का दण्ड भंग कार्य महाप्रभु के प्रति उनके महाप्रेम का ही परिचायक है- द्वेष का कार्य नहीं है। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वमी पाद ने लिखा है-

दण्ड भंग-लीला एइ परम गम्भीर।
सेइ बूझे दुहार पदे यार भक्ति धीर॥ **(चैः चः)**

वास्तव में यह सब विषय साधारण बुद्धि से समझ में नहीं आता। श्रीपाद नित्यानन्द का भी दण्ड था उसे उन्होंने श्रीवास के भवन में स्वयं ही रात के अन्त में तोड़कर फेंक दिया था। दण्डग्रहण वैदिक संन्यासियों का विधि-व्यवस्थित कार्य है। दसनामी संन्यासीगण संन्यास ग्रहण करते समय दण्ड ग्रहण किया करते हैं। गुरु यथा विधि मन्त्रोचारण करते हुये आनुष्ठानिक क्रिया के साथ शिष्य को गेरुआ वसन, कौपीन, दण्ड, कमण्डल देकर संन्यास दिया करते हैं। इस दण्ड में सभी देवी देवताओं का अधिष्ठान रहता है। गुरु दण्ड प्रदान करके कहते हैं, आज से तुम नारायण का स्वरूप हो, धर्माधर्म से परे हो तुम्हारे माता, पिता इत्यादि सभी इस दण्ड में वर्तमान जानकर निरन्तर सम्मान के साथ दण्ड धारण करोगे। अतः संन्यासियों को यथाविधि दण्ड धारण करना पड़ता है। दसनामी संन्यासियों को सरस्वती, पुरी, तीर्थ, भारती इत्यादि उपाधि प्रदान की जाती है। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीकेशव भारती से संन्यास ग्रहण किया है, अतः दण्ड धारण उनकी नित्य विधि है। श्रीनित्यानन्द का उद्देश्य लेकिन स्वतंत्र है। वह जानते हैं कि महाप्रभु का संन्यास ग्रहण विषय स्पष्ट रूप से जालसाजी या कपटता मात्र है। वह स्वयं भगवान् हैं, जीव उद्धार के लये उनकी यह संन्यास लीला है। श्रीकविराज गोस्वामीपाद ने श्रीमन्महाप्रभु की संन्यास लीला का असली रहस्य व्यक्त किया है—

मोरे ना मानिले सब लोक हबे नाश।
एइ लागि कृपार्द्र प्रभु करिल संन्यास॥
संन्यासी-बुद्धये मोरे करिबे नमस्कार।
तथापि खण्डिबे दुःख पाइबे निस्तार॥ **(चैः चः)**

श्रीमन्महाप्रभु के संन्यास की कपटता का आवरण हटाकर लोक समाज में उनका वास्तविक स्वरूप प्रकट करना ही श्रीपाद नित्यानन्द के दण्ड भंग का मूल उद्देश्य है। निरर्थक महाप्रभु को इस दण्ड का भार वहन करने की

आवश्यकता क्या है, यह सोचकर ही श्रीमन्नित्यानन्द ने दण्ड तोड़कर पुण्य सलिला भागीरथी नदी के जल में प्रवाहित कर दिया। भागीरथी भी ऐसे प्रेम भक्ति रसमय हस्त स्पर्श के महारत्न को पाकर उसे यत्न के साथ वक्ष में धारण करते हुये अपने पति रत्नाकर (सागर) को उपहार देने के लिये आनन्द की लहरें उछालते हुये कल–कल निनाद के साथ सागर की ओर बहती चली। अत: इसमें महाप्रभु के अलावा जगत् में और किसी को भी महानन्द के सिवाय असन्तोष का कोई कारण नहीं है! श्रीमन्महाप्रभु को भी बाहर रोष, दिल में सन्तोष था। दण्ड भंग के पश्चात् बाहर रोषाभास प्रदर्शित करते हुये श्रीमन्महाप्रभु किसी को भी साथ में न लेकर अकेले जगन्नाथ मन्दिर में उपस्थित हुये। उसके बाद श्रीमन्नित्यानन्द दल बल के साथ उनके साथ मिले थे। फागुन तथा चैत्र दो महीने तक महाप्रभु पुरी धाम में रूककर वैशाख के पहले सप्ताह में दक्षिण देश भ्रमण के लिये निकल गये। महाप्रभु के किसी को भी साथ न लेकर अकेले दक्षिण देश जाने का मन बनाने पर श्रीमन्नित्यानन्द ने उसमें सम्मति नहीं दी। उन्होंने कहा था, वही उनके साथ जायेंगे क्योंकि दक्षिण के सभी तीर्थ उनके परिचित हैं। उसके जवाब में श्रीमन्महाप्रभु ने जो कहा था, वही श्रीचैतन्यचरितामृत से उद्धृत हो रहा है—

प्रभु कहे- आमि नर्त्तक, तुमि सूत्रधार।
यछे तुमि नाचाह तैछे नर्त्तन आमार॥
संन्यास करिया आमि चलिलाम वृन्दावन।
तुमि आमा लैया आइला अद्वैत भवन॥
नीलाचल आसिते पथे भांगिले मोर दण्ड।
तोमा सभार गाढ़ स्नेहे आमार कार्य भंग॥
जगदानन्द चाहे आमाय विषय भुञ्जाइते।
येइ कहे - सेइ भये चाहिये करिते॥
कभु यदि इहार वाक्य करिये अन्यथा।
क्रोधे तिन दिन आमाय नाहि कहे कथा॥
मुकुन्द हयेन दुःखी देखि संन्यास धर्म।
तिनबार शीते स्नान भूमिते शयन॥
अन्तरे दुःखी मुकुन्द - नाहि कहे मुखे।
इँहार दुःख देखि आमार द्विगुण हय दुःखे॥
आमिते संन्यासी - दामोदर ब्रह्मचारी।
सदा रहे आमार प्रति शिक्षा दण्ड धारि॥

इँहार अग्रेते आमि ना जानि व्यवहार।
इँहारे ना भाय स्वतन्त्र चरित्र आमार॥
लोकापेक्षा नाहि इँहार कृष्ण कृपा हैते।
आमि लोकापेक्षा कभु ना पारि छाड़िते॥
अतएव तुमि सब रह नीलाचले।
दिन कथे आमि तीर्थ भ्रमिब एकले॥
इहा सभार वश प्रभु हये ये ये गुणे।
दोषारोप छले करे गुण आस्वादने॥

(मध्य लीला-6 परि:)

इससे श्रीनित्यानन्द प्रभु के दण्ड भंग कार्य से परम सन्तोष, श्रीमन्महाप्रभु की उनके प्रति वश्यता तथा यह गुण महाप्रभु का परम आस्वाद्य है, यह स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है। अत: दण्डभंग लीला से श्रीश्रीगौर नित्यानन्द में परस्पर विरोध व्यक्त हुआ है, सोचना महा अपराध जनक है। दण्डभंग लीला की दुहाई देकर नित्यानन्द को चन्द्रावली का अवतार बनाने की चेष्टा निष्फल है। साक्षात् व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुर के श्रीचैतन्यभागवत का वर्णन तथा साक्षात् श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख की वाणी- "एइ तुमि नित्यानन्द राम मूर्तिमत्ता" श्रीनिताइचाँद साक्षात् ब्रज के बलदेव हैं; समस्त गौर पार्षदगणों ने भी श्रीमन्नित्यानन्द को बलदेव के रूप में ही वर्णन किया है अत: श्रीमन्नित्यानन्द तत्त्व के सन्दर्भ में अन्यान्य मत विद्वान् भक्तों को कभी ग्राह्य नहीं है।

श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द को जो 'राम मूर्तिमन्त' या 'मूर्तिमन्त बलराम कहा है, श्रीमन्महाप्रभु के इस वाक्य से निताइ तत्त्व की सविशेष गूढ़ता प्रतिपादित हुई है। श्रीकृष्णलीला में श्रीबलराम परम सौन्दर्य के लिये लोकानुरागास्पद तत्त्व के लिये तथा बल की अधिकता के लिये प्रसिद्ध हैं। श्रीगर्गाचार्य ने श्रीबलदेव के नामकरण के प्रसंग में कहा है—

अयं हि रोहिणी पुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः।
यदूनाम पृथग भावात् संकर्षणमुशन्त्युत॥ (भाः 10/8/12)

अर्थात् इन रोहिणी पुत्र के तीन नाम है- बलदेव, राम तथा संकर्षण। यह विविध गुणों से आत्मीय स्वजनों के चित्त में आनन्ददान करेंगे, इसलिये इनका नाम 'राम' है, यह असाधारण बलशाली होंगे इसलिये इनका नाम

'बल'; पुनः परस्पर पृथक् भावयुक्त यदुवंशीय लोगों को एकता के सूत्र में बाँधकर सभी को एक प्राण, एकमन बनायेंगे, इसलिये इनका नाम होगा संकर्षण। यही श्रीगौरलीला में श्रीनित्यानन्द के रूप में अवतीर्ण हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने कहा, 'मूर्तिमन्त' राम' अर्थात् उस कृष्णलीला में- श्रीबलराम के गुण मानो अधिकतर मूर्तिमन्त होकर श्रीनित्यानन्द में अभिव्यक्त हुये हैं। श्रीबलदेव के भाव तथा कार्यों के साथ श्रीनित्यानन्द के भाव तथा कार्यों की तुलना से हमारे श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख की वाणी की सत्यता की स्पष्ट रूप से उपलब्धि होगी।

श्रीगर्गाचार्य ने कहा है; श्रीबलराम विविध गुणों के द्वारा सुहृद गणों के चित्त में आनन्ददान करेंगे, इसीलिये इनको नाम 'राम' है। आज इस कलियुग में श्रीनित्यानन्द में लोक रमण का कार्य केवल सुहृद गणों की सीमा में बँधा न रहकर सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित हुआ था। श्रीनिताइचाँद का सार्वभौतिक लोकानुराग लोगों के चित्त को आनन्द प्रदान करने का विषय इतना ही विश्वव्यापी हो गया था कि ब्राह्मण-चाण्डाल धनी-दरिद्र, महत्-क्षुद्र, मनुष्य, कीट, पतंग यहाँ तक कि उद्भिद आदि तक में सर्वत्र विशाल रूप से व्याप्त तथा प्रसारित हो पड़ा था! इसीलिये महाजन ने गाया है—

"कीर्त्तन-रसमय अगम-अगोचर
केवल आनन्द कन्द।
अखिल-लोक-गति भकत प्राण पति
जय जय नित्यानन्द चन्द्र॥
हेरि पतित गण करुणावलोकन
जगभरि करल अपार।
भव-भय-भञ्जन दुरित निवारण
धन्य धन्य अवतार॥
हरि संकीर्त्तन मातल जग जने
सुर-नर-नाग-पशु-पाखी।
सकल वेदसार प्रेम-सुधारस
देओल काहु ना उपेखि॥
त्रिभुवन-मण्डल नाम-प्रेम-बल
दूरे गेल कालि-आन्धियार।
शयन-भवन-पथ सबे एक रोधल
वञ्चित राम दुराचार॥"

विशाल बलवत्ता के लिये ब्रजलीला में वह 'बल' के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रीमन्नित्यानन्द की बलवत्ता की आलोचना करने पर विस्मित हुये बिना नहीं रहा जा सकता। बल साधारणतया दो भागों में विभक्त है- शारीरिक बल तथा मानसिक बल। गौरलीला में हमें शारीरिक बल की आवश्यकता नहीं दिखायी पड़ती। महाजन ने गाया है—

राम आदि अवतारे क्रोधे नाना अस्त्र धरे
असुरेरे करिल संहार।
एबे अस्त्र ना धरिल प्राणे कारे नामारिल
चित्त शुधि करिल सभार॥

युद्धादि के द्वारा असुरों का विनाश करके सज्जन लोगों की रक्षा तथा विश्व में शान्ति की स्थापना के लिये ही श्रीहरि के शारीरिक बल की आवश्यकता होती है। यदि बिना अस्त्र के बिना रक्तपात के वह कार्य केवल नाम तथा प्रेम के द्वारा सम्पन्न होता है तो उससे बढ़कर समाज का कल्याणकारी कार्य और क्या हो सकता है। इस अवतार में "बाहु तुलि हरि बलि प्रेम दृष्ट्ये चाय। करिया कल्मष नाश जगत् भासाय।" इस प्रकार से ही विश्व का परम मंगल साधित हुआ है, असुरादि का विनाश करने के लिये शारीरिक बल-प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं हुई है। इस श्रीगौर-नित्यानन्द की लीला में हमें इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति तथा आध्यात्मशक्ति का व्यापक प्रचार तथा प्रसार देखने को मिलता है। जीवों के निस्तार के लिये श्रीमन्नित्यानन्द जिस अदम्य मनोबल को लेकर लीलाक्षेत्र में अवतीर्ण हुये थे तथा एक महा तूफान की भाँति पापी तापी सभी नरनारियों में नाम-प्रेम का संचार किया था तथा दैहिक बल की अपेक्षा श्रेष्ठ मनोबल का विशेष परिचय प्रदान किया था, यह सभी को सुविदित है। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने उनके रचित श्रीनित्यानन्दाष्टक (5) में लिखा है—

यथेष्टं रे भ्रातः कुरु हरि हरि ध्वानमनिशं
ततो वः संसारम्बुधि-तरण-दायो मयि लगेत्।
इदं बाह्वास्फोटैरटति रटयन यः प्रति गृहं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि॥

"ओरे भाई! तुम लोग मुख से निरन्तर हरि हरि की ध्वनि करो, तो तुम लोगों के संसार सागर से पार लगाने का दायित्व मेरा रहा", जो प्रत्येक घर के

द्वार-द्वार पर जाकर बाहें फैलाकर इस प्रकार की घोषणा कर रहे हैं, उस भजन रूप वृक्ष के मूल रूपी श्रीनित्यानन्द प्रभु का निरन्तर भजन करता हूँ।"

तीसरा संकर्षणत्व, द्वापरयुग में श्रीबलदेव ने केवल पृथक् भाव विशिष्ट यदुवंशीगणों के चित्त के पृथक् भाव को दूर करते हुये उनका आकर्षण करके एकता के सूत्र में बाँधा था तथा एकता के भाव से सम्पन्न बनाया था। इस कलियुग में श्रीनित्यानन्द के रूप में उनकी संकर्षणत्व क्रिया का प्रचार तथा प्रसार अत्यन्त व्यापक रूप से बाधा रहित, अथाह, असीम तथा अनन्त है। उन्होंने प्राणी मात्र को ही उनके कृपा सूत्र से आकर्षित करके प्रेमभक्ति दान से धन्य किया है। उसका विशेष कारण भी है। गौरलीला के अन्तस्तल पर हम मुख्य रूप से दो भाव देखते हैं- एक भगवत्प्रेम, दूसरा आकर्षण, आकर्षण ही प्रेम की प्रधानतम क्रिया है। प्रेम सजातीय, विजातीय सभी वस्तुओं को खींचकर अपना बनाना चाहता है, अतः जहाँ प्रेम है वहीं पर आकर्षण है। प्रेम तथा आकर्षण एक ही वस्तु है। आकर्षण के साथ प्रेम का कार्य-कारण का सम्बन्ध है। प्रेम कारण है, आकर्षण उसका कार्य है। पण्डित लोग कहते हैं- "कार्या कारणयोरभेदात्" कार्य कारण के अभेद होने के कारण कार्य कारण से भिन्न नहीं है। श्रीकृष्णचैतन्य प्रेम स्वरूप हैं, महा संकर्षण के भी अंशी नित्यानन्द ही आकर्षण हैं। प्रेम के स्वरूप महाप्रभु का संकल्प है- सम्पूर्ण विश्व को प्रेमदान एवं उस संकल्प की सिद्धि के लिये श्रीनिताइचाँद का प्रेम की भूमि पर सभी का आकर्षण! कार्य कारण के अभेद होने के कारण दोनों का कार्य एक ही है। श्रीपाद कविराज गोस्वामी पाद ने लिखा है—

ब्रजे ये विहरे पूर्वे कृष्ण बलराम।
कोटि सूर्य चन्द्र जिनि दोंहार निज धाम॥
सेइ दुइ जगतेर हइया सदय।
गौड़ देश पूर्व शैले करिला उदय॥
श्रीकृष्ण चैतन्य आर प्रभु नित्यानन्द।
याँहार प्रकाशे सर्व - जगत आनन्द॥
सूर्य चन्द्र हरे यैछे सब अन्धकार।
वस्तु प्रकाशिया करे धर्मेर प्रचार॥
एइ मत दुइ भाइ जीवेर अज्ञान-
तमनाश करि कैल वस्तु तत्त्व-दान॥

× × × ×

तत्त्व वस्तु- कृष्ण, कृष्ण भक्ति प्रेमरूप।
नाम संकीर्त्तन सर्व आनन्द स्वरूप॥ (चैः चः)

श्रीमन्महाप्रभु ने इसीलिये कहा है- "एइ तुमि नित्यानन्द राम मूर्तिमन्त।" ब्रज के बलदेव ने दास्य, सख्य तथा वात्सल्य भाव में श्रीकृष्ण को आस्वादन किया है, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु ने भी इन तीन भावों में श्रीमन्महाप्रभु के सेवारस का आस्वादन किया है। श्रीबलदेव का वात्सल्य मिश्रित शुद्ध सख्य रस स्थायी भाव होने पर भी दास्य भाव का उसमें मिश्रण है। अकेले बलदेव का ही क्यों सभी कृष्ण के पार्षदगणों में ही दास्य भाव विद्यमान है। श्रीकविराज गोस्वामी पाद ने लिखा है—

कृष्ण प्रेमेर एइ एक अपूर्व प्रभाव।
गुरु सम लघु के कराय दास्य भाव॥
इहार प्रमाण शुन शास्त्रेर व्याख्यान।
महदनुभव याते सुदृढ़-प्रमाण॥
अन्येर का कथा ब्रजे नन्द महाशय।
ताँर सम गुरु कृष्णेर आर केह नय॥
शुद्ध वात्सल्य ईश्वर ज्ञान नाहि याँर।
ताँहा केइ प्रेम कराय दास्य अनुकार॥
तिंहो रति मति माँगे कृष्णेर चरणे।
ताँहार श्रीमुख वाणी ताहाते प्रमाणे॥
शुन उद्धव! सत्य कृष्ण आमार तनय।
तिंहो ईश्वर हेन यदि तोमार मने लय॥
तथापि ताँहाते रहु मोर मनोवृत्ति।
तोमार ईश्वर कृष्ण हउक मोर मति॥
श्रीदामादि यत ब्रजे सखार निचय।
ऐश्वर्य ज्ञान हीन केवल सख्य मय॥
कृष्ण संगे युद्ध करे स्कन्धे आरोहण।
तारा दास्य भावे करे चरण सेवन॥
कृष्णेर प्रेयसी ब्रजे यत गोपीगण।
याँर पद धूलि करे उद्धव प्रार्थन॥
याँ सबा उपरे कृष्णेर प्रिय नाहि आन।
ताँरा आपनाके करे दासी अभिमान॥

ताँ सबार कथा रहु श्रीमती राधिका।
सबा हैते सकलाशे परम अधिका॥
तेंहो याँर दासी हैञा करेन सेवन।
याँर प्रेम गुणे कृष्ण बधा अनुक्षण॥
द्वारकाते रुक्मिण्यादि यतेक महिषी।
ताँहार ओ आपनाके माने कृष्ण दासी॥
आनेर का कथा बलदेव महाशय।
याँर भाव शुद्ध सख्य-वात्सल्यादि मय॥
तिंहो आपनाके करेन दास भावना।
कृष्णदास भाव बिनु आछे कोन जना॥

(चै: च: आदि 6 परि:)

श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु मूर्तिमन्त राम होने के कारण वह चैतन्य के दास्य में उन्मत्त हैं- "नित्यानन्द अवधूत सबाते आगल। चैतन्येर दास्य प्रेमे हइल पागल॥" (वही) श्रीनन्दनाचार्य के घर पर श्रीगौर-नित्यानन्द के पहली बार मिलन के दिन श्रीवास के मुख से श्लोक सुनकर नित्यानन्द के विपुल भावोन्मादना का प्रकाश देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने जब श्रीनित्यानन्द की स्तुति की, श्रीनिताइचाँद प्रभु के मुख से अपनी महिमा को सुनकर सलज्ज नम्र भाव से बोले,- "प्रभो! मैं श्रीकृष्ण की लीलास्थली तथा अन्यान्य तीर्थों के दर्शन की मन्शा से भ्रमण कर रहा था। सौभाग्य से श्रीकृष्ण के लीला स्थान अनेकों देखने को मिले लेकिन कहीं पर भी उनका दर्शन प्राप्त नहीं हुआ। तब दुःखी होकर अच्छे-अच्छे साधु-सज्जनों से पूछा- "श्रीकृष्ण कहाँ हैं? श्रीकृष्ण की लीला विहार के स्थान सभी विद्यमान हैं लेकिन उनके दर्शन क्यों नहीं होते? इसके जवाब में उन्होंने कहा, "क्या तुम नहीं जानते? श्रीकृष्ण गौड़मण्डल में आविर्भूत हुये हैं। अभी कुछ दिन हुये वे गया में आये थे। गया से पुनः गौड़ देश चले गये। नदिया में हरि संकीर्त्तन की भीषण गुंजार उठी है। स्वयं श्रीकृष्ण के आविर्भाव के अलावा कभी ऐसा नहीं होता। अच्छे लोग कह रहे हैं निश्चय ही नदिया में श्रीकृष्ण का आविर्भाव हुआ है। यह बात सुनकर मेरे मन में बड़ी ही आशा का संचार हुआ, सोचा नदिया ही अब मेरे जैसे पातकी के उद्धार का स्थान है। उसी आशा को लेकर यहाँ आया हूँ। मेरे आने का उद्देश्य सिद्ध हुआ- मेरे दीर्घ अवधि की आशा लता फलवती हुई, तुम्हारा दर्शन मिला। श्रीचैतन्यभागवत में वर्णित है—

नित्यानन्द बले तीर्थ करिलुँ अनेक।
देखिलुँ कृष्णेर स्थान यतेक यतेक॥
स्थान मात्र देखि, - कृष्ण देखिते ना पाइ।
जिज्ञासा करिलुँ तबे भाल लोक ठाञि॥
सिंहासन सब केने देखि आच्छादित।
कह भाइ सब! कृष्ण गेला कोन् भित॥
तारा बले कृष्ण गिया छेन गौड़ देशे।
गया करि गिया छेन कतेक दिवसे॥
नदीयाय शुनि बड़ हरि संकीर्त्तन।
केह बले एथाय जन्मिला नारायण॥
पतितेर त्राण बड़ शुनि नदीयाय।
शुनिया आइल मुञि पातकी एथाय॥ (चैः भाः)

इन सब वाक्यों में श्रीमन्नित्यानन्द का दास्यभाव अत्यन्त स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। श्रीवास के घर में व्यास पूजा, अधिवास कीर्त्तनादि में सख्य भाव की अभिव्यक्ति देखी गयी है—

स्वानु भावानन्दे नाचे प्रभु दुइ जन।
क्षणे कोला कुलि करि करये क्रन्दन॥
दोंहार चरण दोंहे धरिबारे चाय।
परम चतुर दोंहे केह नाहि पाय॥
परम आनन्द दोंहे गड़ा गड़ि जाय।
आपन ना जाने दोंहे आपन लीलाय॥
बाह्य दूर हइल बसन नाहि रय।
धरये वैष्णवगण धरणे ना जाय॥
ये धरये त्रिभुवन के धरिब तारे।
महामत्त दुइ प्रभु कीर्त्तन विहरे॥
बोल बोल बलि डाके श्रीगौर सुन्दर।
सिञ्चित आनन्द जले सर्व कलेवर॥
चिरदिन नित्यानन्द पाइ अभिलाष।
बाह्य नाहि आनन्द-सागर माझे भासे॥ (श्रीचैः भाः)

श्रीमन्महाप्रभु ने जब संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् वृन्दावन गमन के आवेश में तीन दिन आहार निद्रा त्याग कर राढ़ देश में परिभ्रमण किया तब श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु ने श्रीमन्महाप्रभु के प्रति वात्सल्य भाव से गंगा को यमुना

कहकर चतुरता के साथ उनको श्रीअद्वैताचार्य के घर पर लाकर स्वस्थ किया था! इस प्रसंग में श्रीचैतन्यचरितामृत में वर्णित है—

संन्यास करि प्रेमावेश चलिल वृन्दावन।
राढ़ देशे तिन दिन करिला भ्रमण॥
× × × × ×
नित्यानन्द आचार्यरत्न मुकुन्द - तिन जन।
प्रभु - पाछे पाछे तिने करेन गमन॥
× × × × ×
गोप बालक सब प्रभु के देखिया।
'हरि हरि' बलि उठे उच्च करिया॥
शुनि ता सभार निकट गेला गौर हरि।
'बोल बोल' बोले सभार शिरे हस्त धरि॥
ता-सभार स्तुति करे - तोमरा भाग्यवान्।
कृतार्थ करिले मोरे शुनाञा हरिनाम॥
गुप्ते ता - सभारे ठाकुर नित्यानन्द।
शिखाइल सभाकारे करिया प्रबन्ध॥
वृन्दावन-पथे प्रभु पुछेन तोमारे।
गंगातीर-पथ तबे देखाइह ताँरे॥
तबे प्रभु पुछिलेन - शुन शिशुगण!
कह देखि कोन पथे जाब वृन्दावन?
शिशु सब गंगातीर पथ-देखाइल।
आवेशे सेइ पथे प्रभु गमन करिल॥
आचार्य रत्नेरे कहे नित्यानन्द गोसाञि।
शीघ्र जाह तुमि अद्वैत आचार्येर ठाञि॥
प्रभु लैया जाब आमि ताँहार मन्दिरे।
सावधाने रहे येन नौका लञा तीरे॥
तबे नवद्वीपे तुमि करिह गमन।
शची सह लञा आइस सब भक्तगण॥
ताँरे पाठाइया नित्यानन्द महाशय।
महाप्रभुर आगे आसि दिला परिचय॥
प्रभु कहे श्रीपाद! तोमार कोथा के गमन?
श्रीपाद कहे - तोमार संगे जाव वृन्दावन॥

प्रभु कहे - कत दूरे आछे वृन्दावन?
तेंहो कहेन - कर एइ यमुना दर्शन॥
एत बलि ताँरे निल गंगा-सन्निधाने।
आवेशे प्रभुर हैल गंगाय यमुना ज्ञाने॥
× × × × ×
हेनकाले आचार्य गोसाञि नौकाते चढ़िया।
आइला नूतन कौपीन - बहिर्व्वास लञा॥
आगे आसि रहिला आचार्य नमस्कार करि।
आचार्य देखि बोले प्रभु मने संशय करि॥
तुमि त अद्वैत गोसाञि, हेथा केने आइला?!
आमि वृन्दावने तुमि केमते जानिला॥
आचार्य कहे - तुमि याँहा, सेइ वृन्दावन।
मोर भाग्ये गंगातीरे तोमार आगमन॥
× × × × ×
प्रेमावेशे तिन दिन आछ उपवास।
आजिमोर घरे भिक्षा, चल मोर वास॥

इस तरह परम वात्सल्य से भरकर श्रीमन्नित्यानन्द ने महाप्रभु को अद्वैत के घर पर लाकर भोजनादि करवाकर स्वस्थ किया था। अत: श्रीनित्यानन्द ब्रज के साक्षात् बलदेव हैं, यह जाना जा रहा है। फिर ब्रज में जिस बलदेव के मधुर रस का आस्वादन सम्भव नहीं हुआ था, अत्यन्त गूढ़ निताइ का यहाँ वह भी सम्पन्न हुआ है। ब्रज में श्रीबलदेव श्रीकृष्ण के अग्रज हैं तथा उनका वात्सल्य मिश्रित सख्य भाव है, इसलिये सुबल, मधुमंगल आदि सखागणों की भाँति श्रीश्रीराधामाधवमाधुरी का आस्वादन सम्भव नहीं हुआ है। श्रीमन्नित्यानन्द के रूप में श्रीअनंग मञ्जरी के भाव में उसका आस्वादन भी सम्भव हुआ है। क्योंकि श्रीनित्यानन्द की शक्ति श्री जाह्नवा अनंग मञ्जरी हैं; शक्ति तथा शक्तिमान के अभेद होने के कारण इस आस्वादन के सुचारु रूप से सम्पन्न होने में कोई बाधा नहीं हुई। प्रश्न हो सकता है, गौरलीला में नित्यानन्द स्वरूप में मधुर रस का आस्वादन सम्भव होने पर भी ब्रज लीला में रामाभिमान में उसकी स्थिति किस प्रकार से होगी? क्योंकि वात्सल्य तथा मधुर रस में विरोध है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि राम के अभिमान में वह न होने पर भी श्रीराम को जब लगेगा कि वह नवद्वीप लीला में नित्यानन्द हैं,

तब अनंग मञ्जरी के अभिमान में मधुर रस का आस्वादन सम्पन्न होगा। गौरलीला का यही अचिन्त्य तत्त्व है।

इसके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु ने नित्यानन्द स्तव में कहा, "नित्यानन्द पर्यटन भोजन व्यभार। नित्यानन्द बिना किछु नाहिक तोमार॥" श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु का पर्यटन नित्यानन्द होने के कारण वह घर में माता पिता के स्नेह के बन्धन में अधिक दिनों तक बँधे नहीं रहे। किशोरावस्था के प्रारम्भ में ही उनके पिता के निकट एक संन्यासी के भिक्षा के बहाने गृहत्याग करते हुये विश्व में पर्यटन करते हुये सभी को नित्यानन्द दान करके धन्य किया था। अपनी आविर्भाव भूमि एक चक्रा से बाहर निकल कर श्रीनिताइचाँद संन्यासी के साथ दक्षिण–पश्चिम दिशा में भ्रमण करने लगे। गाँव के लोगों ने देखा– एक संन्यासी के साथ एक सोने की मूर्ति मानो रास्ता, घाट, मैदान आलोकित करके गमन कर रही है। श्रीनित्यानन्द की उम्र तब बारह वर्ष की थी। लेकिन सबको लगा कि वह अट्ठारह वर्ष के सुदीर्घ आकार के युवक ही हों। उनका आकार अत्यन्त सुगठीला तथा लावण्यमय था। गेरुआ वस्त्र पहने हुये थे तथा गेरुआ उत्तरीय ओढ़े हुये थे। शरद् ऋतु के कमल की भाँति चौड़े विशाल नयन युगल प्रेमरस से लबालब–मुख में अमृतमय कृष्ण नाम – संन्यासी के साथ कदम से कदम मिलाकर यह सोने के ठाकुर गजेन्द्र गमन में नृत्य के आवेश में चले जा रहे थे। उनके अलौकिक रूप लावण्य को देखकर तथा श्रीमुख से अमृत घुला हुआ कृष्ण नाम सुनकर दर्शक मात्र ही विस्मय से फटे नेत्रों से उनको दर्शन करते–करते यन्त्र चालित की भाँति कुछ दूर तक गये तथा उनका परिचय पूछने लगे– संन्यासी ठाकुर! यह सोने की मूर्ति आपको कहाँ मिली? संन्यासी ठाकुर कम शब्दों में उनका परिचय देकर गन्तव्य पथ पर चलने लगे। पूरे रास्ते भर इनका परिचय देना ही संन्यासी का कार्य हो गया।

निताइचाँद की चलने की शैली स्वभावत: ही नृत्य के आवेशमय माधुरी से पूर्ण थी। कोटि चन्द्र–विनिन्दित मुख–हास्य मधुर – उसमें अविराम कृष्णनाम। उनको कर्कश तथा कंकड़ युक्त कठिन पथ पर गमन करते देखकर करुण हृदय दर्शक मात्र का हृदय ही भीषण दर्द का अनुभव करने लगा, लेकिन नित्यानन्द का पर्यटन नित्यानन्दमय है। वह रास्ते में कष्ट का अनुभव कर रहे हैं ऐसा उनका मुँह देखकर किसी को भी नहीं महसूस हुआ। सदा प्रसन्न सदानन्दमय नित्यानन्द हैं, उनका पथ पर्यटन नित्यानन्द मय होगा

इसमें और संशय कैसा? वह संन्यासी के साथ कृष्ण नाम करते हुये। रास्ता घाट आनन्दमय करते हुये गमन करने लगे। सुविधा जनक स्थान पर भिक्षा तथा विश्राम करके संन्यासी-ठाकुर श्रीमन्नित्यानन्द को लेकर दक्षिण में तथा वाम में जो सभी प्रसिद्ध तीर्थ के रूप में देव मन्दिर हैं, उनका दर्शन करते-करते वीरभूम के सुप्रसिद्ध तीर्थ स्थान वक्रेश्वर आ पहुँचे।

श्रीमन्नित्यानन्द का तीर्थ पर्यटन एक विपुल विषय है। उन्होंने सभी तीर्थों का ही परिभ्रमण किया था। उनके तीर्थ पर्यटन के सन्दर्भ में श्रीचैतन्यभागवत में विस्तृत रूप से श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने वर्णन किया है, लेकिन जो संन्यासी श्रीनित्यानन्द प्रभु को स्नेहमय पिता-माता की गोद से पर्यटन की भूमि पर लेकर आये उस संन्यासी के सम्बन्ध में और कोई वर्णन नहीं मिलता। प्रश्न जागना स्वाभाविक है कि वह संन्यासी कौन हैं तथा उनका विशेष परिचय ही क्या है? किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थ में उसका कोई उल्लेख नहीं है। क्या श्रीनित्यानन्द ने संन्यासी के छल से स्वयं ही अपने आपको पुत्र-गत-प्राण, पिता माता के स्नेह के जाल से मुक्त करके नित्यानन्द मय पर्यटन के द्वारा विश्व को नित्यानन्द रसमय बना दिया?

जो भी हो, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के नित्यानन्दमय तीर्थ पर्यटन का वर्णन श्रीचैतन्यभागवत में जिस प्रकार से मिलता है उसका किञ्चित् उल्लेख किया जा रहा है। प्रसिद्ध तीर्थ वक्रेश्वर से वैद्यनाथ होकर गया-काशी के रास्ते प्रयाग जाकर मकर स्नान उसके पश्चात् मथुरा के विश्राम घाट पर आगमन। गोवर्धन, वृन्दावन, द्वादश वन का परिभ्रमण, गोकुल में नन्द का घर दर्शन करके प्रचुर क्रन्दन। उसके पश्चात् ब्रजधाम से हस्तिनापुर गमन, वहाँ पर बलराम कीर्त्ति का दर्शन करके "त्राहि हलधर" कहते हुये नमस्कार। इसके पश्चात् द्वारका में आकर सिन्धु स्नान। सिद्ध पुर, मत्स्य तीर्थ, शिव काञ्ची, विष्णु काञ्ची, कुरुक्षेत्र, पृथुदक, विन्दु सरोवर, प्रभास, सुदर्शन तीर्थ, त्रितकूप, महातीर्थ, विशाला ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ, प्रति स्रोता, प्राची-सरस्वती नैमिषारण्य में भ्रमण।

तबे गेला नित्यानन्द अयोध्या-नगर।
राम जन्मभूमि देखि कान्दिला निरन्तर॥
तबे गेला गुहक-चण्डाल-राज्य यथा।
महामूर्च्छा नित्यानन्द पाइलेन तथा॥

गुहक चण्डाले मात्र हइल स्मरण।
तिनदिन आनन्दे आछिला अचेतन॥
ये ये बने आछिला ठाकुर रामचन्द्र।
देखिया विरहे गड़ि जाय नित्यानन्द॥

इसके पश्चात् सरयू कौशिकी में स्नान, पुलह आश्रम में गमन, गोमती, गण्डकी, शोन तीर्थ में स्नान करके महेन्द्र पर्वत के शिखर पर गमन तथा परशुराम दर्शन, हरिद्वार, पम्पा, भीमरथी, सप्तगोदावरी, वेण्वातीर्थ, विपाशा श्रीकार्त्तिक का दर्शन करके श्रीपर्वत पर महेश पार्वती के दर्शन। वहाँ का विशेष वर्णन—

ब्राह्मण-ब्राह्मणी-रूपे महेश पार्वती।
सेइ श्रीपर्वते दोंहे करेन बसति॥
निज-इष्टदेव चिनिलेन दुइ जन।
अवधौत-रूपे करे तीर्थ पर्यटन॥
परम सन्तोषे दोंहे अतिथि देखिया।
पाक करिलेन देवि हरषित हैया॥
परम आदरे भिक्षा दिलेन प्रभुरे।
हासि नित्यानन्द दोंहा कारे नमस्करे॥
कि अन्तर-कथा हैल कृष्ण से जानेन।
तबे नित्यानन्द प्रभु द्राविड़े गेलेन॥

इसके पश्चात् वेंकट नाथ, काम-कोष्ठ पुर, काञ्ची पुरी, कावेरी, रंगनाथ, हरिक्षेत्र, ऋषभ पर्वत, दक्षिण मथुरा, कृत माला, ताम्रपर्णी, उत्तर यमुना, मलय पर्वत में अगस्त्यालय दर्शन, बदरिकाश्रम में गमन। वहाँ का विशेष वर्णन—

कतदिन नर-नारायणेर आश्रमे।
आछिलेन नित्यानन्द परम निर्ज्जने॥
तब नित्यानन्द गेला व्यासेर आलये।
व्यास चिनिलेन बलराम महाशये॥
साक्षात् हइया व्यास आतिथ्य करिला।
प्रभु ओ व्यासेरे दण्डप्रणत हइला॥
तबे नित्यानन्द गेला बौद्धेर भवन।
देखिलेन प्रभु - बसि आछे बौद्धगण॥

जिज्ञासेन प्रभु केहो उत्तर ना करे।
क्रुद्ध हइ प्रभु लाथि मारिलेन शिरे॥
पलाइल बाँद्धगण हासिया हासिया।
बने भ्रमे नित्यानन्द निर्भय हइया॥

इसके पश्चात् कन्यकानगरी दुर्गादेवी दर्शन करके दक्षिण सागर गमन, अनन्त पुर, पञ्च-अप्सरा सरोवर, गोकर्णाख्य शिव का मन्दिर, कुलाचल, त्रिगर्तक, द्वैपायनी, आर्या, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, माहिष्मती पुरी, मल्ल तीर्थ, सूपारक, प्रतीची।

एइमत अभय परमानन्द राय।
भ्रमे नित्यानन्द, भय नाहिक काहाय॥
निरन्तर कृष्णावेशे शरीर अवश।
क्षणे कान्दे क्षणे हासे के बुझे से रस॥

परमानन्द-रूपी नित्यानन्द प्रभु ने तीर्थ भ्रमण के बहाने आनन्दमय पर्यटन से विश्व के सभी को नित्यानन्द का या शाश्वत आनन्द का अधिकारी बनाया।

इसलिये महाप्रभु बोले-

'तोमार पर्यटन नित्यानन्द मय।'

फिर नित्य या शाश्वत आनन्द ही श्रीनित्यानन्द का 'भोजन' है। आनन्दमय श्रीभगवान् तत्त्व की दृष्टि से अपिपास, अजिघास होकर भी अर्थात् भूख, प्यास से रहित होकर भी भक्त की इच्छा से भूख, प्यास को स्वीकार किया करते हैं। गीता में श्रीअर्जुन के प्रति कहा है-

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्य पहृत मश्नामि प्रयतात्मनः॥ (9/26)

"जो मुझे भक्ति के साथ पत्र, पुष्प, फल तथा जल अर्पण करते हैं, मैं उन शुद्धचित्त भक्तगणों का भक्ति के साथ समर्पित उपचार के अन्दर भक्त का जो भक्ति-मकरन्दरस समाहित रहता है, श्रीभगवान् मधुकर (भंवरा) की भाँति उसे ही आस्वादन किया करते हैं। अतः वास्तव में प्रेमानन्द ही उनका भोजन है। श्रीनिताइचाँद निरन्तर प्रेमोन्मत्त हैं, अतः प्रेमानन्द ही उनका भी एकमात्र भोजन है। उनकी लीला में भी वही प्रमाणित होता है।

इससे पहले श्रीमन्नित्यानन्द का तीर्थ पर्यटन वर्णित हुआ है। उसके पश्चात् श्रीमाधवेन्द्रपुरी के साथ साक्षात्कार का प्रसंग, उसके पश्चात्

श्रीमन्नित्यानन्द का सेतुबन्ध में गमन, धेनु तीर्थ में स्नान करके श्रीरामेश्वर दर्शन। इसके पश्चात् विजय नगर, मायापुरी, अवन्ती, गोदावरी जीयर नृसिंह क्षेत्र, त्रिमल्ल, कूर्मस्थान, भ्रमण करके नीलाचल में आगमन। वहाँ कुछ दिन रूककर गंगा सागर दर्शन करके पुन: मथुरा आगमन तथा निरन्तर श्रीवृन्दावन में अवस्थान के प्रसंग में श्रीचैतन्यभागवत में वर्णित हुआ है।

निरवधि वृन्दावने करेन वसति।
कृष्णेर आवेशे ना जानेन दिवाराति॥
आहार नाहिक - कदाचित् दुग्धपान।
सेहो अयाचित - यदि केहो करेघन॥ **(चैः भाः)**

इसके पश्चात् श्रीनवद्वीप में श्रीनित्यानन्द का आगमन; श्रीमन्महाप्रभु के साथ मिलन के पश्चात् श्रीवास के घर पर श्रीनित्यानन्द का अवस्थान।

श्रीवासेर घरे नित्यानन्देर बसति।
"बाप" बलि श्रीवासेर करये पीरिति॥
अहर्निश बाल्यभाव बाह्य नाहि जाने।
निरवधि मालिनीर करे स्तन पाने॥
कभु नाहि दुग्ध परशिले मात्र हय।
ए सब अचिन्त्य शक्तिमालिनी देखय॥
चैतन्येर निवारणे कारे नाहि कहे।
निरवधि शिशुरूप मालिनी देखये॥ **(वही)**

श्रीनिताइचाँद जब बाल्यभाव से श्रीवास की पत्नी मालिनी की गोद में बैठते थे, तब मालिनी को लगता था मानो उनके ही गर्भ से उत्पन्न सन्तान भूख से व्याकुल होकर उनका स्तनपान करना चाह रहा हो। जिस समय प्रभु निताइचाँद श्रीवास के घर पर ठहरते थे, तब श्रीवास की पत्नी की प्रौढ़ावस्था थी, उनके स्तन से दूध निकलने का कोई कारण नहीं था, लेकिन निताइ का दर्शन करते ही वात्सल्य से उनके स्तनों से दूध की धारा बह निकलती थी तथा उनके वस्त्र गीले हो जाते थे। प्रभु निताइचाँद भी उनकी गोद में सिर रखकर उनके उस वात्सल्य के कारण निकलने वाली प्रेमरस की धारा का शिशु की भाँति पान करते थे। इससे जननी तथा शिशु के मन में परम आनन्द का संचार होता था। भक्तगण भी श्रीनित्यानन्द की इस आनन्द भोजन लीला से परमानन्द प्राप्त करते थे, फिर अन्न भोजन के समय श्रीनिताइचाँद उस आनन्द भोजन में सब जगह चावल छिटक देते थे, यह भी उनके आनन्द

भोजन का अनुभाव विशेष है। श्रीमन्महाप्रभु इस चंचलता को देखकर समय-समय पर उनको सावधान करते थे।

यथा-

प्रभु विश्वम्भर बले शुन नित्यानन्द।
काहारो सहित पाछे कर तुमि द्वन्द्व॥
चञ्चलता ना करिबा श्रीवासेर घरे।
शुनि नित्यानन्द 'विष्णु' सङरण करे॥
आमार चाञ्चल्य तुमि कभु ना पाइबा।
आपनार मन तुमि कारे ना वासिबा॥
विश्वम्भर बले - आमि तोमा भाल जानि।
नित्यानन्द बले - दोष कह देखि शुनि॥
हासि बले गौरचन्द्र कि दोष तोमार।
सब धरे अन्नवृष्टि कर अवतार॥ (चै: भा:)

इस प्रसंग में गौरसुन्दर तथा श्रीनिताइ सुन्दर परस्पर एक दूसरे की बात काट रहे थे, यह भी भक्तगणों के लिये परमानन्ददायक है, यद्यपि श्रीगौरांग सामाजिक रूप से श्रीनित्यानन्द के व्यवहार की कमी अवश्य ही दिखा रहे थे, लेकिन साधारण की दृष्टि में यह दोष पूर्ण होने पर भी अवधूत श्रीनिताइचाँद का यह आनन्द भोजन का ही अनुभाव होने के कारण उनका स्वत: सिद्ध गुण विशेष है। जो दुनियाँ तथा समाज की किसी प्रकार की नियमों की सीमा मैं नहीं बँधे हैं, जो निरन्तर अविरल आनन्द के सागर में डूबे हुये हैं, उनके लिये लोकाचार का ज्ञान स्वभाव तो ही असम्भव है। प्रभु बोले, 'तुम्हें' घर के अन्दर चावल भोजन करने देना ही एक बहुत बड़ी बिडम्बना है। तुम्हें झूठा सकड़ी का कोई ज्ञान नहीं है, घर में चारों ओर चावल छिटक कर घर को चावल मय बना देते हो। प्रभु के इस वाक्य को सुनकर आनन्दघन विग्रह श्रीनिताइचाँद की उक्ति-

नित्यानन्द बले इहापागले से करे।
ए छलाय घरे भात नादिबे आमारे॥
आमार ना दिया भात सुखे तुमि खाओ।
अपकीर्त्ति आर केनेबलिया बेड़ाओ॥
प्रभु बले तोमार अपकीर्त्त्ये लाज पाइ।
सेइ से कारणे आमि तोमारे शिखाइ॥

हासि बले नित्यानन्द बड़ भाल भाल।
चाञ्चल्य देखिले शिखाइबे सर्वकाल॥
निश्चय बुझिला तुमि - आमि से चञ्चल।
एत बलि प्रभु चाहि हासे खल खल॥ (वही)

श्रीमन्नित्यानन्द की इस आनन्द भोजन लीला से श्रीअद्वैताचार्य के साथ भी अनोखा रस कलह पैदा हो जाता था। संन्यास ग्रहण के बाद वृन्दावन-गमन के आवेश में अनाहार में, अनिद्रा में तीन दिन राढ़ देश में भ्रमण करते हुये प्रेमोन्मादी श्रीमन्महाप्रभु को श्रीनिताइचाँद जब छलपूर्वक शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर ले गये, तब दोनों प्रभुओं की आनन्द भोजन लीला में आचार्य के द्वारा विभिन्न व्यञ्जन-मिष्ठान आदि से युक्त ढेर सारा भोज्य द्रव्य दोनों प्रभुओं के आगे अर्पण करने पर श्रीनित्यानन्द तथा अद्वैत का परस्पर का प्रेम कलह श्रीचैतन्यचरितामृत में वर्णित है—

श्रीनित्यानन्द कहे - कैल तिन उपवास।
आजि पारणा करिते छिल बड़ आश॥
आजि उपवास हैल आचार्य - निमन्त्रणे।
अर्ध पेट ना भरिबे एइ ग्रासेक अन्ने॥
आचार्य कहे - तुमि हओ तैर्थिक संन्यासी।
कभु फल मूल खाओ कभु उपवासी॥
दरिद्र-ब्राह्मण-धरे ये पाइल मुष्ट्येक अन्न।
इहाते सन्तोष हओ, छाड़ लोभमन॥
नित्यानन्द कहे - यवे कैला निमन्त्रण।
तत दिते चाह, यत करिये भोजन॥
शुनि नित्यानन्द कथा ठाकुर अद्वैत।
कहिलेन तारे किछु पाइया पिरीत॥
भ्रष्ट अवधूत तुमि उदर भरिते।
संन्यास करियाछ बुझि ब्राह्मण दण्डिते?॥
तुमि खाइले पार दश-विश चाउलेर अन्न।
आमि ताहाँ काहाँ पाब दरिद्र ब्राह्मण?॥
येपाआछ मुष्ट्येक अन्न, ताहा खाआ उठ।
पागलाइ ना करह - नाछड़ाइह झुट॥

इस प्रकार हास्य रस से दो प्रभु भोजन करने लगे। आचार्य बार-बार व्यञ्जनादि परोसकर अत्यन्त दैन्य तथा यत्न के साथ श्रीमन्महाप्रभु को भोजन

कराने लगे। आचार्य के दैन्य तथा चेष्टा को देखकर प्रभु ने आचार्य की इच्छापूर्ण की।

नित्यानन्द कहे-मोर पेट ना भरिल।
लञा जाह तोर अन्न किछु ना खाइल॥
एत बलि एकग्रास भात हाते लञा।
उझालि फेलिल आगे येन क्रुध हञा॥
भात दुइ चार लागिल आचार्येर अंगे।
भात अंगे लञा आचार्य नाचे बड़ रंगे॥
अवधूतेर झुटा मोर लागिल अंगे।
परम पवित्र मोरे कैल एइ ढंगे॥
तोरे निमन्त्रण करि पाइनु तार फल।
तोर जाति कुल नाहि - सहजे पागल॥
आपन समान मोरे करिबार तारे।
झुटा दिले विप्र बलि भय ना करिले?॥
नित्यानन्द कहे - एइ कृष्णेर प्रसाद।
इहाके झुटा कहिले तुमि - कैले अपराध॥
शूतेक संन्यासी यदि कराह भोजन।
तबे एइ अपराध हइबे खण्डन॥
आचार्य कहे ना करिब संन्यासी नियन्त्रण।
संन्यासी नाशिले मोर सब स्मृतिधर्म॥

(चै: च: मध्य 3 परिच्छेद)

इस प्रकार रस कलह मय भोजन ही श्रीनित्यानन्द का आनन्द भोजन है। कोई-कोई श्रीनित्यानन्द के आनन्द भोजन का अत्यन्त ही गलत अर्थ करके नित्यानन्द तत्त्व को अत्यन्त ही लघु करने का प्रयास करके नरकगामी होता है! तन्त्र शास्त्र में पञ्च मकार साधन का उल्लेख है। अर्थात् पाँच मकार जिस-जिस शब्द के प्रारम्भ में है, जो- मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन इन पाँचों को आनन्द नाम देकर तान्त्रिक संन्यासी गण साधना के नाम से उनका भोग करके अपने आप को संन्यासी होने का अभिमान करते थे। उस समय बंगाल में इस प्रकार के घृणित तन्त्र साधक रहते थे। असल में वे तन्त्र शास्त्र के इन पाँच शब्दों का आध्यात्मिक अर्थ न समझ पाकर शास्त्र की दुहाइ देकर इस प्रकार के कदाचार में लिप्त रहते थे। तन्त्रशास्त्र के आध्यात्मिक अर्थ में मद्य का तात्पर्य है, योगी के ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्र-दल-कमल के

निकलने वाली सुधा की धारा के पान से मत्तता (मतवाला पन) उत्पन्न होने के कारण वही ब्रह्मानन्द रूपी मद्य है। मांस का अर्थ है 'मा'-रसना अंश अर्थात् रसना (जिह्वा) का अंश वाक्य का भोजन हो या मौन धारण करना ही मांस भोजन है। मत्स्य का तात्पर्य है इड़ा, पिंगला नाड़ी में विचरण करने वाली मछली की भाँति चञ्चल श्वास, प्रश्वास के कुम्भक आदि के द्वारा सुषुम्ना में चालित करना ही मत्स्य भोजन है। आशा, तृष्णा, ग्लानि भय, घृणा, मान, लज्जा तथा क्रोध इन आठ हृदय में स्थित मुद्रा को ज्ञानाग्नि के द्वारा सुसिद्ध करके (अच्छी तरह से उबालकर) भक्षण करना अर्थात् इनको सभी प्रकार से वशीभूत करना ही मुद्रा है। ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्रार के बिन्दुरूपी शिव के साथ कुल-कुण्डलिनी का सम्मिलन ही 'मैथुन' है। अन्य मतानुसार अर्थात् महानिर्वाण तन्त्र के मत में निर्विकार ब्रह्म में योग के द्वारा जो प्रमोद का ज्ञान है वही मद्य है, ब्रह्म में सर्वकर्म का समर्पण ही 'मांस' है, सुख-दुःख में समता का ज्ञान ही 'मत्स्य' है, असत्संग का त्याग तथा सत्संग ही मुद्रा है, तथा मूलाधार में स्थित कुल कुण्डलिनी शक्ति के साथ योग के द्वारा षट्चक्रों का भेद करके सिर पर स्थित सहस्रदल पद्म कर्णिका के अन्तर्गत परम शिव का संयोग ही 'मैथुन' है। तन्त्र शास्त्र के इस अभिप्राय को समझ न पाकर स्वेच्छा चारी कामी व्यक्ति उस समय अपने आप को संन्यासी कहकर परिचय देते हुये मद्य, मांसादि का भक्षण करके नरकगामी होता था। इस समय भी कोई-कोई श्रीनित्यानन्द को भी उसी प्रकार का संन्यासी समझ कर उन्हें मद्य, मांस, मत्स्य भोजन का आरोप लगाते हैं। उनके मत में नित्यानन्द का आनन्द भोजन का तात्पर्य वह सब भोजन ही है। वे इसके प्रमाण स्वरूप श्रीचैतन्य भागवत के श्रीमन्नित्यानन्द के प्रति श्रीअद्वैताचार्य की प्रेम कलह की वाणी को ही ग्रहण किया करते हैं। यथा-

अद्वैत बलये अवधूत मातालिय।
एथा कोन जन तोके आनिल डाकिया॥
दुयार भांगिया आसि साम्भाइलि केने।
संन्यासी करिया तोरे बले कोन जने॥
हेन जाति नाहि, ना खाइला यार घरे।
जारति आछे हेन कोन् जने बले तोरे॥
वैष्णव-सभाय केने महा-मातोयाल।
झाट नाहि पलाइले, नाहिबेक भाल॥

नित्यानन्द बले आरे नाढ़ा! बसि थाक।
किलाइया पाड़ों पाछे देखाइ प्रताप॥
आरे बुड़ा बामना! तोमार भय नाइ।
आमि अवधूत मत्त - ठाकुरेर भाइ॥
स्त्रीये पुत्रे गृहे तुमि परम संसारी।
परम हंसेर पथे आमि अधिकारी॥
आमि मारिलेओ किछु बलिते ना पार।
आमा-सने तुमि अकारणे गर्वकर॥
शुनिया अद्वैत क्रोधे अग्नि हेन ज्वले।
दिगम्बर हइया अशेष मन्द बले॥
मत्स्य खाओ, मांस खाओ, केमत संन्यासी।
वस्त्र एड़िलाम आमि एइ दिगवासी॥

(चै: भा: मध्य-24 अ:)

श्रीमन्नित्यानन्द तथा श्रीअद्वैताचार्य का यह प्रेम कलह परसार (एक दूसरे के प्रति) की गाली गलौच की भाँति प्रतीत होने पर भी यह जैसे परस्पर के प्रेम की ही परिणति है, पारस्परिक क्रोध पूर्ण उक्ति सम्पूर्ण मिथ्या है; वैसे ही "मछली खाते हो, मांस खाते हो, किस प्रकार के संन्यासी हो" यह श्रीनित्यानन्द के प्रति श्रीअद्वैताचार्य की केवल मिथ्या व्यंगोक्ति मात्र ही है। इसलिये श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने लिखा है—

कृष्ण प्रेम-सुधा रसे मत्त दुइ जन।
अन्योन्य कलह करये सर्वक्षण॥
इथे एक जनेर हैया पक्ष ये।
अन्य जने निन्दा करे क्षय जाय सो॥
हेन प्रेम-कलहेर मर्म ना जानिया।
एक निन्दे, आर वन्दे, से मरे पुड़िया॥ **(वही)**

श्रीनित्यानन्द अवधूत थे, संन्यासी मात्र को ही अवधूत नहीं कहा जाता जो संन्यासी तुरीयातीत एक विशेष अवस्था को प्राप्त करता है उसे ही अवधूत कहा जाता है। श्रीनित्यानन्द वेद-विरुद्ध तन्त्र शास्त्रानुगत संन्यासी नहीं थे, अत: उन्होंने कभी भी मद्य, मत्स्यादि अखाद्य वस्तुओं का दर्शन, स्पर्श आदि नहीं किया है। अन्यान्य लीलाओं से यह प्रमाणित होता है।

श्रीअद्वैत प्रभु जब श्रीमन्महाप्रभु की दण्ड कृपा प्राप्ति की आशा से श्रीहरिदास के साथ शान्तिपुर जाकर ज्ञानवाद की व्याख्या करने लगे, महाप्रभु

यह सुनकर अद्वैताचार्य को शासन करने के लिये नित्यानन्द को साथ लेकर शान्तिपुर की ओर रवाना हो गये। कुछ दूर जाने के बाद रास्ते में गंगा के किनारे वे ललित पुर नामक गाँव में उपस्थित हुये। उस गाँव में रास्ते के किनारे एक वाममार्गी संन्यासी का घर दिखायी देने पर श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द से पूछा 'मकान किसका है? श्रीनिताइचाँद बोले 'यह एक संन्यासी का मकान है' प्रभु बोले, 'यदि सौभाग्य हो तो एक बार उनका दर्शन कर चलें। यह कहकर दोनों संन्यासी के घर के अन्दर प्रवेश कर गये। महाप्रभु के भक्ति से भरकर संन्यासी को प्रणाम करने पर संन्यासी ने दोनों के दर्शन से आनन्दित होकर महाप्रभु को आशीर्वाद दिया- "धन, वंश, सुविवाह, विद्या प्राप्ति हो।" आशीर्वाद सुनकर महाप्रभु बोले, 'संन्यासी ठाकुर! यह कैसा आशीर्वाद दिया- यह आशीर्वाद करें, जिससे मुझे श्रीकृष्ण की प्रसन्नता प्राप्त हो- यही असल में आशीर्वाद है।'

विष्णु भक्ति आशीर्वाद अक्षय अव्यया
ये बलिला गोंसाञि तोमार योग्य नय। (चैः भाः)

महाप्रभु की बात सुनकर संन्यासी उपहास करके बोले- 'बड़ी अच्छी बात है, यह तो अच्छा लड़काहै! पहले जो लोगों के मुँह से सुनायी पड़ता था, आज वह प्रत्यक्ष हुआ।

भाल रे बलिते लोक ठेंगा लैया धाय।
ए विप्र-पुत्रेर सेइ मत व्यवसाय॥
धन-वर दिलाम आमि परम सन्तोषे।
कोला गेल उपकार आरो आमा दोषे॥"
"संन्यासी बलये शुत ब्राह्मण-कुमार।
केने तुमि आशीर्वाद निन्दिले आमार॥
पृथिवीते जन्मिया ये ना कैल विलास।
उत्तम कामिनी यार ना हइल पाश॥
यार धन नाहि तार जीवने कि काज।
हेन न वर दिते पाओ तुमि लाज॥
हइल वा विष्णु भक्ति तोमार शरीरे।
धन बिना कि खाइबा ताहा कह मोरे॥ (वही)

संन्यासी की बातें सुनकर महाप्रभु अपने माथे पर हाथ रखकर हल्के हास्य के साथ बोले, संन्यासी ठाकुर! तुम्हारी बातें मैं कुछ भी नहीं समझ पाया, हम क्या खायेंगे यह सोचकर बेचैन होने का कोई कारण नहीं है। कर्म

के अनुसार फल सभी भोग किया करते हैं। धन प्राप्ति के लिये सभी जी जान से कोशिश करते हैं लेकिन उससे क्या धन प्राप्त होता है? सभी वंश वृद्धि की कामना करते हैं, लेकिन वृद्ध पिता, पितामह को रखकर पुत्र, पौत्रादि मर जाते हैं। दु:ख की प्राप्ति की कोई भी कामना नहीं करता है, लेकिन यथा समय दु:ख क्यों आकर उपस्थित होता है? अत: अपना अर्जित कर्मफल सभी को भोगना पड़ता है। विषय सुख से ही संसारी लोगों का चित्त सन्तुष्ट होता है। जानकर वेद के कर्मकाण्ड स्वर्गादि आशापूर्ण वाक्यों से लोगों को वैदिक कर्म में प्रवर्त्तित किया करते हैं। गंगा स्नान, हरिनाम से लोगों को धन, पुत्रादि की प्राप्ति होती हैं, यह जो फलश्रुति है यह केवल सकाम मानव को उस कार्य में प्रवर्त्तित करने के लिये हैं, क्योंकि उस वस्तु की शक्ति से स्वत: ही कृष्ण में भक्ति प्राप्त हो जाया करती है। मूर्ख व्यक्ति वेद के उस गूढ़ तात्पर्य को समझ नहीं पाता, इसलिये कृष्ण भक्ति छोड़कर विषयों के सुख में रम जाता है। गोसाँइ! अच्छा, बुरा विचार करके देखो कृष्ण भक्ति के सिवाय और दूसरा वर कुछ भी नहीं है।' जगद्गुरु श्रीगौरसुन्दर ने संन्यासी को लक्ष्य करके जगत् को भक्ति का उपदेश दान किया। लेकिन संन्यासी प्रभु के वाक्य का मर्म कुछ भी नहीं समझ पाये। वह बोले—

संन्यासी बलये हेन काल से हइल।
शिशुर अग्रेते आमि किछु ना जानिल॥
आमि करिलाम ये पृथिवी पर्यटन।
अयोध्या मथुरा माया बदरिकाश्रम॥
गुजरात काशी गया विजया नगरी।
सिंहल गेलाम आमि आछे यत पुरी॥
आमि ना जानिल भाल - मन्द हय काय।
दुधेर छाओपाल आजि आमारे सिखाय॥ (चै: भा:)

संन्यासी की बातें सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु बोले- "गोसाँइ! इस शिशु के साथ तुम्हें भला बुरा विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है, यह तुम्हारी महिमा क्या समझेगा; मैं तुम्हारी सब महिमा जानता हूँ, तुम मुझे देखकर सब क्षमा कर दो।" अपनी प्रशंसा सुनकर संन्यासी को सन्तुष्टि हुई, उन्होंने उनसे भोजन के लिये अनुरोध किया। संन्यासी के अनुरोध पर दोनों प्रभु गंगा स्नान करके संन्यासी के द्वारा दिया हुआ, दूध, आम तथा कटहल

आदि फल श्रीकृष्ण को भोग लगाकर सेवन करने लगे। संन्यासी वाममार्गी है, मदिरा पान किया करता है। श्रीनित्यानन्द से इशारे में वही कहने लगा।

शुनह श्रीपाद! किछु 'आनन्द' आनिब।
तोमा-हेन अतिथि बा कोथाय-पाइब॥
देशान्तर फिरि नित्यानन्द सब जाने।
मद्यप संन्यासी हेन जा निलेन मने॥
'आनन्द आनिबे' न्यासी बले बार बारा।
नित्यानन्द बले - तबे लड़ से आमार॥ (वही)

बार-बार संन्यासी के 'आनन्द लाऊँ, आनन्द लाऊँ, कहते रहने पर श्रीनित्यानन्द बोले, 'तो मैं यहाँ से भाग जाऊँगा।' महाप्रभु संन्यासी की बात का अर्थ कुछ भी नहीं समझ पाये।

प्रभु बले- कि आनन्द बलये संन्यासी?।
नित्यानन्द बलये - मदिरा हेन बासि॥
'विष्णु विष्णु स्मरण करये-विश्वम्भर।
आचमन करि प्रभु चलिला सत्वर॥
दुइ प्रभु चञ्चल गंगाय झाँप दिया।
चलिला आचार्य ग्रहे गंगाय भासिया॥ (चैः भाः)

जो भी हो श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के आनन्द भोजन का मतलब प्रेम रसास्वादन की बात ही कही है यह निश्चित है। इसके पश्चात् प्रभु बोले, "तोमार सब व्यवहार नित्यानन्द मय।" "नित्यानन्द पर्यटन भोजन व्यभार।" नित्यानन्द का बाहरी व्यवहार सभी नित्यानन्द मय है, अतः साधारण के लिये अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। हमने कहा है, श्रीनित्यानन्द 'तुरीयातीत़ावधूत हैं।'

अवधूत पद धर्मशास्त्रों में अनेकों स्थानों पर अनेकों अर्थों में व्यवहार में लाया गया है। श्रीमद्‌भागवत में दिखायी पड़ता है, श्रीशुकदेव महाराज जब परीक्षित महाराज के प्रायो वेशन स्थल पर आये तब दर्शकों ने उन्हें अवधूत समझा था। इसके बारे में इस प्रकार का वर्णन देखने को मिलता है- वह अनपेक्ष हैं, अलक्ष्य लिंग अर्थात् आश्रमादि के चिह्न से विहीन हैं। शास्त्रों में गृहस्थादि जो चार आश्रम हैं प्रत्येक आश्रम का ही लक्षण शास्त्र में निर्धारित हुआ है। श्रीशुकदेव का कोई आश्रम का चिह्न नहीं था, वह अपनी प्राप्ति से सन्तुष्ट तथा अवधूत हैं। श्रीधर स्वामी ने "अवधूत वेशः" शब्द के अर्थ में लिखा है, "अवधूतः अवज्ञया जनैस्त्यक्तो यस्तस्येव वेशोयस्य" अर्थात् मनुष्यगण अवज्ञा के साथ जिसका त्याग करते हैं, वह अवधूत है, उनका जो वंश है वही

अवधूत वेश है।' भागवत में उनके अंग प्रत्यंग का वर्णन करते हुये श्रीभागवतकार ने लिखा है- दिगम्बरं वक्र विकीर्ण केशम्" वह दिगम्बर हैं, अर्थात् उनके परिधान में कौपीन, बहिर्वास आदि कुछ भी नहीं था, उनके बाल घुँघराले तथा बिखरे हुये थे अर्थात् उनके सिर के बाल लम्बे तथा बिखरे हुये थे, उनमें तैल आदि का प्रयोग नहीं होता था।

फिर श्रीमद्भागवत में एकादश स्कन्ध के सप्तम अध्याय में एक अवधूत की लम्बी कहानी का वर्णन किया गया है। इसमें सप्तम अध्याय से नवम अध्याय तक 'अवधूत गीता' का प्रसंग देखने को मिलता है। इस अवधूत ने विश्व की बहुत सी वस्तुओं को उपदेष्टा देखकर अपने जीवन की कर्तव्यता को निर्धारित किया था। वह बालक की भाँति विचरण करते थे। चारों आश्रम या संन्यास आश्रम के जो सब आश्रम धर्म पुराण तथा स्मृति संहिता में वर्णित हुये हैं उन्हें उन सभी का पालन करना होता है, लेकिन अवधूत अलक्ष्य लिंग हैं। उनका कोई आश्रम का चिह्न नहीं है तथा वह किसी नियम के भी बाध्य नहीं हैं। वह अगर चाहें तो सभी प्रकार के वेशभूषा से सुसज्जित होकर रह सकते हैं। वे चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, चार प्रकार के अत्यन्त रसीले खाद्य ग्रहण कर सकते हैं, फिर उपवास रहकर भी रात दिन बिता सकते हैं। वे शत-शत (सैकड़ों) स्त्रियों को लेकर विहार कर सकते हैं, फिर उसी पल सभी भोग विलासों को त्याग कर पिशाच की भाँति विचरण कर सकते हैं। राजमहल, पत्तों की कुटिया, जंगल, श्मशान सभी स्थानों पर ही वे वास कर सकते हैं, लेकिन सभी विषयों में आसक्ति रहित हैं। उनका चित्त सदा ही परमात्मा में डूबा रहता है। उनका व्यवहार "बालोन्मत्त पिशाचवत्" लोगों की नजरों में प्रतीत होने पर भी उनका चित्त निरन्तर भगवच्चिन्तन में आनन्द से पूर्ण रहता है। कभी पर उनका स्नेह का बन्धन नहीं है लेकिन नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, स्थावर-जंगम सम्पूर्ण जीवमात्र में ही उनकी परम प्रीति है। विश्व में उनका कोई पराया नहीं है, फिर आसक्ति के भाव में कोई उनका अपना भी नहीं है। वह आत्मक्रीड़, आत्मरति हैं, उनका मान नहीं है, अपमान नहीं है, हानि, लाभ की चिन्ता नहीं है, वह सदा ही परमानन्द से सराबोर तथा बालक की भाँति घुमन्तु हैं। वह उपाधि रहित तथा सर्वदा केवलानुभवानन्द-सन्दोह से लबालब रहते हैं।

श्रीनित्यानन्द तुरीयातीत अवधूत हैं, यह कहा गया है। इनका लक्षण- तुरीयातीतोपनिषद में विस्तृत रूप से वर्णित हुआ है-

"अथ तुरीयातीतावधूतानां कोऽयं मार्गस्तेषां कास्थितिरति पितामहो भगवन्तं पितरमादि नारायणं परिसमेत्योवाच। तमाह भगवन्नारायणो योऽयम अवधूतमार्गस्थो लोकेदुर्लभतरो न तु बाहुल्यो यद्येको भवति स एव नित्यपूतः स एव वैराग्य मूर्तिः, स एव ज्ञानाकारः, स एव वेद पुरुषो, इति ज्ञानिनो मन्यन्ते। महापुरुषायतस्तच्चित्तं मय्येवावतिष्ठते। अहं च तस्मिन्नेवावस्थितः सोऽमादौ तावत्क्रमेण कुटीचको बहूदकत्वं प्राप्य बहूदको हंसत्वमवलम्ब्य हंसः परम हंसो भूत्वा स्वरूपानुसंधानेन-सर्वप्रपञ्चं विदित्वादण्ड कमण्डलु कटि सूत्र कौपीनाच्छादनं स्वविध्युक्त क्रियादिकं सर्वमप्सु संनस्य दिगम्बरो भूत्वा विवर्ण जीर्ण-वल्कलाजिन परिग्रहमपि संतज्य तदूर्धममन्त्रवदाचरण क्षौराभ्यंगस्नानोर्द्ध पुण्ड्रादिकं विहाय लौकिक वैदिक मप्युप संहृत्य सर्वत्र पुण्यापुण्यवर्जितो ज्ञानाज्ञानमपि विहाय शीतोष्ण सुख-दुःखमानावमानं निर्जित्य वासनात्रयपूर्वकं निन्दाऽनिन्दागर्वमत्सर दम्भदर्पद्वेषकामक्रोध लोभ मोह हर्षामर्षासूयात्म संरक्षणादिकं दग्ध्वा स्ववपुः कुणपाकार मिव पश्यन्न-यत्नेनानियमेन लाभा लाभौ समौ कृत्वा गोवृत्या प्राण संधारणम् कुर्वन् यत्प्राप्तं तेनैव निर्लोलुपः सर्वविद्यापाण्डित्य प्रपञ्चं भस्मीकृत्य स्वरूपं गोपयित्वा ज्येष्ठा ज्येष्ठ त्वानपलापकः सर्वोत्कृष्टत्व सर्वात्मकत्वाद्वैतं कल्पयित्वा मत्तो व्यतिरिक्तः कश्चिन्नान्योऽस्तीति देवगुह्यादिर्धनमात्मन्युपसंहृत्य दुःखेन नोद्विग्नः सुखेननानुमोद कोरागे निष्पृहः सर्वत्र शुभा शुभयोरनभिस्नेहः सर्वेन्द्रियोपरमः स्वपूर्वापन्ना-श्रमाचार विद्याधर्म प्राभवमनुस्मरंस्त्यक्त वर्णाश्रमा चारः सर्वदा दिवानक्तसमत्वेनास्वप्नः सर्वदा संचार शीलो देहमात्रा वशिष्टो जलस्थल-कमण्डलुः सर्वदाऽनुन्मत्तो बालोन्मत्तपिशाचवदेकाकीसंचरन्नसंभाषणपरः स्वरूपध्यानेन निरालम्बमवलम्ब्य स्वात्मनिष्ठानुकूलेन सर्वं विस्मृत्य तुरीयातीतावधूतवेषेणाद्वैत निष्ठापरः प्रणतात्मकत्वेन देहत्यागं करोतियः सोऽवधूतः स कृतकृतो भवतीत्युपनिषत्॥"

इस श्रुति वाक्य का तात्पर्य यह है कि "तुरीयातीत अवधूतगणों का मार्ग एवं स्थिति के सम्बन्ध में ब्रह्मा की जिज्ञासा के जवाब में आदि नारायण अर्थात् स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है- जगत् में अवधूत मार्गस्थ व्यक्ति दुर्लभतर हैं, उनका बाहुल्य नहीं है। यदि एक व्यक्ति अवधूत मार्ग का अनुयायी होता है तो वही-नित्य पवित्र, वैराग्य की मूर्त्ति है, वही ज्ञानाकार है तथा वेद पुरुष हैं- ऐसा ज्ञानी लोग समझते हैं। वही महापुरुष हैं, क्योंकि उनका चित्त मुझमें ही अवस्थित रहता है, मैं भी उनमें ही अवस्थान करता हूँ।

यह अवधूत क्रमानुसार विविध अवस्थाओं को प्राप्त करता है- पहले वह कुटीचक् (स्वाश्रम धर्म प्रधान) होता है; उसके पश्चात् बहूदकत्व प्राप्त करता है (जो कर्मों का परित्याग करके ज्ञानाभ्यास को प्रधानता देता है उसे बहूदक कहा जाता है) बहूदकत्व प्राप्ति के बाद वह हंसत्व का अवलम्बन करके हंस (ज्ञानाभ्यास निष्ठ) हो जाता है, तथा उसके पश्चात् परमहंस (निष्क्रिय-प्राप्त तत्त्व) हो जाता है। (कुटीचक आदि का परिचय, "न्यासे कुटीचक: पूर्वं बह्वदो हंस निष्क्रियौ" (भा: 3/12/47) श्लोक की श्रीधर स्वामी की टीका से लिया गया है। टीका के अन्त में स्वामीपाद ने लिखा है- "ऐते च सर्वे यथोत्तरं श्रेष्ठा:" अर्थात् कुटीचक से बहूदक, बहूदक से हंस, हंस से परमहंस श्रेष्ठ है।) परम हंस होकर वह स्वरूपानुसन्धान के द्वारा समस्त प्रपञ्च से अवगत होता है तथा दण्ड, कमण्डल, कटिसूत्र, कौपीनाच्छादन तथा स्वविधि के अनुसार बतायी गयी सभी क्रियाओं को जल में विसर्जन करके दिगम्बर होकर विवर्ण-जीर्ण-वल्कल वसन का भी परित्याग करके उससे ऊर्ध्वावस्था में आरोहण करके क्षौर, अभ्यंग स्नान तथा ऊर्ध्वपुण्ड्रादि का भी परित्याग करते हुये लौकिक तथा वैदिक आचार आदि का भी उपसंहार (समाप्ति) करके सर्वत्र पुण्यापुण्य से वर्जित होकर ज्ञानाज्ञान का भी परित्याग करता है तथा शीत, उष्ण, सुख, दु:ख, मान, अपमान को भी निर्जित करके निन्दा, अनिन्दा, गर्व, मत्सर, दम्भ, दर्प, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, अमर्ष, असूया तथा आत्म संरक्षणादि को दग्ध करके, अपने शरीर को कुणपाकार (शबाकार) की भाँति मान कर, अयत्न के साथ तथा अनियम के साथ लाभ, हानि को समान समझकर गोवृत्ति के द्वारा प्राण रक्षा किया करता है। जो कुछ प्राप्त होता है निर्लोभी होकर उसी में सन्तुष्ट रहता है तथा सर्वविद्या-पाण्डित्य-प्रपञ्च को भस्मी भूत करके अपने स्वरूप को गुप्त रखकर ज्येष्ठ-अज्येष्ठत्व का त्याग करके, सर्वात्कृष्टत्व-सर्वात्मकत्व-अद्वैत कल्पना करके मेरे (श्रीकृष्ण) के अलावा और कुछ भी नहीं है- ऐसा समझकर देव गुह्यादि धन अपने अन्दर समाप्त करके दु:ख में निरुद्विग्न, सुख का अनुमोदक, राग (आसक्ति) में स्पृहा शून्य होकर सर्वत्र शुभाशुभ-विषयों में स्नेह रहित होकर समस्त इन्द्रियों को वशीभूत करके अपने पूर्वाश्रम के आचार, विद्या, धर्म, प्रभाव आदि का मन में स्मरण न करके सदैव संचारवान होकर देहमात्रावशिष्ट जल, स्थल दण्ड, कमण्डल रहित होकर सर्वदा उन्मत्तता रहित रहकर बालक, उन्मत्त तथा पिशाच की भाँति अकेला विचरण करता

है। किसी के साथ बात-चीत नहीं करता; स्वरूप के ध्यान के द्वारा निरालम्ब अवलम्बन करके अपनी निष्ठा की अनुकूलता में सब कुछ विस्मृत होकर तुरीयातीत अवधूत के वेश में अद्वैत निष्ठापरायण होकर प्रणवात्मकता के द्वारा जो देह का त्याग करता है, वह अवधूत है। वह कृतकृत्य हो जाता है।" इस श्रुति वाक्य से यह ज्ञात होता है कि जो अवधूत है वह श्रीकृष्ण का उपासक है, श्रीकृष्ण के अलावा अन्य कोई को अनुभव करता है श्रीकृष्ण के अलावा अन्य कोई वस्तु ही उसे अनुभूत नहीं होती है। यही उसका अद्वैत भाव है। अत: उसका बाहरी व्यवहार दुर्ज्ञेय होने पर भी सब कुछ नित्यानन्द मय है, यह निश्चित है।

श्रीमन्नित्यानन्द के बाह्य व्यवहार को देखकर, वह सब नित्यानन्द रसमय है, यह अनुभव करना कठिन है तथा महाप्रभु की कृपा की आवश्यकता है। दूसरों की बात दूर, श्रीमन्महाप्रभु के सहपाठी कोई ब्राह्मण ही श्रीनित्यानन्द के व्यवहार से सन्देहचित्त हुये थे तथा नीलाचल में श्रीमन्महाप्रभु से उस विषय में प्रश्न किया था।

विप्र बले - प्रभु मोर एक निवेदन।
करिब तोमार स्थनि यदि देह मन॥
नवद्वीपे गिया नित्यानन्द अवधूत।
किछु तना बुझों मुइ करेन कि रूप॥
संन्यास आश्रम तान बले सर्वजन।
कर्पूर ताम्बूल से भोजन सर्वक्षण॥
धातु द्रव्य परशिते नाहि संन्यासीरे।
सोनारूपा मुक्ता से सकल कलेवरे॥
काषाय कौपीन छाड़ि दिव्य पट्टवास।
धरेन चन्दनमाला सदाइ विलास॥
दण्ड छाड़ि लौहदण्ड धरेन वा केने।
शूद्रेर आश्रमे से थाकेन सर्वक्षणे॥
शास्त्रमत मुइ तान ना देखि आचार।
एतेके मोहोर चित्ते सन्देह अपार॥
'बड़लोक' बलि ताँरे बले सर्वजने।
तथापि आश्रमाचार ना करेन केने॥
यदि मोरे भृत्य हेन ज्ञान थाके मने।
कि मर्म इहार प्रभु! कह श्रीबदने॥ **(चैः भाः)**

श्रीमन्महाप्रभु के निकट नित्यानन्द तत्त्व के विषय में ब्राह्मण का यह अभियोग जिस प्रकार एक तरफ सुसंगत है, उसी प्रकार दूसरी तरफ नित्यानन्द तत्त्व तथा अवधूत के आचार व्यवहार के बारे में अत्यन्त अनभिज्ञता का परिचायक है। अभियोग की सुसंगति इसलिये है कि महाजन का आचरण देखकर ही साधारण मनुष्य उसका अनुसरण करते हैं। श्रीगीता में श्रीभगवान् ने श्रीमुख से कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥ (गीता-3/21)

अर्थात् "श्रेष्ठ व्यक्ति जिस प्रकार का आचरण करता है, साधारण मानव उसी का अनुकरण करता है, वे जो प्रमाणित के रूप में स्वीकार करते हैं, सभी उसी के अनुवर्ती होते हैं। इसलिये श्रीभगवान् आत्माराम तथा आप्तकाम होकर भी लोगों की शिक्षा के लिये देश-काल-पात्र का उपयोगी कार्य करते हैं। जो विषयासक्त संसारी मनुष्यों को विषय भोगों का त्याग कराकर ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति के राज्य में उन्नतमान करने की इच्छा करते हैं, उन्हें स्वयं को अति अवश्य ही त्याग, वैराग्य तथा भजन के पथ पर चलना होगा। श्रीमन्महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण करके संन्यासाश्रम की नियमावली का अक्षरशः पालन किया है। लोक शिक्षार्थ इस प्रकार का आचरण ही सुसंगत तथा शास्त्र सम्मत है। महाप्रभु के सहपाठी यह शास्त्रज्ञ ब्राह्मण नित्यानन्द के चरित्र में इसके विपरीत आचरण देखकर दुःखी हुये थे। लेकिन नित्यानन्द क्या वस्तु है। यह उन्हें ज्ञात नहीं था इसलिये नित्यानन्द के चरित्र में उन सब कर्तव्यों का पालन न देखकर तथा लोगों के मुँह से अत्यन्त बढ़ा चढ़ाकर अपवाद की बातें सुनकर महाप्रभु के चरणों में उन्होंने सदिच्छा के साथ ही इन सभी अभियोगों को ज्ञापित किया था। श्रीमन्महाप्रभु ने भी विप्र के अभियोग सुनकर उनकी सान्त्वना के लिये जो सदुत्तर प्रदान किया था।

वह इस प्रकार है—

शुनिया विप्रेर वाक्य श्रीगौरसुन्दर।
हासिया विप्रेर प्रति कहिला उत्तर॥
शुन विप्र महा अधिकारी येबा हय।
तबे तार दोष गुण किछु ना जन्मय॥
पद्म पत्रे येन कभु नाहि लागे जल।
एइमत नित्यानन्द स्वरूप निर्मल॥

परमार्थे कृष्णचन्द्र ताँहार शरीरे।
निश्चय जानिह विप्र सर्वदा विहरे॥
अधिकारी बई करे ताहान आचार।
दुःखपाय सेइ जन पाप जन्मे तार॥
रुद्र बिना अन्ये यदि करे विषपान।
सर्वथायभरे, सर्वपुराण प्रमाण॥ (चैः भाः)

विप्र को समझना चाहिये था कि अधिकारी के स्तर से कार्य का अन्तर होता है। अधिकार भी सभी का समान नहीं होता। जो श्रीकृष्ण के प्रेमीभक्त हैं, मायिक विश्व की जड़ीय वस्तुओं (विषयों) में जिनकी किसी भी प्रकार की आसक्ति नहीं है, उनके लिये जो कार्य शोभा पाता है साधारण व्यक्ति के लिये उसका अनुकरण अपराध जनक है। कमल का पत्ता निरन्तर पानी के ऊपर तैरता रहता है, वह पानी के स्पर्श से गीला या गन्दगीयुक्त नहीं हो जाता है। श्रीमन्नित्यानन्द साक्षात् भगवान् हैं, वह कमल के पत्ते की भाँति सर्वथा निर्मल हैं, किसी प्रकार से ही उनकी विकृति सम्भव नहीं है, अतः जीव के लिये उनका अनुकरण करके चलना कर्त्तव्य नहीं है। श्रीशुकमुनि से रासलीला का श्रवण करके महाराज परीक्षित ने 'श्रीकृष्ण पर दाराभिमर्षण रूपी अधर्म जनक कार्य क्यों किया ? इस प्रकार का प्रश्न किया था। यद्यपि राजा परीक्षित श्रीकृष्ण तत्त्व के सम्बन्ध में अभिज्ञ थे, उनके अपने मन में कोई प्रश्न नहीं था, फिर भी दूसरों के संशय को मिटाने के लिये उन्होंने वह प्रश्न उठाया था। श्रीशुकदेव ने इस प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण की भगवत्ता को प्रमाणित करके उस संशय की जड़ को उखाड़ फेंका था। निम्न श्लोक उनकी वाणी में शामिल है—

"नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।
विनश्यत्याचरन्मौढ्याद यथा रुद्रोब्धिजं विषम्॥

(भाः 10/33/30)

तात्पर्य यह है कि सामर्थ्य विहीन कोई व्यक्ति इस प्रकार के कार्य का आचरण करना तो दूर मन में भी कभी इस प्रकार की चिन्ता ना करे। अज्ञानतावश इस प्रकार की चिन्ता से भी मनुष्य विनाश को प्राप्त हो जाता है। समुद्र मन्थन में जो हलाहल निकल था, महायोगेश्वर भगवान् श्रीरुद्रदेव ही उसे अनायास तथा विपदा रहित रूप से पान करने में सक्षम हुये थे। दूसरों के

लिये उसकी एक बूँद भी पान करना तुरन्त प्राणों का नाशक है इसमें संशय कैसा!

एतेके ये ना जानिया निन्दे तान कर्म।
निज-दोषे सेइ दुःख पाय जन्म-जन्म॥
गर्हितो करये यदि महा-अधिकारी
निन्दार कि दाय ताँरे हासि लेइ मरि॥ (चैः भाः)

इस प्रसंग में श्रीमन्महाप्रभु ने ब्राह्मण को श्रीमद्भागवत का एक आख्यान सुनाया। उस आख्यान का मर्म इस प्रकार है कि ब्रह्मा के अपनी पुत्री के प्रति कामभाव को देखकर मरीचि के छह पुत्रों ने उसका उपहास किया था। उस अपराध से उन्होंने हिरण्यकश्यप की पत्नी के गर्भ से जन्म लेकर इन्द्र के वज्राघात से प्राण त्यागा था। योगमाया देवी ने उनको ही पुनः देवी के गर्भ में संचार किया था, वे फिर कंस के हाथों मारे गये थे। इस प्रकार ब्रह्मा का उपहास कने से उन्हें विभिन्न यातनाओं को झेलना पड़ा था। श्रीकृष्ण तथा बलदेव के कंस वध के पश्चात् अवन्ती नगर में सान्दीपनि मुनि के पास अध्ययन के लिये जाने पर अध्ययन की समाप्ति पर श्रीसान्दीपनि मुनि ने श्रीकृष्ण से मृतपुत्रों के प्राणदान की दक्षिणा माँगी थी। तथा श्रीकृष्ण ने भी यमपुरी से उनके मृतपुत्रों को लाकर दिया था। श्रीदेवकी देवी को यह समाचार प्राप्त होने पर कंस के द्वारा मारे गये उनके छह पुत्रों को देखने की कामना करने पर श्रीकृष्ण ने बलि के भवन से उन छह पुत्रों को माता के पास लाकर दिया था। उनको देखकर वात्सल्य से भरकर माता देवकी के स्तनदान करने पर श्रीकृष्ण के उच्छिष्ट (झूठे) देवकी देवी के स्तनों का पान करने से उनका दुःख दूर हुआ था। श्रीकृष्ण ने उनके अपराध की बात का स्मरण कराकर ब्रह्मा से उनके अपराध के लिये क्षमा की भिक्षा माँगने का उपदेश दिया था। ब्रह्मा के उपहास से जब सिद्धगणों को ही इस प्रकार की यातना झेलनी पड़ी थी, तब महत् के निकट अपराध के कारण साधारण लोगों को विभिन्न भयानक यातनायें भोगनी पड़ेंगी इसमें संशय नहीं है। श्रीमन्महाप्रभु बोले—

कहिलाम विप्र एइ भागवत-कथा।
नित्यानन्द प्रति द्विधा छाड़ह सर्वथा॥
नित्यानन्द-स्वरूप परम अधिकारी।
अल्प भाग्ये ताहाने जानिते नाहि पारि॥

अलौकिक चेष्टा येवा किछु देख तान।
ताहाते ओ आदर करिले पाइ त्राण॥
पतितेर त्राण लागि ताँर अवतार।
ताँहा हैते सर्वजीव हइब उद्धार॥
ताँहार आचार- विधि-निषेधेर पार॥
ताँहारे जानिते शक्ति आछये काहार॥
ना बुझिया निन्दे तान चरित्र अगाध।
पाइया ओ विष्णु भक्ति तान हय बाध॥
चल विप्र! तुमि शीघ्र नवद्वीपे जाओ।
एइ कथा कहि तुमि सबारे बुझाओ॥
पाछे ताँरे केहो कोन रूप निन्दा करे।
तबे आर रक्षातार नाहि यम-घरे॥
ये ताँहारे प्रीति करे से करे आमारे।
सत्य सत्य सत्य विप्र कहिल तोमारे॥
मदिरा यवनी यदि नित्यानन्द धरे।
तथापि ब्रह्मार वन्द्य कहिल तोमारे॥
"गृह्णीयाद् यवनीपाणिं विशेद् वा शौण्डिकालयम्।
तथापि ब्रह्मणो वन्द्यं नित्यानन्द-पदाम्बुजम्॥"

इसके द्वारा यह जाना गया कि श्रीमन्नित्यानन्द का व्यवहार तो सभी नित्यानन्दमय है। इसके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है- "नित्यानन्द बिना किछु नाहिक तोमार" अर्थात् श्रीनित्यानन्द का जन्म, कर्म, लीला आदि सभी नित्यानन्दमय है। इस पद्य के आधे में श्रीमन्महाप्रभु ने अत्यन्त गूढ़ नित्यानन्द तत्त्व के जन्म, कर्मादि अखिल चेष्टाओं की ही नित्य या शाश्वत आनन्द रूपता का वर्णन किया है।

विश्व के जीवों पर करुणा करके श्रीभगवान् जो विभिन्न रूपों में विश्व में अवतीर्ण होते रहते हैं, उनका वो सब शरीर हमारे शरीर की भाँति चर्म, रक्त, मांस, मेद, मज्जा से गठित पाञ्चभौतिक नहीं है। वह सब अंग ही नित्य-सच्चिदानन्दमय है। शास्त्रों में विभिन्न प्रकार से भगवद् विग्रह की चिदानन्दरूपता वर्णित हुई है। भगवद् विग्रह समूह दृश्यतः प्राकृत देहवत् प्रतीत होने पर भी वास्तव में वह अप्राकृत तथा चिदानन्दमय है। "सत्यं ज्ञानं, आनन्दं ब्रह्म"—यही ब्रह्म का स्वरूप है। श्रीभगवान् का देह चिदानन्द वस्तु है, इसलिये उनमें मानव की भाँति देह देही का भेद नहीं है। "देह देहि भिदा

चात्र नेश्वरे विद्यते क्वचित्।" अत: उनका स्वरूप जो है, वही उनका देह है। जीव का देह-जड़, पाञ्चभौतिक तथा विनाशी है, उनकी आत्मा अजड़, चित्कण तथा अविनाशी है। वे भगवद् बहिर्मुखता के कारण कर्मफल के अनुसार विविध देहधारण करके चौरासी लाख योनियों में सांसारिक दु:खों का भोग करते हुये भ्रमण करता रहता है। ईश्वर कर्माधीन या कर्मों के लिये बाध्य नहीं हैं, वे कर्म बाध्य जीवों का कर्मफल खण्डन करके उनको चिदानन्दमय-पार्षद देह दान करके अपने सेवानन्द का दान करके सदा के लिये धन्य करने के निमित्त स्वेच्छा से उनका विविध नित्य-चिदानन्दमय देह विश्व में प्रकटित करते रहते हैं। श्रीगीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं श्रीमुख से कहा है-"जन्म कर्म च मे दिव्य यो वेत्ति तत्त्वत:। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन:॥" (4/9) 'हे अर्जुन! मेरा दिव्य जन्म तथा कर्म तत्त्व की दृष्टि से जो जानते हैं, वे देह त्यागकर और पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करते, वे मुझको ही प्राप्त हो जाते हैं। इस श्लोक की टीका में श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद ने प्रसिद्ध टीकाकारों का अभिप्राय व्यक्त करके लिखा है,-"दिव्यं अप्राकृतमिति श्रीरामानुजाचार्य चरणा:, श्रीमधुसूदन सरस्वती पादाश्च। दिव्यमलौकिकमिति स्वामिचरणा:। लोकानां प्रकृति-सृष्टत्वात् अलौकिकं शब्दस्याप्राकृत-त्वमेवार्थस्तेषामप्यभिप्रेत:। अतएव अप्राकृतत्वेन गुणातीत्वाद् भगवज्जन्म कर्मणो नित्यत्वम्। तच्च भगवत्सन्दर्भे 'न विद्यते यस्य जन्म कर्म वा' इत्यत्र श्लोके श्रीजीव गोस्वामि चरणैरुपपादितम्।" अर्थात् इस श्लोक की व्याख्या में श्रीपाद रामानुजाचार्य ने 'दिव्य' शब्द के अर्थ में लिखा है 'अप्राकृत', श्रीमधुसूदन सरस्वतीपाद ने भी यही प्रतिध्वनित किया है। श्रीधर स्वामिपाद ने 'दिव्य' के अर्थ में लिखा है 'अलौकिक'। लोक समूह ही प्रकृति के द्वारा सृष्ट है अत: अलौकिक शब्द का अर्थ है 'अप्राकृत', यह उनका भी अभिप्राय है। जो अप्राकृत है वह नित्य है, अत: श्रीभगवान् का जन्म, कर्मादि सभी अप्राकृत या नित्य हैं। श्रीजीवगोस्वामी पाद ने भी भगवत्सन्दर्भ में "न विद्यते यस्य जन्म कर्म वा' इत्यादि श्रीमद्भागवतीय श्लोक की व्याख्या में यही प्रतिपादित किया है। श्रीभगवान् के जन्म कर्म का नित्यत्व तथा अप्राकृतत्व श्रीभागवतामृत में विस्तृत रूप से आलोचित हुआ है। श्रीमद्भागवत में ब्रह्मस्तव में दिखायी पड़ता है-"अस्यापि देव-वपुषोमदनुग्रहस्थ स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि", श्रीभगवान् जिस रूप में ही क्यों न अवतीर्ण हों, उनकी देह कभी भी भौतिक या प्राकृत नहीं है। जो भगवद्विग्रह को भौतिक मानते

हैं वे नास्तिक हैं, श्रुति स्मृति के नियमों के अनुसार उनका वर्णाश्रमादि सभी विषयों से बहिष्कार करना होगा। दैवयोग से उनका चेहरा देखने पर वस्त्रों के साथ स्नान करना चाहिये। श्रीविष्णु पुराण में लिखा हुआ है- "यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः। स सर्वस्माद् बहिः कार्याः श्रौतस्मार्त्त विधानतः। मुखं तस्यावलोक्यापि सचैलं स्नानमाचरेत्॥" इन सब शास्त्र वाक्यों से श्रीभगवद्विग्रह नित्य तथा सच्चिदानन्दघन है, यह ज्ञात होता है। श्रीभगवान् के अवतरण का हेतु सम्पूर्ण रूप से जीवों के प्रति करुणा प्रकट करना है। इसमें किसी का भी किसी प्रकार का मत विरोध नहीं है। श्रीगीता श्रीमद्भागवतादि शास्त्रों में श्रीभगवान् के अवतरण के जो कारण लिखे हुये हैं, श्रीमन्नित्यानन्द के अवतरण का हेतु उनकी अपेक्षा भी विशिष्टता पूर्ण है- श्रीमन्महाप्रभु ने "नित्यानन्द बिना किछु नाहिक तोमार" इस वाक्य में वही समझाना चाहा है। हमने कहा है, जीवों के प्रति करुणा ही अर्थात् जीव-कल्याण ही भगवदवतरण का मुख्य कारण है। प्रेमभक्ति ही जीव के यथार्थ कल्याण प्राप्ति का एकमात्र उपाय है, अतः प्रेम भक्ति का वितरण ही जीवों के प्रति श्रीभगवान् के चरम कारुण्य का प्रकाश है। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु ने अवतीर्ण होकर बिना जाति, धर्म का भेदभाव करते हुये जिस प्रकार से मानव समाज के दिल में समान रूप से प्रेमभक्ति का विस्तार किया है, वह अन्य किसी अवतार की लीला में ही प्रत्यक्ष नहीं होता, श्रीमन्नित्यानन्द के आविर्भाव तथा समस्त चेष्टाओं या लीलाओं के अन्दर ही हमें प्रेमभक्ति का प्रकाशरूपी नित्यानन्द की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने उनके श्रीचैतन्यभागवत में श्रीमन्नित्यानन्द के आविर्भाव के प्रसंग में लिखा है—

ईश्वर-आज्ञाय आगे श्रीअनन्त धाम।
राढ़े अवतीर्ण हैला नित्यानन्द-राम॥
माघमासे शुक्ला-त्रयोदशी शुभदिने।
पद्मावती-गर्भे एक-चाका-नाम ग्रामे॥
हाड़ाइ-पण्डित नामे शुद्ध विप्रराज।
मूले सर्व-पिता, ताने करि पिता-ब्याज॥
कृपासिन्धु भक्तगण-प्राण बलराम।
अवतीर्ण हैला धरि नित्यानन्द नाम॥

महाजय जय ध्वनि पुष्प वरिषण।
संगोपे देवता गण करिला तखन॥
सेइ दिन हैते राढ़ मण्डल सकल।
बाड़िते लागिल पुनः पुनः सुमंगल॥

यहाँ सुमंगल की वृद्धि का तात्पर्य सर्वत्र प्रेम भक्ति का बीज आरोपित होने लगा ही समझना होगा क्योंकि शास्त्रों तथा महाजनों ने भक्ति को ही जीवों का सुमंगल या वास्तविक मंगल कहकर उल्लेख किया है। साथ ही साथ दुर्भिक्ष, दारिद्रय इत्यादि दोष भी विनष्ट हो गये। उसके बाद प्रेमावतार श्रीमन्महाप्रभु जिस दिन नवद्वीप में अवतीर्ण हुये, उस दिन श्रीमन्नित्यानन्द से अभिव्यक्त नित्यानन्द केवल राढ़मण्डल के अन्दर सीमा बद्ध न रहकर समूचे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गया। श्रीचैतन्यभागवत में दिखायी पड़ता है—

ये दिने जन्मिला नवद्वीपे गौरचन्द्र।
राढ़े थाकि हुंकार करिला नित्यानन्द॥
अनन्त ब्रह्माण्ड व्याप्त हइल हुंकार।
मूर्च्छागत हैल येन सकल संसार॥
कथो लोक बलिलेक - हइल बज्रपात।
कथो मानिलेक परम उत्पात॥
कथो लोक बलिलेक जानिल कारण।
गौड़ेश्वर-गोसाञिर हइल गर्जन॥
एइ मत सर्वलोक नाना कथा गाय।
नित्यानन्द केहो नाहि चिनिलमायाय॥

श्रीमन्नित्यानन्द के हुंकार की अनन्त ब्रह्माण्ड में व्याप्ति उनके नित्यानन्द की ही व्याप्ति जानना होगा। श्रीमन्महाप्रभु के आविर्भाव से पहले श्रीअद्वैताचार्य के हुंकार का विषय सभी को सुविदित है। श्रीमन्महाप्रभु के अवतरण से पहले विश्व में धर्म की ग्लानि के सम्बन्ध में श्रीचैतन्यभागवत में दिखायी पड़ता है—

कृष्ण नाम-भक्ति शून्य संकल संसार।
प्रथम कलिते हैल भविष्य आचार॥
'धर्म-धर्म' लोक सबे एइ मात्र जाने।
मंगल चण्डीर गीते करे जागरणे॥
दम्भकरि विषहरि पूजे कोन जने।
पुत्तलि करये केह दिया बहुधने॥

धन नष्ट करे पुत्र कन्यार बिभाहे।
एइ सबे रत आर किछु ना जानये॥
येवा भट्टाचार्य, चक्रवर्ती, मिश्र सब।
ताहारा - हो ना जानये ग्रन्थ अनुभव॥
शास्त्र पड़ाइया सभे एइ कर्म करे।
श्रोतार सहित यम पाशे डुबि मरे॥
ना बाखाने युग धर्म-कृष्णेर कीर्त्तन।
दोष बहि गुण कारे ना करे कथन॥
येवा सब विरक्त-तपस्वी-अभिमानी।
ता सबार मुखे-ह नाहिक हरि ध्वनि॥
अति बड़ सुकृति से स्नानेर समये।
'गोविन्द पुण्डरीकाक्ष' नाम उच्चारये॥

जगत् में इस प्रकार धर्म की ग्लानि तथा विश्व के जीवों की दुर्दशा देखकर श्रीअद्वैताचार्य प्रभु अत्यधिक मर्माहत तथा भगवत् अवतरण के लिये व्याकुल हो पड़े थे। आचार्य समझ गये थे कि भगवत् अवतरण के अलावा विश्व की इस धर्म की ग्लानि तथा जीवों की दुर्दशा को दूर करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसीलिये वह श्रीकृष्ण के अवतरण का दृढ़ संकल्प लेकर गंगा जल, तुलसी मञ्जरी के द्वारा श्रीकृष्ण की आराधना करते थे, सदैव ध्यानमग्न तथा भावाविष्ट रहते थे तथा समय-समय पर ब्रह्माण्ड भेदी वैकुण्ठ स्पर्शी सघन हुंकार करते थे।

हुंकार करये कृष्ण आवेशेर तेजे।
ये ध्वनि ब्रह्माण्ड भेदी वैकुण्ठेते बाजे॥
ये प्रेमेर हुंकार शुनिया कृष्ण नाथ।
भक्ति वशे आपनेइ हइल साक्षात्॥ (चैः भाः)

जीव हितैषी परम करुण शान्तिपुर नाथ श्रीअद्वैताचार्य दुर्गत, दुर्दशाग्रस्त, दुष्ट, दुर्मति, दुःख भारावसन्न जीवों के परित्राण के लिये महाकारुण्य घन मूर्ति श्रीकृष्ण को धराधाम में अवतीर्ण कराने के लिये जब महासाधना में प्रवृत्त हुये थे, तब उनके भाव की गूढ़ गम्भीर तन्मयता से उनके मन प्राण में जिस महान् शक्ति का जो अत्यन्त विशाल प्रभाव घनीभूत हुआ था- अखिल भुवन-व्यापक, विश्व को बहाने वाला, त्रिभुवन विक्षोभी हुंकार ध्वनि उसी का परिणाम जानना होगा। जिस महाकाश-भेदी, गोलोक स्पर्शी, हुंकार की ध्वनि से उद्‌बुद्ध तथा आहत होकर ब्रज के श्रीकृष्ण बलदेव श्रीश्रीगौर

नित्यानन्द के स्वरूप में विश्व में आविर्भूत हुये थे, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु का आविर्भाव ही उसका आद्य तथा महामहिम अमृतमय सुफल है। उस महासंकर्षण मूलावतारी श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के श्रीश्रीगौरसुन्दर के अवतरण के दिन विश्वव्यापी नित्यानन्द रसमय हुंकार ने विश्व के जीवों के चित्तमन में महाप्रभु के महादान, सुदुर्लभ ब्रज प्रेम का यथायोग्य आधार प्रस्तुत किया था, यह सुनिश्चित है!

बाल्य क्रीड़ा काल में प्रभु श्रीनिताइचाँद ने जिस प्रकार से नर नारियों के चित्त मन में नित्यानन्दमय भक्तिरस का संचार किया था, वह श्रीचैतन्यभागवत में वर्णित है—

श्रीनित्यानन्द का श्रीकृष्णलीला का अभिनय—

शिशुगण-संगे प्रभु यत क्रीड़ा करे।
श्रीकृष्णेर कार्य बिना आर नाहि स्फुरे॥
देव सभा करेन मिलिया शिशुगणे।
पृथिवीर रूपे केहो करे निवेदने॥
तबे पृथ्वी लइया सभे नदीतीरे जाय।
शिशुगण मेलि स्तुति करे ऊर्ध्वराय॥
कोन शिशु लुकाइया ऊर्ध्व करि बोले।
जन्मिवाङ गिया आमिमथुरा-गोकुले॥
कोन दिन निशाभागे शिशुगण लैया।
वसुदेव देवकीर करायेन बिया॥
बन्दि घर करिया अत्यन्त निशा भागे।
कृष्ण-जन्म करायेन, केहो नाहि जागे॥
गोकुल सृजिया तथि आनेन कृष्णेरे।
महामाया दिल लैया भाण्डिया कंसेरे॥
कोन शिशु साजायेन पूतनार रूपे।
केहो स्तन पान करे उठि ताँर बुके॥
कोन दिन शिशु संगे नल खड़ि दिया।
शकटगढ़िया ताहा फेलेन भांगिया॥
निकटे वसये यत गोया लार घरे।
अलक्षिते शिशु-संगे गिया चुरि करे॥
ताने छाड़ि शिशुगण नाहि जाय घरे।
रात्रि दिन नित्यानन्द-संहति विहरे॥

इस प्रकार श्रीनित्यानन्द ने शिशुओं के साथ तृणावर्त बकासुर, अघासुर आदि वध की लीलाओं का अद्‌भुत अभिनय किया। फिर किसी दिन पत्तों से साँप बनाकर नदी किनारे आकर यमुना के कालियदह की कालियदमन लीला का अत्यन्त विस्मयकारी अभिनय किया। श्रीकृष्ण का अभिनय करने वाले शिशु को कालियदह में प्रवेश करते देखकर ब्रजवासियों का अभिनय करने वाले शिशुगण अचेत हो गये तथा श्रीबलदेव के रूप में श्रीनिताइचाँद ने उनको वास्तविक तथ्य बताकर सचेत किया। इस प्रकार से धेनुकासुर, वध, वृषासुर बनाकर उसका निधन, शाम को शिशुओं के साथ सींगा, वेणु बजाते हुये ब्रज की उत्तर गोष्ठ की लीला का अभिनय करके नारियों के चित्त में आनन्द प्रदान करते थे।

कोन दिन करे गोवर्धन-धर लीला।
वृन्दावन रचि कोन दिन करे खेला॥
कोन दिन करे गोपीर वसन हरण।
कोन दिन करे यज्ञ पत्नी दरशन॥
कोनो शिशु नारद काचये दाड़िदिया।
कंस-स्थाने मन्त्रणा कहे निभृते बसिया॥
कोनदिन कोन शिशु अक्रूरेर-वेशे।
लइ जाय राम-कृष्ण कंसेर निदेशे॥
आपनेइ गोपी भावे ये करे रोदन।
नदी बहे हेन, सब देखे शिशुगण॥ **(वही)**

इस वर्णना से स्पष्ट समझ में आ रहा है कि श्रीनिताइचाँद अपने संगी बालकों के साथ यथा सम्भव साज सज्जा करके लीलाओं का अभिनय करते थे। यात्रागान (नाटक) गीताभिनय में जिन साज सज्जाओं की आवश्यकता होती थी, श्रीनित्यानन्द अत्यन्त बाल्यावस्था में यथासम्भव उन सभी साज सज्जाओं का आयोजन करते थे, उससे सुचारु रूप से लीलाभिनय सम्पन्न होता था। उससे देखने वाले नरनारियों के चित्त में केवल आनन्द का ही संचार होता था ऐसा नहीं है, उनका चित्त मन भक्तिरस में प्रवाहित हो जाता था। खेल के छल से दयालु प्रभु निताइचाँद सभी नरनारियों के चित्त में इस प्रकार से नित्यानन्दमय भक्ति रस का संचार करते थे।

इस प्रकार कंस के आदेश से श्रीवृन्दावन में अक्रूर का आगमन, कृष्ण-बलदेव को लेकर मथुरा प्रस्थान उसके कारण गोपियों का विलाप,

रोदन आदि का वह इस प्रकार अभिनय करते थे कि द्रष्टाओं के नयनों के सामने मानो ब्रजलीला समूह साक्षात् दिखायी पड़ता था, वे सभी नयनों के जल में तैरते रहते थे। अक्रूर राम-कृष्ण को लेकर मथुरा गमन कर रहे हैं, इस लीला के अभिनय में कोई अक्रूर, कोई बलदेव तो कोई बालकगण कृष्ण के वेश में सजा है। अन्य गोपियों के वेश में सज्जित होकर कृष्ण के विरह में विलाप कर रहे हैं। श्रीनित्यानन्द गोपीभाव से हृदय के आवेग में मुक्त कण्ठ से ऐसा रोदन तथा विलाप करने लगे कि नदी की धारा की भाँति आँसुओं की धारा बहने लगी। यह खेल का अभिनय नहीं है, वास्तविक रूप से ही हृदय में गोपीभाव का संचार है, जिसके फलस्वरूप गोपीभाव में विपुल माथुर-विरह का उद्दीपन है तथा इस प्रकार का अकृत्रिम (बनावट रहित) रोदन है। अतः जो नित्यानन्द का यह खेल दर्शन करते थे, उनके हृदय में प्रेमभक्ति की मन्दाकिनी की प्रवाहित होती थी, वे ब्रज के वास्तविक गोपियों के भाव के अनुभव से नयनों के नीर में प्रवाहित होते थे।

इस तरह से श्रीवामनदेव की लीला का अभिनय, रामायण की अनेकों लीलाओं के अभिनय के द्वारा श्रीनिताइचाँद सभी को आश्चर्य चकित कर देते थे। उनमें श्रीलक्ष्मण शक्ति की लीला का अभिनय अत्यन्त ही चमत्कार पूर्ण तथा महा विस्मय जनक है। श्रीचैतन्यभागवत में इस लीला का श्रीवृन्दावनदास ठाकुर महाशय ने विस्तृत रूप में वर्णन किया है—

कोनो शिशु बाले मुञि आइलुँ रावण।
शक्ति शेल हानि एइ सम्बर लक्षण॥
एत बलि पद्म पुष्प मारिल फेलिया।
लक्ष्मणेर भावे प्रभु पड़िल ढलिया॥
मूर्च्छित हइला प्रभु लक्ष्मणेर भावे।
जोगाये छाओयाल सब तभो नाहि जागे॥
परमार्थे धातु नाहि सकल शरीरे।
कान्दये सकल शिशु हात दिया शिरे॥
शुनि पिता माता धाइ आइला सत्वरे।
देखये पुत्रेर धातु नाहिक शरीरे॥
मूर्च्छित हइया दोंहे पड़िला भूमिते।
देखि सर्वलोक आसि हइला विस्मिते॥

बालकों ने जब अभिनय की सारी बातें सभी से कही, तब कोई बोला, 'भाव के कारण ही ऐसा हुआ है। पहले दशरथ के भाव में एक अभिनेता ने श्रीरामचन्द्र के वनवास के समय देहत्याग दिया था।' कोई बोला, अभिनय के आवेश में बालक इस प्रकार पड़ा हुआ है, हनुमान के औषधि लाकर देने से ही बालक स्वस्थ हो जायेगा। अभिनय से पहले प्रभु श्रीनित्यानन्द ने भी शिशुओं को सिखाया था कि, 'मैं शक्ति बाण से मूर्च्छित हो जाने पर तुम सभी मुझे घेर कर कुछ समय तक विलाप करना, उसके बाद हनुमानजी को दवा लाने भेजना, हनुमान के नाक में दवा डालते ही मेरे शरीर में प्राण वापिस आयेंगे।' प्रभु के वास्तव में मूर्च्छित होने पर बालकगण वह सीख भूल गये थे, लोगों के मुँह से हनुमान जी की दवा लाने की बात सुनकर उन्हें प्रभु की सिखाई हुई बात याद आयी। तब कोई बालक हनुमान के वेश में बूटी (दवा) लाने गया। रास्ते में तपस्वी का वेश धारण किये हुये कालनेमि का वध करके गन्धमादन पर्वत (द्रोणागिरि) लेकर आया। किसी के द्वारा सुषेण वैद्य का रूप धारण करके रामचन्द्र का स्मरण करके नाक में दवा डालते ही प्रभु उठकर बैठ गये। यह देखकर सभी परम आनन्द से हास्य करने लगे। हाड़ाइ पण्डित ने प्राणों के समान प्रभु को गोद में उठा लिया।

सबे बले बाप! इहा कोथा वा शिखिला।
हासि बोले प्रभु मोर ए सकल लीला॥

प्रभु ने लक्ष्मण के रूप में त्रेतायुग में जो लीला की थी, इस कलियुग में भी उस लीला का वास्तविक भाव प्रदर्शित करके सभी के चित्त में लीला की यथार्थता को प्रकट किया तथा नर नारियों के हृदय में लीला की नित्यता की स्मृति जगाकर बाह्य जगत् के अन्तराल में नित्य शाश्वत विषय निरन्तर विद्यमान है—

प्रभु ने उसे भी प्रतिपादित किया—

श्रीबिल्व मंगल ठाकुर ने उनके द्वारा रचित श्रीकृष्ण कर्णामृत ग्रन्थ के द्वितीय शतक के एक पद्य में श्रीकृष्ण की भी पूर्वलीला के उद्दीपन में उसी प्रकार के आवेश का वर्णन किया है। श्रीमती यशोदा शिशु कृष्ण की नींद के लिये उनके शैशव प्रीतिजनक रामलीला की एक छोटी सी कहानी सुना रही थीं। वह बोलीं- राम नाम के एक व्यक्ति थे। शिशु कृष्ण बोले- 'हूँ!' यशोदा बोलीं, उनकी पत्नी का नाम था सीता; श्रीकृष्ण सुनने की व्याकुलता

दिखाते हुये बोले- 'हूँ'। यशोदा बोलीं, राम पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये वन में जाने पर उनकी पत्नी सीता भी उनके पीछे-पीछे गयीं तथा पञ्चवटी वन में रावण ने सीता का हरण किया। जैसे ही सीता हरण की बात कही गयी- तुरन्त ही शिशु कृष्ण माँ की गोद से उछलकर खड़े होकर अत्यन्त व्यग्रता के साथ चीखते हुये बोले- 'भाइ लक्ष्मण! धनुष कहाँ है, धनुष कहाँ है? श्रीविल्व मंगल ठाकुर बोले, "श्रीकृष्ण की वह व्यग्रतापूर्ण वाणी तुम सभी की रक्षा करे। मूल श्लोक की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

निद्रार्थं जननी-कथामिति हरेः हुंकारतः शृण्वतः।
सौमित्रे क्व धनुर्धनुरिति व्यग्रा गिरः पान्तु नः॥ (62)

माता यशोदा का वाक्य सुनते ही श्रीकृष्ण के चित्त में त्रेतायुग की रामलीला का भाव इस प्रकार से उन्मेषित हुआ कि, उन्होंने उस सीताहरण के विषय को मानो प्रत्यक्ष की भाँति अनुभव किया तथा वास्तव में ही मानो रावण पर आक्रमण करने के लिये लक्ष्मण से धनुष माँगा हो। अत्यधिक उद्दीपना के प्रभाव से अतीत की घटना वर्तमान की विषयी भूत हो उठी! श्रीमन्नित्यानन्द के लक्ष्मण की शक्ति की लीला का अभिनय करते वक्त त्रेतायुग का वास्तविक स्वरूप जाग उठा, उन्होंने स्वयं को लक्ष्मण के रूप में ही अनुभव किया तथा कार्य के रूप में शक्ति बाण के आघात से वास्तव में ही मूर्च्छित हो गये। श्रीकृष्ण की लीला की आवेशमय व्यग्रता की वाणी सभी के चित्तमन में लीला का आवेश जगाकर विश्व की रक्षा करे कहते हुये जिस प्रकार श्रीविल्व मंगल ठाकुर ने प्रार्थना की है, उसी प्रकार श्रीमन्नित्यानन्द की नित्यानन्दमय लीला का यह आवेश आगे आने वाले समय में विश्व के नर नारियों को हरिनाम में प्रमत्त करके सभी को आनन्दमय तथा मधुमय श्रीवृन्दावन की रसमाधुरी का आस्वादन कराकर धन्य करेगा, भक्तगणों को इसका आभास मिल गया था।

इस प्रकार से श्रीनित्यानन्द ने श्रीकृष्ण लीलाभिनयमयी बाल्य क्रीड़ा में बारह वर्ष का समय व्यतीत किया। श्रीनित्यानन्द के अन्दर नित्यानन्द के अलावा और कुछ भी नहीं है- यही श्रीमन्महाप्रभु की श्रीमुखोक्ति है। इस नित्यानन्दमय चेष्टा से केवल संगी साथियों को नहीं, एक चक्रा तथा आस पास के ग्रामवासी नर नारियों को ही नहीं; सम्पूर्ण विश्व को नित्यानन्दमय बनादेंगे, यह इच्छा श्रीनिताइचाँद के हृदय में उदित हुई। माता पिता का विपुल वात्सल्य, स्नेह उनकी उस इच्छा में बाधक बना। हाड़ाइ पण्डित तथा पद्मावती

देवी निताइ को नयनों का तारा तथा अन्धे की लाठी समझ कर हमेशा नजरों के सामने रखते थे। खेलने के लिये कहीं जाने पर वे बेचैन हो जाते थे। जीविका के निर्वाह के लिये हाड़ाइ पण्डित का याजनिक कार्य (यजमान वृत्ति) था, कृषि कार्य भी था। इन सभी कार्यों के लिये घर से बाहर कहीं जाने पर नित्यानन्द को साथ ले जाते थे। बचपने के आवेश से निताइ जरा पीछे रह जाने पर सैकड़ों बार पीछे मुड़कर देखते थे। बार-बार वक्ष से जकड़कर आलिंगन करते थे, सैकड़ों बार मुँह चूमते थे। प्रगाढ़ वात्सल्य भाव से माता पिता अत्यधिक अभिभूत हो पड़े थे। श्रीचैतन्यभागवत में उनके घनीभूत-वात्सल्य रस का जो वर्णन मिलता है वह इस प्रकार है—

तिल मात्र नित्यानन्द ना देखिले माता।
युग-प्राय हेन वासे ततोधिक पिता॥
लिमात्र नित्यानन्द पुत्रेरे छाड़िया।
कोथाओ हाड़ाइ ओझा ना जाय चलिया॥
किबा कृषि कर्मे किबा यजमानेर घरे।
किबा हाटे किबा बाटे यत कर्म करे॥
पाछे यदि नित्यानन्द दूरे चलि जाय।
तिलार्द्धे शतेक बार उलटिया चाय॥
धरिया धरिया पुनः आलिंगन करे।
ननीर पुतुली येन मिलाये शरीरे॥
एइ मत पुत्र संगे बुले सर्व ठाञि।
प्राण हैला नित्यानन्द, शरीर हाड़ाइ॥

संन्यासी का आगमन—

इस प्रकार जब श्रीनिताइचाँद माता-पिता के प्राणों के प्राण तथा नयन मणि हो उठे थे, इस अवसर पर एक दिन अचानक एक परम सुन्दर संन्यासी हाड़ाइ पण्डित के घर पर आकर उपस्थित हो गये। हाड़ाइ ओझा परम समादर के साथ उस अतिथि की सेवा में लग गये। दिन ढल गया। संन्यासी बोले, 'पण्डित तो आज रात को मैं तुम्हारे घर पर ही रुकूँगा, विशेष रूप से तुमसे मुझे कुछ बात करनी है, वह भी बताऊँगा। हाड़ाइ पण्डित बोले, 'मेरा परम सौभाग्य है कि मैं आपकी कुछ सेवा करके धन्य होऊँगा, आपके श्रीमुख से भगवत् कथा सुनूँगा, इससे बढ़कर गृहस्थी के भाग्य की और क्या बात है?

हाड़ाइ पण्डित धारणा नहीं कर सके थे कि आज संन्यासी के वेश में उनके घर में अक्रूर का आगमन हुआ है।

यथासमय हाड़ाइ पण्डित ने अत्यन्त यत्न के साथ संन्यासी को भोजन कराया तथा स्वयं भोजन करके संन्यासी के पास बैठकर दोनों रसमय कृष्ण कथा में प्रवृत्त हो गये। सारी रात कृष्ण कथा में बीत गयी। रात समाप्त हो गयी, साथ ही साथ ब्राह्मण-दम्पत्ति के सुख की रात की भी समाप्ति हो गयी।

गन्तु काम संन्यासी हइला ऊषः काले।
नित्यानन्द पिता-प्रति न्यासी वर बोले॥
न्यासी बोले एक भिक्षा आछये आमार।
नित्यानन्द पिता बोले ये इच्छा तोमार॥
न्यासी बोले करिवाङ तीर्थ-पर्यटन।
संहति आमार भाल नाहिक ब्राह्मण॥
एइ ये सकल ज्येष्ठ नन्दन तोमार।
कथोदिन लागि देह संहति आमार॥
प्राण-अतिरिक्त आमिदेखिब उह्राने।
सर्व-तीर्थ देखि बेन विविध विधाने॥ (चैः भाः)

संन्यासी नित्यानन्द के पिता से बोले- "पण्डित! मैं परिव्राजक हूँ, तीर्थ-तीर्थ में पर्यटन ही मेरे जीवन का व्रत है, मेरे साथ को ब्राह्मण भी नहीं है, तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को मैं अपना संगी बनाऊँगा- कुछ दिन के लिये तुम्हारी सन्तान को मुझे सौंप दो। तुम कोई चिन्ता मत करना, मैं प्राणों से भी अधिक उसका ख्याल रखूँगा। हमेशा संग रखूँगा, शास्त्रों का अध्ययन कराऊँगा, स्वयं भोजन न करके भी उसे भोजन कराऊँगा।

संन्यासी की बातें सुनकर हाड़ाइ पण्डित वज्राहत की भाँति अत्यधिक मर्माहत हो गये। वह जागे हुये हैं या सपना देख रहे हैं, वह कुछ भी नहीं समझ पाये। उनका सिर घूम गया। वह अत्यधिक विषन्न हो गये। उनका शरीर विवर्ण हो गया, वह निर्वाक, निस्पन्द रूप से पड़े रहे। संन्यासी उनकी हालत देखकर बोले- 'पण्डित! तुम इतने मायूस हो गये? देखो पण्डित! तुम विद्वान् हो; तुम्हारी सन्तान का अत्यन्त कल्याण होगा, तुम लोगों का भी कल्याण होगा, यहाँ तक कि तुम्हारे ऊपर रहने वाले पितृ पुरुष गण भी परम आनन्दित होंगे क्योंकि वंश में एक व्यक्ति यदि वैष्णव हो जाये तो वह कुल पवित्र हो जाता है। संन्यासी की सारी बातें हाड़ाइ पण्डित के कर्ण गोचर नहीं

हुई। वह सोचने लगे, यह क्या कभी सम्भव है? यह तो मेरा पुत्र नहीं है,- साक्षात् आत्मा है। आत्मा के चले जाने पर शरीर में प्राण कैसे रहेंगे? जिसे एक पल न देखने पर विश्व सूना लगता है, उसे छोड़कर कैसे रहूँगा? उसे छोड़ने पर क्या शरीर में प्राण रहेंगे? मैं ऐसा कभी नहीं कर सकूँगा। ये बातें सोचते-सोचते पण्डित एकान्त में बैठकर आँसू बहाने लगे। उनकी बेचैनी देखकर संन्यासी बोले, पण्डित, तुम धार्मिक हो, विद्वान् हो, नित्यानित्य के विषय में तुम्हें पर्याप्त ज्ञान है। देह-दैहिकादि सभी अनित्य, नश्वर हैं, कुछ भी स्थायी नहीं है। इन सब अनित्य वस्तुओं के द्वारा अक्षय पुण्य संचय करना ही बुद्धिमान का कर्त्तव्य है। संन्यासी की बातें सुनकर पण्डित को लगा कि संन्यासी को निराश करने से यदि उनके निताइ का कुछ अकल्याण हो- यह तो वह सोच भी नहीं सकते।

विशेष रूप से—

भिक्षु करे पूर्वे महापुरुष सकल।
प्राण दान दियाछेन करिया मंगल॥
रामचन्द्र पुत्र दशरथेर जीवन।
पूर्वे विश्वामित्र ताने करिला याचन॥
यद्यपिह राम बिने राजा नाहि जीये।
तथापि दि लेन- एइ पुराणेते कहे॥
सेइ त वृत्तान्त आजि हइल आमारे।
ए धर्म संकटे कृष्ण रक्षा कर मोरे॥

हाड़ाइ पण्डित के मन में तब क्या भाव जागा था, वह स्नेहमय पिता ही केवल समझ सकता है। वह वास्तव में ही उभय संकट में फँस गये थे। एक तरफ तो संन्यासी के आदेशानुसार कार्य नहीं करने पर उनका असन्तोष तथा उस असन्तोष का विषमय फल-निताइ का अमंगल। दूसरी तरफ प्राणों के प्राण; आत्मा की भी आत्मा निताइ का भीषण विरह- जो सर्वथा असहनीय- तुरन्त प्राण नाशक था! इस उभय संकट में पड़कर हाड़ाइ पण्डित संन्यासी से बोले, ठाकुर! आप जरा बैठें, मैं अभी वापस आता हूँ।' संन्यासी ठाकुर जरा आश्वान्वित होकर बोले- 'अच्छा।'

हाड़ाइ पण्डित ने अपनी पतिव्रता सहधर्मिणी नित्यानन्द की जननी के पास जाकर दु:खी गले से संन्यासी की भिक्षा की बात उन्हें बतायी तथा संन्यासी को मना करने पर श्रीनित्यानन्द का भविष्य में अमंगल; दूसरी तरफ

निताइ के विरह में उनका तुरन्त प्राण नाश इन दोनों संकट की बात भी बतायी।

पतिगत प्राणा, पतिव्रता थीं पद्मावती, वह पति की सदैव अनुगामिनी थीं, वह पति की प्रतिकूलता की बात कभी सोच भी नहीं सकती थीं। पति को सभी प्रकार से सन्तुष्ट रखना ही उनके जीवन का एकमात्र व्रत था। पति की सन्तुष्टि के लिये धर्माधर्म, भला-बुरा, जीवन-मृत्यु जो कुछ भी है सभी उनके लिये समान रूप से ग्रहणीय या वरणीय था! इसलिये पति की बात सुनकर वह बिना विचारे पति की इच्छा के प्रवाह में समर्पित होकर बोलीं—

ये तोमार इच्छा प्रभु! सेइ मोर कथा।

पतिव्रता की बात सुनकर पण्डित के मन में विपुल शक्ति का संचार हुआ। वह पुत्र मोह की कमजोरी तथा पुत्र शोक की व्याकुलता से और अभिभूत न होकर श्रीनिताइचाँद को लेकर संन्यासी के पास आये तथा उन्हें संन्यासी के हाथ में समर्पण करके बोले- 'ठाकुर! आप प्रसन्न चित्त से अपना धन ग्रहण करें। आपकी कृपा से मैं समझ पाया कि इस संसार में मेरा कुछ भी नहीं है तथा इसी से मैं धन्य हुआ।'

नित्यानन्द हमेशा ही नित्यानन्द हैं- नित्यानन्द के अलावा उनका और कुछ भी नहीं है। जनक-जननी, तथा अपरिचित संन्यासी भी उनके लिए समान हैं। सुख सदन, अरण्य-प्रान्त सभी उनके लिये समतुल्य हैं- सभी नित्यानन्द मय है। इस विशाल ब्रह्माण्ड में उनके लिये पराया कोई भी नहीं है- सभी अपने हैं। इस विश्व में उनका दु:ख कर स्थान कहीं भी नहीं है, सभी स्थान आनन्दमय है।

संन्यासी श्रीनिताइचाँद को वक्ष से लिपटा कर बोले, 'निताइ! तुम मेरे साथ जाओगे? मैं तुम्हें साथ लेकर समस्त तीर्थों में भ्रमण करुँगा- तुम्हें यत्न के साथ रखूँगा- तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा।' श्रीनित्यानन्द बोले, 'संन्यासी ठाकुर! मैं आपके साथ जाऊँगा- पिताजी मुझे नजरों से ओझल नहीं होने देते हैं, घर से बाहर नहीं जाने देते हैं, लेकिन मुझे हमेशा लगता है कि केवल घूमता फिरुँ। देश-विदेश, नद-नदी, वन-अरण्य, पशु-पक्षी देखते हुये घूमने में मुझे बड़ा आनन्द आता है। संन्यासी बोले, 'तो फिर चलो- जाओ, पिता-माता के चरणों में प्रणाम करके विदा ले लो। हमलोग हरिनाम करते हुये विभिन्न तीर्थों में परिभ्रमण करेंगे, कितने तीर्थों का दर्शन करेंगे, ठाकुर दर्शन करेंगे, साधुओं का दर्शन करेंगे- इससे बढ़कर आनन्द का विषय और क्या है।'

निताइ बोले– 'ठाकुर! मैं भी वही चाहता हूँ।' संन्यासी के आदेश से निताइ ने माता–पिता के चरणों में प्रणाम करके विदा माँगी। उनके पुंजीभूत, जमे हुये स्नेह ने अचानक पिघलकर नयनजल के रूप में निकल कर निताइ को अभिषिक्त किया। अन्तिम बार निताइ को वक्ष से लगाकर उन्होंने मुख चुम्बन किया तथा माथा सूँघा। निताइ को अपने पूजित ठाकुर घर में ले जाकर श्रीविग्रह के दरवाजे पर प्रणाम करवाया तथा श्रीविग्रह के श्रीचरणों में प्रार्थना की– 'राह में, जल–स्थल, नगर–प्रान्त, अरण्य, पर्वत सभी जगह हमारे जीवन के जीवन निताइ की रक्षा करना। निताइ को गोद में उठाकर संन्यासी के पास लाकर उनके हाथ में समर्पण किया।

पल भर में यह हृदय विदारक समाचार गाँव में सभी जगह फैल गया। समाचार सुनते ही जो जहाँ था, हाड़ाइ पण्डित के घर दौड़ा चला आया, बालक, वृद्ध, स्त्रियाँ सभी ने इस दर्दनाक विषय को देखकर मर्माहत होकर निताइ को घर में रखने के लिये हाड़ाइ ओझा से तथा निताइ की माता से बारम्बार अनुरोध किया। कोई–कोई उनसे असन्तुष्ट हुआ लेकिन हाड़ाइ पण्डित के दृढ़ संकल्प में बाधा डालने के लिये कोई साहसी नहीं हुआ। निताइ के खेल के साथी निताइ को घेरकर खड़े हो गये, निताइ को वे किसी भी तरह से जाने नहीं देंगे। निताइ ने उन्हें मीठे वचनों से समझाया– फिर तुम लोगों के साथ मुलाकात होगी– फिर तुम लोगों के साथ ब्रज का खेल खेलूँगा– हरिनाम करुँगा– तुम लोग सभी के हरिनाम करने पर शीघ्र मेरे साथ मुलाकात होगी। निताइ का जाना अनिवार्य है जानकर कोई आँखों के आँसू नहीं रोक पाया, कोई–कोई तो चीख–चीख कर रोने लगा– कोई मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा। बालक गण व्याकुल होकर रोने लगे। परमानन्द स्वरूप नित्यानन्द अविचलित चित्त से संन्यासी के साथ घर से बाहर निकल पड़े।

नित्यानन्द का गृहत्याग तथा तीर्थ पर्यटन। आज अनन्तदेव अनन्त जीवों को नित्यानन्द वितरण के निमित्त अनन्त पथ के यात्री हो गये। पिता माता का अथाह स्नेह, पड़ोसियों का प्रेम, सखागणों का सख्य कुछ भी उनकी गति रोध नहीं कर सका। विश्व के कल्याण के लिये जिनका आविर्भाव है धरातल पर, सम्पूर्ण विश्व जिनका अपना है, जीवों की भाँति माता पिता, सुहृद सखा, कुछ बन्धुओं की बन्धुता में वह कभी बँधे नहीं रह सकते। ऊपर खुला नीला गगन, और नीचे विशाल धरती–नित्यानन्द का उन्मुक्त विशाल प्राण समस्त

संकीर्णताओं का बन्धन तोड़कर आज महाविशालता के कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हुआ! अनन्त देव ने आज यथार्थ रूप से ही अनन्त को अपना बना लिया!! श्रीनित्यानन्द के चले जाने पर नित्यानन्द गत प्राण हाड़ाइ पण्डित की विरह दशा का वर्णन श्रीचैतन्यभागवत में इस प्रकार दिखायी पड़ता है—

नित्यानन्द गेले मात्र हाड़ाइ पण्डित।
भूमिते पड़िल विप्र हइया मूर्च्छित॥
से विलाप क्रन्दन कहिब कोन जने।
बिदरे पाषाण काष्ठ ताहार श्रवणे॥
भक्ति रसे जड़ प्राय हइला विह्वल।
लोके बोले हाड़ो-ओझा हइला पागल॥
तिन मास ना करिला अन्नेर ग्रहण।
चैतन्य-प्रभावे सबे रहिल जीवन॥

प्रश्न हो सकता है कि, नित्यानन्द में यदि नित्यानन्द के बिना कुछ भी नहीं रहे, तब पिता, माता, आत्मीय स्वजनों के वह नित्यानन्द दाता किस प्रकार से हुये? उनके लिये तो उनको निरानन्द या महा दु:ख प्रदाता ही कहना होगा? वास्तव में भगवद्विरह का दु:ख बाहर दु:ख दायक या आर्तिजनक प्रतीत होने पर भी वस्तु के विचार से परम आस्वाद्य है। शास्त्र, महाजनों ने भगवद्-विरह को रस की आख्या दी है। प्रेम के ही दो कलेवर हैं, एक मिलन तथा दूसरा विरह। विरह का उपादान जब चिन्मयानन्द रस प्रेम है, तब विरह में आनन्द का अनुभव रहेगा यह स्वाभाविक है। "बाह्ये विष ज्वाला हय, अन्तर आनन्दमय, कृष्ण प्रेमेर अद्भुत चरित" (चै: भा:) फिर विरही गणों की विरह वार्त्ता के श्रवण कीर्त्तन से मानव को प्रेमानन्द की प्राप्ति होती है। श्रीचैतन्यभागवत में वर्णित है—

प्रभु केनेछाड़े यार हेन अनुराग।
विष्णु- वैष्णवेर एइ अचिन्त्य प्रभाव॥
स्वामी हीना देवहूति जननी छाड़िय।
चलिला कपिल प्रभु निरपेक्ष हैया॥
व्यास-हेन वैष्णव जनक छाड़ि शुक।
चलिला-उलटि नाहि चाहिलेन मुख॥
शची-हेन जननी छाड़िया एकाकिनी।
चलिलेन निरपेक्ष हइ न्यासमणि॥

परमार्थे एइ त्याग - त्याग कभु नहे।
ए सकल कथा बुझे कोन महाशये॥
ए सकल लीला जीव उद्धार कारणे।
महाकाष्ठ द्रवे येन इहार श्रवणे॥
येन पिता हाराइया श्रीरघुनन्दने।
निर्भरे शुनिले ताहा कान्दये यवन॥

(मध्य खण्ड ३ अध्याय)

श्रीनिताइचाँद के गृहत्याग से जिस प्रकार एक तरफ स्वजनों को विरहमय प्रेम रस के आस्वादन की प्राप्ति है, उसी प्रकार दूसरी तरफ इसके श्रवण कीर्त्तन से मानव गणों को प्रेमानन्द के आस्वादन की प्राप्ति है। श्रीमन्नित्यानन्द के तीर्थ पर्यटन में उनके सर्वत्र नित्यानन्द मय प्रेमरस के प्रचार के विषय में हमने 'नित्यानन्द पर्यटन' इस अंश की व्याख्या में संक्षेप में वर्णन किया है।

श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी के साथ मिलन लीला भी श्रीनित्यानन्द का अपूर्व नित्यानन्द रसमय है। गंगा यमुना के मिलन की भाँति दो महाप्रेम की धारा का अनोखा सम्मेलन मानो प्रेम का त्रिवेणी तीर्थ है! श्रीमन्नित्यानन्द प्रेममय तनु साक्षात् ब्रज के बलदेव एवे श्रीमाधवेन्द्रपुरी प्रेम के ही पूर (भरावन) हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत में लिखा हुआ है—

श्रीमाधवेन्द्रपुरी के साथ नित्यानन्द का मिलन—

जय श्रीमाधवेन्द्रपुरी कृष्ण प्रेमपूर।
भक्ति कल्प तरुर यिंहो प्रथम अंकुर॥
श्रीईश्वरपुरी रूपे अंकुर पुष्ट हैल।
आपने चैतन्य माली स्कन्ध उपजिल॥

साक्षात् श्रीश्रीराधाकृष्ण के मिलित विग्रह स्वयं भगवान् श्रीमन्महाप्रभु जिनके प्रशिष्य हैं, विश्व में उनके प्रेम की क्या तुलना है! वे अहर्निशि कृष्ण प्रेम में विभोर बने रहते थे। उनके श्रीअंग के प्रत्येक अणु-परमाणु से ही मानो श्रीकृष्णप्रेम की किरणें निकलती रहती थीं। सौभाग्य वश जो एक बार उनका दर्शन प्राप्त करते थे, तुरन्त उनके हृदय का अविद्या रूपी अन्धकार दूर होकर उनके मानस नेत्र के सामने ब्रजमाधुरी की शोभा सम्पदा फूट पड़ती थी!! श्रीचैतन्यभागवत में लिखा हुआ है—

माधवेन्द्रपुरी प्रेममय-कलेवर।
प्रेममययत सब संगे अनुचर॥
कृष्ण रस बिनु आर नाहिक उपहार।
माधवेन्द्रपुरी देहे कृष्णेर विहार॥
यार शिष्य महाप्रभु अद्वैत गोसाञि।
कि कहिब आर तार प्रेमेर बड़ाइ॥
माधवेन्द्रपुरी रे देखिलेन नित्यानन्द।
ततक्षणे प्रेमे मूर्च्छा हइला निष्पन्द॥
नित्यानन्द देखि मात्र श्रीमाधवेन्द्रपुरी।
पड़िला मूर्च्छित हइ आपना पासरि॥
दोंहे मूर्च्छा हइलेन दोंहे दरशने।
कान्दये ईश्वर पुरी आदि शिष्य गणे॥

महाप्रेम का यह जो एक अलौकिक मामला है यह साधारण बुद्धि के गोचर नहीं है। पूर्णचन्द्र के उदय होने पर जैसे सागर का पानी हिलोरें लेता है, प्रेमीगणों के पारस्परिक दर्शन में भी उसी प्रकार उनका देह, मन, प्राण बुद्धि सब प्रेमरस में डूब जाता है, बाह्य ज्ञान गायब हो जाता है, आत्मा महाप्रेम रस में विभोर हो जाती है। यह एक प्रकार की अद्‌भुत भाव समाधि है। नित्यानन्द तथा माधवेन्द्रपुरी दोनों ही एक दूसरे के दर्शन से आत्महारा हो गये, स्पर्श से मूर्च्छित हो गये। कुछ देर के बाद आनन्द मूर्च्छा के गोयब होने पर दोनों एक दूसरे का गला जकड़ कर आनन्द से रोने लगे। दोनों अवेश होकर धूल में लोट लगाने लगे तथा कृष्णप्रेम के आवेश में हुंकारे करने लगे। दोनों की नयनाश्रु की धारा से पृथ्वी गीली होकर अपने आपको धन्य समझने लगी। दोनों का श्रीअंग कम्प, पुलक आदि अष्ट सात्त्विक विकारों से व्याप्त हो गया।

क्षणेके हइला बाह्यदृष्टि दुइ जने।
अन्योन्ये गलाय धरि करेन क्रन्दने॥
बालु गड़ि जाय दुइ प्रभु प्रेम रसे।
हुंकार करये कृष्ण प्रेमेर आवेशे॥
प्रेमनदी बहे दुइ प्रभुर नयाने।
पृथिवी हइयासिक्त धन्य हेन माने॥
कम्प, अश्रु, पुलक भावेर अन्त नाञि।
दुइ-देहे बिहरये चैतन्य गोसाँञि॥ (चैः भाः)

दोनों के भाव तरंगों का किञ्चित् विराम होने पर श्रीमन्नित्यानन्द बोले, इतने परिश्रम करके विभिन्न तीर्थों का भ्रमण किया है, आज उसका सम्यक् फल प्राप्त किया, नयनों से श्रीमाधवेन्द्र के श्रीचरणों का दर्शन किया। इस प्रेम दर्शन से जीवन धन्य हुआ! माधवेन्द्रपुरी ने निताइचाँद को गोद में उठा लिया, उनकी आँखों से मोतियों की माला की भाँति आँसू की बूँदें निकलने लगीं। प्रेम रस के प्रभाव से गला रुँध गया, सोने का पुतला निताईचाँद को वक्ष से जकड़कर पुरी गोंसाइ स्तम्भित बने रहे। निताइ को वक्ष में पाकर पुरी को इतना ही आनन्द हुआ कि नित्यानन्द को वह और वक्ष से अलग करना ही नहीं चाहते थे। इस धन को वक्ष में पाकर क्या कोई उसे छोड़ने की इच्छा करता है।

नित्यानन्द बोले यह तीर्थ करिलाङ।
सम्यक् ताहार फल आजि पाइलाङ॥
नयने देखिनु माधवेन्द्रेर चरण।
ए प्रेम देखिया धन्य हइल जीवन॥
माधवेन्द्रपुरी नित्यानन्दे करि कोले।
उत्तर ना स्फुरे- रुद्ध कण्ठ प्रेम जले॥
हेन प्रीत हइलेन माधवेन्द्रपुरी।
वक्ष हैते नित्यानन्द बाहिर ना करि॥ **(चैः भाः)**

माधवेन्द्र के साथ जो ईश्वरपुरी, ब्रह्मानन्दपुरी इत्यादि कुछेक शिष्य तीर्थ भ्रमण को निकले थे, सभी समझ गये थे कि नित्यानन्द साक्षात् परमानन्दघन वस्तु हैं, तथा सभी नित्यानन्द में अत्यन्त अनुरक्त हो गये। श्रीमन्नित्यानन्द भी इनके साथ एकत्रित होकर कृष्ण कथा रंग में तीर्थ पर्यटन करने लगे।

ईश्वर पुरी ब्रह्मानन्द पुरी आदि यत।
सर्व शिष्य हइलेन नित्यानन्दे रत॥
कथोदिन नित्यानन्द माधवेन्द्र संगे।
भ्रमेण श्रीकृष्णकथा - परमानन्द-रंगे॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद भी श्रीनित्यानन्द को पाकर महारत्न की प्राप्ति की भाँति दिन रात आनन्द में विह्वल रहते थे, एक पल भी उनका साथ नहीं छोड़ पाते थे। उन्होंने अपने शिष्य वर्ग से कहा, हमलोग तीर्थ भ्रमण के लिये अवश्य जा रहे हैं लेकिन कहीं भी प्रेम देखने को नहीं मिला। नित्यानन्द में ही प्रेम का अनुभव देखा, अतः नित्यानन्द की प्राप्ति की भाँति तीर्थ भ्रमण और

कहीं पर भी नहीं है- इनका संग ही हमारा सर्व तीर्थमय है। समझा मेरे ऊपर कृष्ण की कृपा है, इसीलिये नित्यानन्द की भाँति-प्रेमी बान्धव का संग प्राप्त किया। जिस स्थान पर नित्यानन्द का संग होता है, वह स्थान ही सर्व तीर्थमय है, यहाँ तक कि वहीं पर गोलोक, वैकुण्ठादि धाम है। 'नित्यानन्द' नाम सुनते ही कृष्ण को प्राप्त किया जा सकता है।

माधवेन्द्र नित्यानन्दे छाड़िते ना पारे।
निरवधि नित्यानन्द संहति बिहरे॥
माधवेन्द्र बोले प्रेम ना देखिलुँ कोथा।
सेइ मोर सर्वतीर्थ हेन प्रेम यथा॥
जानिलुँ कृष्णेर कृपा आछे मोर प्रति।
नित्यानन्द हेन बन्धु पाइलुँ संहति॥
ये से स्थाने यदि नित्यानन्द संगहय।
सेइ स्थान सर्वतीर्थ वैकुण्ठादि-मय॥
नित्यानन्द हेन भक्त शुनिले श्रवणे।
अवश्य पाइब कृष्ण चन्द्र सेइ जने॥
एइ मत माधवेन्द्र नित्यानन्द प्रति।
अहर्निशि बोलेन करेन रति मति॥ **(वही)**

वस्तुतत्त्व के विचार से महत का अनुभव एक श्रेष्ठ प्रमाण है। श्रीमन्नित्यानन्द क्या वस्तु हैं, उनका सभी नित्यानन्दमय है; प्रेममय-विग्रह श्रीमाधवेन्द्र का अनुभव ही उसका प्रकृष्ट प्रमाण है। दोनों के तीर्थ पर्यटन के समय सदैव ही प्रेम का अलौकिक भाव दिखायी पड़ता था। कृष्ण प्रेम के आवेश में दोनों ही मतवाले थे। कब दिन होता था। कब रात आती थी, कुछ भी नहीं जानते थे। हमेशा ही भाव विह्वल दशा हँसना, रोना, हो हल्ला, हाय हाय की गूँज। दो महा प्रेमियों का अद्भुत भाव देखकर साथ के परिब्राजकगण आश्चर्यान्वित होते थे। निरन्तर वे हरिनाम कीर्त्तन करते थे। कितना समय बीत जाता था- उस की कोई खबर नहीं रहती थी।

अहर्निशि कृष्ण प्रेमे मद्यपेर प्राय।
हासे कान्दे है है करे हाय हाय॥
नित्यानन्द महामत्त गोविन्देर रसे।
ढुलिया ढुलिया पड़े अट्ट-अट्ट हासे॥
दोंहार अद्भुत भाव देखि शिष्य गण।
निरवधि 'हरि' बलि करये कीर्त्तन॥ **(वही)**

कुछ दिन इस प्रकार बीत गया, इस भावावेश का थोड़ा विराम होने पर दोनों को ही अपने–अपने गन्तव्य स्थान की बात याद आयी। श्रीनित्यानन्द सेतुबन्ध की ओर तथा माधवेन्द्र अयोध्या के सरयू नदी की ओर चल दिये। एक दूसरे के विरह से दोनों का ही हृदय विदीर्ण होने की सम्भावना थी, लेकिन महाकृष्णावेश में दोनों ही देह गत स्मृति से रहित होने के कारण प्राणान्तकारी विरह की अनुभूति नहीं जाग पायी।

कथोदिन माधवेन्द्र संगे नित्यानन्द।
थाकिया चलिला शेषे यथा सेतुबन्ध॥
माधवेन्द्र चलिला सरयू देखिबारे।
कृष्णवेशे केहो निज देह नाहि स्मरे॥
अतएव जीवनेर रक्षा से विरहे।
बाह्य थाकिले कि से विरहे प्राण रहे॥
नित्यानन्द माधवेन्द्र दुइ-दरशन।
ये शुनये तारे मिले कृष्ण प्रेमधन॥

श्रीमन्नित्यानन्द का माधवेन्द्र के साथ साक्षात्कार के विषय में श्रवण, कीर्तन आदि से जीव श्रीकृष्णप्रेम रूपी घन की प्राप्ति करता है, यही जो श्रीनिताइ की फलश्रुति है, यह भी अनन्त–भविष्य में मानव गणों को नित्यानन्दमय प्रेमफल दान का कौशल जानना होगा।

इस प्रकार से तीर्थ पर्यटन के छल से प्रभु श्रीनिताइचाँद ने विश्व के मानव के चित्त को ब्रज प्रेम के आस्वादन के योग्य बना दिया। रहस्यमय ब्रज प्रेम प्रदाता श्रीगौरांग के साथ सम्मेलन में ही साक्षात् प्रेमदान का करतब चलेगा। नित्यानन्द का तभी–जीवों को नित्यानन्द या प्रेमानन्द दान की तरंगों का तूफान उच्छ्वसित हो उठेगा! निताइचाँद पृथ्वी के सारे तीर्थों का पर्यटन करके अन्त में श्रीवृन्दावन में अवस्थान करके निरन्तर बाल्यभाव से शिशुओं के साथ धूल मिट्टी में खेलने लगे। उस समय दिन रात उनके आहार की कोई चेष्टा नहीं थी, निरन्तर प्रेमरस में मतवाला बने रहते थे। कभी कोई बिना माँगे थोड़ा दूध लाकर देता था तो उसे ही पी लेते थे। यद्यपि वह निरन्तर कृष्णप्रेम में विभोर बने रहते थे, फिर भी उनके हृदय में न जाने कैसा एक खालीपन का भाव दिखायी पड़ता था। उस अनजानी कमी की पूर्ति के लिये वह निरन्तर व्याकुल रहते थे।

एइमत यह तीर्थ नित्यानन्द राय।
सब देखि पुनः आइलेन मथुराय॥
चिनिते ना पारे केहो अनन्तेर धाम।
हुंकार करये देखि पूर्वजन्म-स्थान॥
निरवधि बाल्य भाव, आन नाहि स्फुरे।
धूला खेला खेले वृन्दावनेर भितरे॥
आहारेर चेष्टा नाहि करये कोथाय।
बाल्य भावे वृन्दावने गड़ागड़ि जाय॥
केहो नाहि बुझे तान चरित्र उदार।
कृष्ण रस बिने आर ना करे आहार॥
कदाचित् कोनो दिने करे दुग्ध पान।
सेहो यदि अयाचित केहो करे दान॥ **(चैः भाः)**

इस समय श्रीनवद्वीप में श्रीश्रीगौररूपी चन्द्रमा के प्रकाश में भक्तवृन्दों का हृदयरूपी सुधा-सिन्धु महा-उच्छ्वासमयी महा तरंग माला से आन्दोलित हो गया। श्रीश्रीहरिनाम-संकीर्तन की तरंग के गर्जन से दसों दिशायें गुञ्जायमान तथा प्रति ध्वनित हो गयी। उन तरंग का प्रति घात-उस नाम संकीर्तन की तरंग की गर्जन की प्रतिध्वनि शीघ्र श्रीवृन्दावन आपहुँची। श्रीकृष्ण के प्रेम में मतवाले श्रीनित्यानन्द का हृदय उस प्रतिघात से, उस तरंग की ध्वनि से विकम्पित हो उठा। उनका बाल्यभाव दूर होकर भाव में परिवर्तन दिखायी दिया। वह समझ गये कि श्रीनवद्वीप के इस प्रेमसिन्धु का विपुल उच्छ्वास - इस नाम रूपी तरंग का कल-कल निनाद - श्रीगौरांग रूपी चन्द्रोदय का ही अमृतमय फल है। श्रीनिताइचाँद समझ गये, नवद्वीप में उनके प्रभु का उदय हो गया है- केवल उदय ही नहीं उनका महा प्रकाश हो गया है। असंख्य भक्तरूपी नक्षत्र मंडल गौररूपी चन्द्रमा को घेर कर विराज रहे हैं। इस महासम्मेलन के फलस्वरूप ही नदीया का - नाम कीर्तन रूपी सिन्धु उच्छ्वसित तरंगयुक्त तथा उद्वेलित हो उठा है!! वह और एक क्षण भी देर न करके नवद्वीप की ओर दौड़ पड़े। कितने नदी, नाले, ग्राम, देश, वन, अरण्य नक्षत्र वेग से अतिक्रमण करते हुये श्रीनवद्वीप में आये तथा आड़म्बर रहित रूप से नवद्वीपवासी श्रीनन्दनाचार्य के जन कोलाहल रहित सुनसान घर में स्थान ग्रहण किया।

एइमत वृन्दावने बैसे नित्यानन्द।
नवद्वीपे प्रकाश हइला गौरचन्द्र॥
निरन्तर संकीर्तन - परम आनन्द।
दुःख पाय प्रभु ना देखिया नित्यानन्द॥
नित्यानन्द जानिलेन प्रभुर प्रकाश।
ये अवधि लागि करे वृन्दावन वास॥
जानिञा आइला झाट नवद्वीप पुरे।
आसिया रहिला नन्दन-आचार्येर पारे॥ (वही)

श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं जिस प्रकार भक्तवृन्दों को लेकर श्रीनन्दन आचार्य के घर में श्रीनित्यानन्द प्रभु का दर्शन कराया, उसका उल्लेख नित्यानन्द की गूढ़ता के विषय में बताते समय हमने ग्रन्थ के प्रारम्भ में किया है! महाप्रभु के साथ भक्तवृन्दों ने नन्दनाचार्य के घर में निताइचाँद को जिस प्रकार देखा, श्रीचैतन्यभागवत की भाषा में ही उसका आस्वादन करना होगा-(मध्य खण्ड 3 अध्याय)

श्रीगौर नित्यानन्द का मिलन—

बसियाछे एक महापुरुष रतन।
सबे देखिलेन येन कोटि सूर्य सम॥
अलक्षित आवेश बुझन नाहि जाय।
ध्यान सुखे परिपूर्ण हासये सदाय॥
महा भक्तियोग प्रभु बुझिया ताँहार।
गण सह विश्वम्भर हैला नमस्कार॥
सम्भ्रमे रहिला सर्वगण दाण्डाइया।
केहो छिु नाहि बुझे रहिल चाहिया॥
सम्मुखे रहिला महाप्रभु विश्वम्भर।
चिनिलेन नित्यानन्द प्राणेर ईश्वर॥

आनन्दघन विग्रह श्रीनिताइचाँद अपने प्राणों के ईश्वर को पहचान गये। ब्रज में उनके प्राणों के कन्हाइ का रूप निरन्तर उनके हृदय पटल पर अंकित है, अन्दर बाह्य उनका श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का अनुभव स्वाभाविक है। वह रूप ही उनके नयनों के समक्ष देखा, लेकिन उस श्याम-चिकनिया की मेघ श्यामल कान्ति श्रीवृषभानुनन्दिनी की दिव्य स्वर्ण द्युति से आच्छादित

थी। जिन्होंने उस अलौकिक रूपमाधुरी का साक्षात् अनुभव प्राप्त किया है, उन्हीं की भाषा में उस रूप के आस्वादन की यथार्थ सार्थकता है—

विश्वम्भर मूर्त्ति येन मदन-समान।
दिव्य गन्ध-माल्य दिव्य वास परिधान॥
कि हय कनक-ज्योति से देहेर आगे।
से बदन देखिते चाँदेर साध लागे॥
से दन्त देखिते कोथा मुकुतार दाम।
से केश-बन्धन देखि ना रहे गेयान॥
देखिते आयत दुइ अरुण नयान।
आर कि कमल आछे हेन हय ज्ञान॥
से आजान दुइ भुज हृदय सुपीन।
ताहे शोभे शुभ्र यज्ञ सूत्र अति क्षीण॥
ललाटे विचित्र ऊर्द्ध - तिलक सुन्दर।
आभरण बिने सर्व अंग मनोहर॥
किबा हय कोटि मणि से नख चाहिते।
से हास देखिते किबा करिब अमृते॥ (चैः भाः)

श्रीभगवान् का रूप चिन्तन वैष्णवगणों की एक प्रधान साधना है। रूप का आकर्षण अत्यन्त स्वाभाविक है, दर्शक मात्र ही इसमें मोहित हो जाता है। भगवत्रूप के ध्यान में चित्त निविष्ट होने पर इतर चिन्ता में हृदय से दूर हो जाती हैं। विश्व के नर-नारी पाञ्चभौतिक तथा विरस परिणामी पारस्परिक तुच्छ रूप के मोह में पड़कर उसी में आसक्त होकर देव-दुर्लभ मानव जीवन को बेकार में गँवाते हैं। जिन्होंने चिन्मय भगवद्रूप का साक्षात् अनुभव प्राप्त किया है, उन्होंने विश्व के जीवों के प्रति करुणा करके उस रूपमाधुरी का वर्णन करके रखा है। श्रवण कीर्त्तन से भी उस रूप का यत्किञ्चित् अनुभव प्राप्त होने पर जड़ीय रूप अत्यन्त घृणा के योग्य लगता है। उल्लिखित कई पद्यों में श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने श्रीमन्महाप्रभु के रूपानुराग के अनोखे आलेख्य की रचना की है वह सत्य ही विश्व में अतुलनीय है।

नित्यानन्द सम्मुखे रहिला विश्वम्भर।
चिनिलेन नित्यानन्द आपन ईश्वर॥
हरिषे स्तम्भित हैला नित्यानन्द-राय।
एक दृष्टि हइ विश्वम्भर-रूप चाय॥

रसनाय लेहे येन दरशने पान।
भुजे येन आलिंगन, नासिकाये घ्राण॥
एइ मत नित्यानन्द हइला स्तम्भित।
ना बोले ना करे किछु सभेइ स्तम्भित॥ (वही)

श्रीविश्वम्भर के दर्शन से श्रीमन्नित्यानन्द विपुल भर का स्तम्भित हो गये। अपलक नयनों से उस रूप का दर्शन करने लगे। केवल नयनों से दर्शन ही नहीं, प्रत्येक इन्द्रिय के द्वारा उस रूपमाधुरी के आस्वादन में वह आत्महारा हो गये, जिस प्रकार लोग अत्यन्त मधुर चूसने योग्य खाद्य को जीभ से सुस्वाद ग्रहण करने के लिये धीरे-धीरे चूसते हैं उसी प्रकार निताइ धीरे-धीरे मानो श्रीगौरांग की रूपमाधुरी को जीभ से लेहन करने लगे (चाटने लगे)। नयनों के द्वारा पान नहीं किया जा सकता, लेकिन निताइचाँद मानो सुमधुर अमृत की भाँति नयनों की चूसनी से उस रूपमाधुरी का पान करने लगे। नाक उनके गौर अंग की अलौकिक सुगन्ध को ग्रहण करने में प्रमत्त हो गयी। बाहुयुगल मानो उनका आलिंगन करने के लिये व्याकुल हो गये। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीवास के द्वारा श्लोकों का पाठ करवाकर जिस प्रकार से श्रीमन्नित्यानन्द की प्रेमोन्मादना को जगाकर उनके स्वरूप को प्रकाश किया, उसका हमने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही वर्णन किया है।

नित्यानन्द गौरचन्द्र दोंहे दोंहे देखि।
केहो किछु ना बोले, झरये मात्र आँखि॥
दोंहे दोंहा देखि बड़ विवश हइला।
दोंहार नयन जले पृथिवी भासिला॥
विश्वम्भर बोले शुभ दिवस आमार।
देखिलाङ भक्तियोग-चारि-वेद सार॥
ए कम्प ए अश्रु एइ गर्जन हुंकार।
एइ कि ईश्वर शक्ति बइ हय आर॥
सकृत् ए भक्तियोग नयने देखिले।
ताहारे ओ कृष्ण ना छाड़ेन कोन काले॥
बुझिलाम - ईश्वरेर तुमि पूर्ण शक्ति।
तोमा भजिले से जीव पाय कृष्ण भक्ति॥
तुम कर चतुर्दश भुवन पवित्र।
अचिन्त्य अगम्य गूढ़ तोमार चरित्र॥

तोमा लिखिवेक हेन आछे कोन जन।
मूर्त्तिमन्त तुमि कृष्ण-प्रेम भक्ति धन॥
तिलार्द्ध तोमार संग ये जनार हये।
कोटि पाप थाकिले ओ तार मन्द नहे॥
बुझिलाङ - कृष्ण मोरे करिब उद्धार।
तोमा हेन संग आनि दिलेन आमार॥
महाभाग्ये देखिलाम तोमार चरण।
तोमा भजिले से पाइ कृष्ण प्रेमधन॥ (चैः भाः)

श्रीमन्महाप्रभु की ये सब उक्तियाँ अत्यन्त ही स्पष्ट हैं, व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं है। श्रीनित्यानन्द क्या वस्तु हैं नित्यानन्द की स्तुति के छल से श्रीमन्महाप्रभु ने ही विश्ववासियों को समझा दिया है। इसीलिये हम मुख्य रूप से श्रीमन्महाप्रभु की निताइ-स्तुति का अवलम्बन करके ही नित्यानन्द महिमा की किञ्चित् उपलब्धि करने का प्रयास कर रहे हैं।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीमन्नित्यानन्द का स्तव करके क्षण तक आविष्ट भाव से रहे। कुछ देर बाद बाह्यज्ञान होने पर श्रीमन्नित्यानन्द की ओर देखकर बोले, "श्रीपाद! एक बात जानने की इच्छा होती है, लेकिन पूछने का साहस नहीं होता। विशेष कोई बात नहीं है, किस दिशा से श्रीपाद का यहाँ शुभागमन हुआ है?" श्रीनित्यानन्द समझ गये कि स्वयं भगवान् उनके सामने विराजमान हैं तथा वही उनकी महिमा को व्यक्त करने के लिये इतनी स्तव स्तुति कर रहे हैं। महाप्रभु के मुख से अपनी स्तुति सुनकर वह लज्जित हो गये, इसलिये महाप्रभु के प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर वह अत्यन्त विनम्र भाव से बोले- 'मैं श्रीकृष्ण की लीलास्थली तथा अन्यान्य तीर्थों का दर्शन करने के लिये भ्रमण कर रहा था, श्रीकृष्ण की अनेकों लीलास्थलियों का दर्शन भी किया, लेकिन अनेकों प्रयास करने पर भी वह भगवत् साक्षात्कार नहीं हुआ। दुःखी होकर अच्छे-अच्छे साधु सज्जनों से पूछा- 'ये सारे श्रीकृष्ण की लीलाओं के स्थान पड़े हुये हैं, लेकिन श्रीकृष्ण कहाँ हैं? उनके दर्शन तो नहीं हो रहे हैं।' इसके जवाब में वे लोग बोले, तुम नहीं जानते? श्रीकृष्ण गौड़देश में आविर्भूत हुये हैं, कुछ दिन पहले वह गया में आये थे, गया से गौड़देश लौट गये हैं, कोई बोला, नदीया में हरि संकीर्तन की भयंकर गूँज उठी है, श्रीकृष्ण के आविर्भाव के अलावा ऐसा कभी नहीं होता, निश्चय ही नवद्वीप में श्रीकृष्ण का आविर्भाव हुआ है। यह बात सुनकर मेरे मन में बड़ी ही आशा का संचार हुआ, सोचा

नदीया ही मेरे जैसे पातकी के उद्धार का स्थान है- उसी आशा से यहाँ दौड़ा चला आया, मेरी बहुत दिनों की आशा पूर्ण हुई- तुम्हारा दर्शन प्राप्त किया। श्रीचैतन्यभागवत में वर्णित है—

नित्यानन्द बोले तीर्थ करिल अनेक।
देखिल कृष्णेर स्थान यतेक यतेक॥
स्थान मात्र देखि कृष्ण देखिते ना पाइ।
जिज्ञासा करिल तबे भाल लोक ठाइ॥
सिंहासन सब केने देखि आच्छादित।
कह भाइ सब कृष्ण गेला कोन् भित॥
तारा बोले - कृष्ण गियाछेन गौड़ देशे।
गया करि गियाछेन कथोक दिवसे॥
नदीयाय शुनि बड़ हरि संकीर्तन।
केहो बोले तथाय जन्मिला नारायण॥
पतितेर त्राण बड़ शुनि नदीयाय।
शुनिया आइलुँ मुञि पातकी एथाय॥

प्रभु बोले, 'श्रीपाद! हम बड़े भाग्यवान् होने के कारण ही यहाँ आपका आगमन हुआ है। आज आपके नयनों में जिस जाह्नवी-यमुना की धारा देखी, उससे हम लोग कृतकृत्य हो गये। आपके आगमन से यह देश पवित्र तथा श्रीकृष्णप्रेम के रस से अभिषिक्त होगा- इसमें संशय नहीं है।' महाप्रभु की बात समाप्त होने पर मुख्य-मुख्य पार्षदों ने नित्यानन्द के विषय में अपनी-अपनी अनुभूति की बात व्यक्त की। श्रीमुरारी गुप्त बोले, 'प्रभु! आप लोगों का तत्त्व आप लोग ही जानें- हम अत्यन्त क्षुद्र जीव हैं हम उसका क्या समझेंगे।' श्रीवास पण्डित बोले, 'दोनों बिल्कुल मानो माधव तथा शंकर हों, दोनों ही दोनों के पूजक हैं।' श्रीगदाधर बोले, 'पण्डित ने ठीक ही कहा है, और भी लगता है मानो दोनों श्रीराम लक्ष्मण हों।' कोई बोला, दोनों लोग मानो दो काम हैं, विश्व को रूप से मोहित कर रहे हैं। कोई बोला, दोनों मानो कृष्ण-बलदेव हैं। कोई बोला, मैं विशेष कुछ नहीं जानता, श्रीकृष्ण शेष देव की गोद में निरन्तर विराज करते हैं, आज मानो वही शेष देव ने श्रीकृष्ण की गोद में आश्रय लिया। कोई बोला, श्रीकृष्ण अर्जुन की भाँति दोनों को स्नेह से परिपूर्ण देखा। कोई बोला, दोनों का मानो कितने समय का परिचय है, दोनों की आपस में एक दूसरे के साथ इशारे में सब बात होती हैं-

हम लोग कुछ भी नहीं समझ पाते हैं। इस प्रकार से भक्तगण अपने-अपने भाव के अनुसार दोनों का तत्त्व बताने लगे। श्रीचैतन्यभागवत के रचयिता श्रीवृन्दावनदास ठाकुर बोले—

संगी, सखा, भाइ, छत्र, शयन, वाहन।
नित्यानन्द बइ अन्य नहे कोन जन॥
आदि देव महा योगी ईश्वर वैष्णव।
महिमार अन्त इहा नाहि जाने सब॥
ना जानिञा निन्दे ताँर चरित्र अगाध।
पाइया ओ विष्णु भक्ति हय तार बाध॥
चैतेन्येर प्रिय देह नित्यानन्द राम।
हउक मोर प्राण नाथ - एइ मनस्काम॥
'रघुनाथ' 'यदुनाथ' येन नाम भेद।
एइमत भेद 'नित्यानन्द' बलदेव॥
संसारेर पार हञा भक्तिर सागरे।
ये डुबिबे से भजुक निताइचाँदेरे॥ (चैः भाः)

निताइ कृष्णप्रेम में मतवाले हैं, बाहरी ज्ञान रहित हैं। मधुर विनय वचनों से श्रीगौरांग का स्तव करके उन्हें प्रणाम करने को उद्यत हुये। महाप्रभु ने उनको आलिंगन करके प्रणाम किया। दोनों ही एक दूसरे को आलिंगन करके प्रेमानन्द से रोने लगे। नित्यानन्द प्रेमार्त्तिपूर्ण-भाषा में मन्द मुस्कुराते हुये बोले- इतने दिन तुम कहाँ थे? तुम्हारी खोज में मैंने सारा जगत् भ्रमण किया, कहीं पर तुम नहीं मिले; बाद में सुना तुम नवद्वीप में छिपे हुये हो। तुम चोर की भाँति भाग गये थे, अब तुम्हें पकड़ लिया है। और नहीं भाग पाओगे। यह कहकर निताइ श्रीगौरांग को पकड़कर नाचने, हँसने, रोने लगे।

भूमिते लोटाञा प्रभुपरनाम करे।
करिल मधुर स्तुति विनय अक्षरे॥
पड़िलेन प्रभुपदे नित्यानन्दराय।
दोंहार चरण दोंहे धरि बारे चाय॥
दोंहे आलिंगन करे कान्दिया कान्दिया।
कति छिला बलि हाँसे श्रीमुख - चाहिया॥
सकल अवनी आमि फिरिया आइनु।
कोथाह तोमार लाग मुञि ना पाइनु॥

शुनिलाङ गौड़देशे नवद्वीपपुरे।
लुकाञा रञाछे तथा नन्देर कुमारे॥
चोर धरिबारे आमि आइलाङ एथा।
धरियाछि चोर आजि पालाइबा कोथा॥
इहा बलि नित्यानन्द हासे कान्दे नाचे।
गौरांग आनन्दे कान्दे नित्यानन्द काछे॥

श्रीनित्यानन्द को पाकर श्रीगौरांग के आनन्द की सीमा नहीं थी। वह उनके जीव उद्धार कार्य के परम सहायक निताइ को पाकर आनन्द से आत्महारा हो गये!!

कलि दर्प नाशिते पाइल नित्यानन्द।
तारिमु पतित पंगु जड़ आदि अन्त॥
नित्यानन्द प्रतापे पवित्र त्रिभुवन।
ना जाने पाषण्डी मूर्ख दुराचार जन॥
सभाइ पड़िबे बुझि नित्यानन्द फान्दे।
एइ कथा बलिलेन प्रभु गोरा चान्दे॥

इसके पश्चात् श्रीनन्दनाचार्य के घर में संकीर्तन के आनन्द का रस मूर्त्तिमान हो उठा! दो भुवन मोहन आनन्द की मूर्त्ति संकीर्तन के अनोखे माधुर्यमय ताल में नृत्य करने लगे। संकीर्तन के आनन्द में प्रमत्त होकर पार्षदगण दोनों प्रभु को घेर कर नाचने लगे। हरिध्वनि के महाशब्द से दसों दिशायें गूँज उठीं। नन्दनाचार्य के घर पर सर्व चित्तानन्ददायक अनोखा ब्रजरस का दृश्य फूट पड़ा। यह महानन्द का मामला पहली बार नवद्वीपवासियों के दृष्टि गोचर हुआ। नृत्य कीर्तन से थक कर गोलोकधाम की दो स्वर्ण प्रतिमायें बैठ गयीं। दर्शक मात्र ही भुवन मोहन गौर निताइ की रूपमाधुरी का दर्शन कर विमोहित हो गया। सभी ने अपने को धन्य माना। श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं श्रीनिताइचाँद का श्रीचरणरज: लेकर सभी के मस्तक पर अर्पण किया। भक्तगण उस अत्यन्त दुर्लभ पाद पद्म-पराग को मस्तक में पाकर महाप्रेम में आत्महारा हो गये। उनके नयनों से अविरल अश्रु की धारा प्रवाहित होने लगी। नन्दनाचार्य के घर में आज यथार्थ रूप से ही गोलोक वृन्दावन का घनीभूत आनन्द रस-मूर्त्तिमान हो उठा।

भूमिते लोटाञा प्रभु परनाम करे।
कहिल मंगल कथा विनय अक्षरे॥

हरिगुण संकीर्तन करये आनन्दे।
आपने नाचये नित्यानन्द करि संगे॥
नृत्य सम्बरिया से बसिल सेइ खाने।
आनन्दित सर्वलोक देखये नयाने॥
तबे नित्यानन्द-पद-अरविन्द धूलि।
आपने आनिया दिल भक्त शिरोपरि॥
नित्यानन्द-पद धूलि पाञा भक्तगण।
प्रेमे गर गर चित्त झरये नयन॥

श्रीनित्यानन्द की व्यास पूजा—

इसके पश्चात् श्रीचैतन्यभागवत में श्रीवास के घर में श्रीनित्यानन्द के व्यासपूजा का प्रसंग वर्णित हुआ है। श्रीमन्महाप्रभु सभी के सामने श्रीनित्यानन्द प्रभु से बोले, 'श्रीपाद! कल ही व्यास पूजा की पूर्णिमा तिथि है- आप व्यास पूजा कहाँ करेंगे? प्रभु का इशारा समझकर श्रीनिताइचाँद श्रीवास पण्डित का हाथ पकड़ कर बोले- "मैं घर पर ही व्यास पूजा करुँगा।' श्रीमन्महाप्रभु बोले, 'श्रीवास! देख रहा हूँ तुम्हारे ऊपर भारी जिम्मेदारी पड़ी है।' श्रीवास पण्डित हँसकर बोले, 'प्रभु! तुम्हारी कृपा से यह मेरे लिये कुछ भी जिम्मेदारी नहीं है। वस्त्र, यज्ञ सूत्र, मूँग, घी, पान, सुपाड़ी सभी सामग्री मेरे घर में हैं। केवल पद्धति की किताब संग्रह करने से ही चलेगा। यह फिर कैसा भार है। मेरा सौभाग्य है कि कल मेरे घर में व्यासपूजा देखूँगा। यह सुनकर वैष्णवगणों ने महानन्द से हरिध्वनि की। श्रीगौर-निताइ सभी के साथ श्रीवास के घर गये। दरवाजा बन्द करके कीर्त्तन प्रारम्भ हुआ। आज व्यास पूजा का अधिवास-कीर्त्तन है। यह अद्भुत कीर्तनानन्द श्रीचैतन्यभागवत में इस प्रकार वर्णित है—

व्यास पूजा - अधिवास उल्लास कीर्त्तन।
दुइ प्रभु नाचे बेढ़ि गाय भक्तगण॥
चिर-दिवसेर प्रेमे चैतन्य-निताइ।
दोंहे दोंहा ध्यान करि नाचे एक ठाञि॥
हुंकार करये केहो केहो वा गर्जन।
केहो मूर्च्छा जाय केहो करये क्रन्दन॥
कम्प, स्वेद, पुलकाश्रु, आनन्द-मूर्च्छित।
ईश्वरेर विकार - कहिते जानि कत॥

स्वानुभावानन्दे नाचे प्रभु दुइ जन।
क्षणे कोलाकुलि करि करये क्रन्दन॥
दोंहार चरण दोंहे धरिबारे चाहे।
परम चतुर दोंहे - केहो नाहि पाये॥
× × × × ×
'बोल बोल' बलि डाके श्रीगौरसुन्दर।
सिञ्चित आनन्द जले सर्व-कलेवर॥
चिरदिन नित्यानन्द पाइ अभिलाषे।
बाह्य नाहि, आनन्द-सागर-माझे भासे॥

नित्यानन्द के स्वरूप तत्त्व के प्रकाश के लिये महाप्रभु बलराम के भाव में प्रमत्त होकर खाट के ऊपर बैठकर मद्य लाओ मद्य लाओ कहकर गर्जन करने लगे। श्रीनित्यानन्द से बोले- 'जल्दी मुझे श्रीहल तथा मूसल दो।' प्रभु की आज्ञा पाकर नित्यानन्द ने उनके हाथ में हल, मूसल दिया तथा प्रभु ने वह लिया। श्रीनित्यानन्द के जो अत्यन्त कृपापात्र थे उन्होंने वह प्रत्यक्ष देखा। श्रीहल-मूसल हाथ में लेकर महाप्रभु मतवाले होकर 'वारुणी-वारुणी' कहने लगे। भक्तगणों ने आपस में परामर्श करके प्रभु के हाथ में गंगा जल का लोटा देने पर प्रभु सच में ही उसे कादम्बरी की भाँति पीने लगे। भक्तगण प्रभु का आवेश देखकर प्रभु को घेरकर श्रीबलदेव स्तुति का पाठ करने लगे। श्रीनिताइ के रूप में साक्षात् ब्रज के बलदेव का आगमन हुआ। यह समझ कर सभी आनन्द के सागर में प्रवाहित हो गये।

इसके पश्चात् प्रभु परम आवेश में बार-बार 'नाढ़ा-नाढ़ा-नाढ़ा' कहने लगे। सभी के नाढ़ा का परिचय पूछने पर प्रभु बोले, "जिनको तुम लोग 'अद्वैत आचार्य' कहते हो वह नाढ़ा मुझे वैकुण्ठ से लाकर अब हरिदास को लेकर शान्तिपुर में जाकर निश्चिन्त हो गया है। संकीर्तन के प्रारम्भ में मेरा यह अवतार है। घर-घर नाम कीर्तन का प्रचार करुँगा केवल अभिमानी भक्तापराधी के अलावा ब्रह्मा के लिये दुर्लभ प्रेम सभी नगरवासियों को दान करुँगा।" प्रभु की श्रीमुख की वाणी सुनकर भक्तवृन्द आनन्द के सागर में प्रवाहित हो गये, कुछ क्षण के बाद प्रभु का आवेश कम होने पर थोड़ा स्थिर होकर बोले, 'भक्तगण! मैंने क्या कोई चंचलता की है? अगर कुछ ज्यादा कर बैठूँ तो तुम लोग मेरा अपराध क्षमा करना।' प्रभु की बातें सुनकर भक्तवृन्द हँसने लगे।

हासे सर्व-भक्तगणप्रभुर कथाय।
नित्यानन्द-महाप्रभु गड़ागड़ि जाय॥
सम्बरण नहे नित्यानन्देर आवेश।
प्रेमरसे विह्वल हइला प्रभु शेष॥
क्षणे हासे क्षणे कान्दे क्षणे दिगम्बर।
बाल्यभावे पूर्ण हैला सर्व कलेवर॥
कोथा वा थाकिल दण्ड कोथा कमण्डुलु।
कोथा वा वसन गेल नाहि आदि मूल॥
चञ्चल हइला नित्यानन्द महाधीर।
आपने धरिया प्रभु करिलेन स्थिर॥
स्थिर हओ कालि पूजिबारे चाह व्यास।
स्थिर कराइया प्रभु गेला निजवास॥ (चैः भाः)

इस प्रकार व्यास पूजा का अधिवास कीर्तन समाप्त हुआ। सभी भक्तगण अपने-अपने घर चले गये। श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवास के घर पर रुक गये। देह मन में घना आवेश था। रात को अचानक हुंकार करते हुये अपना दण्ड कमण्डल तोड़कर फेंक दिया। सुबह होने पर श्रीवास के भाई ने निताईचाँद के शयनकक्ष में जाकर देखा प्रभु की स्वाभाविक अवस्था नहीं है- मानो कैसा एक विह्वलता का भाव है। दण्ड, कमण्डल टूटा हुआ है। उनके यह खबर श्रीवास को देने पर श्रीवास ने समाचार महाप्रभु को देने के लिये कहा। रामाइ से समाचार पाकर महाप्रभु आये; देखा निताइ बाह्यज्ञान रहित हैं—

केवल हँस रहे हैं! महाप्रभु ने टूटा हुआ दण्ड, कमण्डल बटोर लिया, निताइचाँद तथा श्रीवास आदि भक्तगणों को साथ लेकर प्रभु गंगा स्नान के लिये गये। प्रभु ने अपने हाथों से श्रीनित्यानन्द का टूटा हुआ दण्ड, कमण्डल गंगा की धारा में प्रवाहित कर दिया। श्रीजाह्नवी देवी इस महारत्न को वक्ष में पाकर कल-कल निनाद करते हुये परम उल्लास के साथ सागर को यह भक्ति पूर्ण उपहार प्रदान करने के लिये वेग के साथ प्रवाहित हो चलीं! सागर लौकिक रत्नों का भण्डार होने पर भी श्रीमन्नित्यानन्द के प्रेममय हस्त स्पर्श का महारत्न वक्ष में पाकर धन्य हो जायेगा। इसमें संशय नहीं है। श्रीनिताइचाँद ने कब दण्ड-कमण्डल धारण किया था उसकी जानकारी नहीं मिलती है। क्यों अपने हाथों से उसे तोड़ फेंका, उसे भी समझने का उपाय नहीं है। बहुत सम्भव है उन्हें लगा कि महाप्रभु को पाकर उनकी मानो समस्त साधनायें

पूर्णता प्राप्त हो गयी हैं बेकार में इस दण्ड-कमण्डल को ढोने का क्या लाभ है? शायद यह सोचकर ही उन्होंने उसे तोड़कर फेंक दिया।

जो भी हो सभी ने गंगा स्नान किया। नित्यानन्द प्रभु ने गंगाजी में छलांग लगाकर एक विपत्ति पैदा कर दी। वह बीच गंगा की प्रबल धारा में तैरने लगे। उस समय गंगा की धारा में मगरमच्छ आदि हिंसक जानवर तैरते रहते थे तथा मौका मिलते ही मनुष्य आदि को जान से मार डालते थे। निताइ मगरमच्छ को देखकर उसे पकड़ने के लिये उसकी तरफ दौड़े। कृष्ण के प्रेम में मतवाले निताइ के लिये नित्यानन्द के बिना और कुछ भी नहीं है। हिंसक जानवर भी उनके लिये आनन्द स्वरूप ही है। उन्हें फिर हिंसा विद्वेष का ज्ञान कहाँ है?

कुम्भीर देखिया तारे धरिवारे जाय।
गदाधर श्रीनिवास करे हाय हाय॥
साँतरे गंगार माझे निर्भय शरीर।
चैतन्येर वाक्ये मात्र किछु हय स्थिर॥
नित्यानन्द प्रति डाकि बोले विश्वम्भर।
व्यास पूजा आसिझट करह सत्वर॥ (चैः भाः)

प्रभु का वाक्य सुनकर नित्यानन्द किनारे आ गये, सभी स्नान करके श्रीवास के अंगन में उपस्थित हो गये। व्यास पूजा का आयोजन हुआ। भक्तवृन्द मधुरस्वर में कृष्ण नाम कीर्तन करने लगे। श्रीवास स्वयं व्यास पूजा के आचार्य थे, उन्होंने यथाविधि व्यासपूजा सम्पन्न करवाकर एक सुगन्धित सुन्दर फूलों की माला लाकर नित्यानन्द के हाथ में देकर बोले—

शुन शुन नित्यानन्द एइ माला धर।
बचन पड़िया व्यास देवे नमस्कर॥
शास्त्र विधि आछे माला आपने से दिबा।
व्यास तुष्ट हैले सर्व- अभीष्ट पाइब॥ (वही)

श्रीनित्यानन्द श्रीवास की बातों पर ध्यान न देकर अस्पष्ट रूप से जाने क्या कहते हुये इधर-उधर नजर दौड़ाने लगे। श्रीवास ने महाप्रभु को बुलाकर कहा, नित्यानन्द को व्यास पूजा करवाना मेरे लिये सम्भव नहीं हुआ। अगर तुम करवा सको तो कोशिश करके देखो। श्रीवास का वाक्य सुनकर महाप्रभु के श्रीनित्यानन्द के निकट आकर व्यास को माला पहनाने की बात कहते ही

निताइचाँद ने श्रीमन्महाप्रभु के गले में माला पहना दी। उस समय एक अनोखी घटना हो गयी!

चाँचर चिकुरे माला शोभे अति भाल।
छय-भुज विश्वम्भर हइला तत्काल॥
शंख-चक्र-गदा-पद्म श्रीहल-मुषल।
देखिया विस्मित हैला निताइ विह्वल॥
षड्भुज देखि मूर्च्छा पाइला निताइ।
पड़िला पृथिवी तले- धातु मात्र नाइ॥

नित्यानन्द की हालत देखकर वैष्णवगण भयभीत हो गये। 'हे कृष्ण! रक्षा करो, रक्षा करो, कहते हुये सभी प्रार्थना करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु श्रीनिताइचाँद को उठाकर कहने लगे—

उठ उठ नित्यानन्द स्थिर कर चित।
संकीर्तन शुन - ये तोमार समीहित॥
ये कीर्तन निमित्त करिला अवतार।
से तोमार सिद्ध हैल किबा चाह आर॥
तोमार से प्रेम भक्ति, तुमि प्रेममय।
बिने तुमि दिले कारो भक्ति नाहि हय॥
आपना सम्बरि उठ, निज जन चाह।
याहारे तोमार इच्छा ताहारे विलाह॥
तिलार्द्धेक तोमारे याहार द्वेष रहे।
भजिलेह से आमार प्रिय कभु नहे॥
पाइया चैतन्य प्रभु - प्रभुर वचने।
हइला आनन्दमय षड्भुज दर्शने॥ (चैः भाः)

इस प्रकार से ही नित्यानन्द की व्यासपूजा सम्पन्न हुई। श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवास के घर में रहने लगे। शिशु की भाँति सरल भाव से परम आनन्दमय नित्यानन्द श्रीवास के घर पर दिन-रात गुजारते थे। उनके चलने में आनन्द, बोलने में आनन्द, बैठने में आनन्द, भोजन में आनन्द, भजन में आनन्द था- आनन्दमय नित्यानन्द में एक पल के लिये भी आनन्द का विराम नहीं था। उनके दर्शन मात्र से ही दर्शकगणों के चित्त में आनन्द का प्रवाह उच्छ्वसित हो उठता था, निरानन्दमय विश्व जगत् के नर-नारियों को गोलोक-वृन्दावन का आनन्ददान करने के लिये ही जिनका शुभ आविर्भाव हो उनका कोई भी कार्य आनन्द विहीन नहीं होता। इसीलिये "नित्यानन्द बिना

किछु नाहिक तोमार" महाप्रभु की यह उक्ति है। परम सौभाग्यवान श्रीवास पण्डित तथा उनकी पत्नी अपने घर में घनीभूत आनन्द की मूर्त्ति नित्यानन्द को पाकर कितने आनन्द में थे वह अत्यन्त आसानी से ही समझा जा सकता है। फिर भी श्रीनित्यानन्द के सम्बन्ध में श्रीवास पण्डित के प्रति महाप्रभु की कुछ परीक्षा की आवश्यकता हुई।

श्रीवास की नित्यानन्द में निष्ठा—

श्रीवास के साथ एक दिन कृष्ण कथा कहते-कहते अचानक महाप्रभु बोले- 'देखो श्रीवास! इस अवधूत को तुमने अपने घर में जगह क्यों दी है? जिसका जाति, कुल सभी अज्ञात है, तुम्हारी भाँति निष्ठावान् ब्राह्मण के लिये उसे घर में जगह देना उचित नहीं है। यदि अपने जाति कुल को बचाना चाहते हो तो तुरन्त इस अवधूत को घर से निकाल दो!' प्रभु की बात सुनकर श्रीवास हल्की मुस्कान के साथ बोले- 'प्रभु! मेरी परीक्षा लेना आपके लिये ठीक नहीं है। यदि कोई एक दिन भी तुम्हारा भजन करता है तो वह मेरे प्राणों की भाँति प्रिय हो जाता है। और नित्यानन्द तो तुम्हारा अभिन्न विग्रह हैं। बाहरी दृष्टि से यदि नित्यानन्द को मदिरा पान करते हुये, यवनी का संग करते हुए देखा जाये, नित्यानन्द यदि मेरी जाति, धन, प्राण सभी का नाशकर दें, फिर भी प्रभु नित्यानन्द के सम्बन्ध में किसी प्रकार की अवज्ञा मेरे मन में नहीं दिखायी देगी। मेरे दिल की यह सत्य बात तुम से कही।

एतेक शुनिला यवे श्रीवासेर मुखे।
हुंकार करिया प्रभु उठे तार बुके॥
प्रभु बोले कि बलिला पण्डित श्रीवास।
नित्यानन्द प्रति तोमा एतेक विश्वास?
मोर गोप्य नित्यानन्द जानिले से तुमि।
तोमारे सन्तुष्ट हय्या वर दिये आमि॥
यदि लक्ष्मी भिक्षा करे नगरे नगरे।
तथापि दारिद्र तोर न हिबेक घरे॥
बिड़ाल-कुक्कुर-आदि तोमार बाड़ीर।
सभार आमाते भक्ति हइबेक स्थिर॥
नित्यानन्द समर्पिल आमि तोमा स्थाने।
सर्वमते सम्बरण करिबा आपने॥ **(चैः भाः)**

इस तरह श्रीनित्यानन्द श्रीवास के घर पर रहने लगे। स्वच्छन्दता के साथ वह सारा नवद्वीप भ्रमण करते हैं, कभी बीच गंगा की धारा में अत्यन्त हर्ष के साथ तैरते रहते हैं, कभी बालकों के साथ बाल्य क्रीड़ा करते हैं। कभी गंगादास, कभी मुरारी के घर तो कभी प्रभु के घर जाते हैं। शची माता उन्हें विश्वम्भर की भाँति ही स्नेह करती हैं। फिर नित्यानन्द के प्रति माता गौरव बुद्धि भी पोषण करती हैं, बाल्यभाव से नित्यानन्द माँ का चरण स्पर्श करना चाहने पर माता भाग जाती हैं।

एक दिन रात को शची माता एक सुन्दर सपना देखकर सुबह श्रीविश्वम्भर से सपने के बारे में कहने लगीं। 'हे विश्वम्भर! आज रात के अन्त में सपने में देखा, तुम और नित्यानन्द पाँच वर्ष के बालक बनकर दोनों मारामारी का खेल-खेल रहे हो। तुम दोनों ठाकुर जी के मन्दिर में घुसकर रामकृष्ण को लेकर बाहर निकले, नित्यानन्द के हाथ में कृष्ण तथा तुम्हारे हाथ में बलदेव था, अन्त में चारों लोगों ने ही मारपीट प्रारम्भ कर दिया। रामकृष्ण क्रोधित होकर तुम लोगों से बोले- 'यह घर, मकान सब हमारा है, यहाँ मिठाई (सन्देश) दही, दूध, उपहार सभी हमारा है, तुम दोनों कौन हो? तुम लोग यहाँ क्यों हो? यहाँ से जल्दी बाहर निकल जाओ!' नित्यानन्द ने उनसे कहा, 'जब दही, मक्खन लूटकर खाया था, वह समय चला गया है। अब और ग्वाले का कोई अधिकार नहीं है, अब ब्राह्मण का अधिकार आ गया है! यह समझकर सब उपहार छोड़ दो। प्यार से नहीं छोड़ोगे तो मार खाओगे। और लूटकर अगर खाओगे तो बचायेगा कौन?' रामकृष्ण बोले, 'और हमारी कोई गलती नहीं है, तुम दोनों को यहाँ बाँधकर रखेंगे।' राम नित्यानन्द के प्रति तर्जन गर्जन करते हुये बोले, अगर ऐसा नहीं किया तो कृष्ण की सौगन्ध है।' नित्यानन्द बोले, 'तुम्हारे कृष्ण से नहीं डरता, गौरचन्द्र विश्वम्भर मेरा ईश्वर है।' इस प्रकार से चारों लोग झगड़ा करते हुये छीना झपटी करके सब उपहार भोजन करने लगे! चारों लोग आपस में कोई किसी के हाथ से तो कोई किसी के मुँह से छीनकर खाने लगे, कोई किसी के मुँह में मुँह देकर खाने लगा! नित्यानन्द ने मुझे बुलाकर कहा- 'माँ! बड़ी भूख लगी है, भोजन दो।' इसके बाद मेरी नींद टूट गयी। इस सपने के बारे में कुछ समझ न पाने पर तुम्हें बताया।

हासे प्रभु विश्वम्भर शुनिया स्वपन।
जननीर प्रति बोले मधुर वचन॥
बड़इ सुस्वप्न तुमि देखियाछ माता।
आर कारो ठाञि पाछे कह एइ कथा॥
तोमार घरेर मूर्त्ति परतेक बड़।
मोर चित्त तोमार स्वप्नेहे हैल दढ़॥
मुञि देखों बारे बारे नैवेद्येर साजे।
आधा आधि ना थाके ना कहि कारे लाजे॥
तोमार वधूरे मोर सन्देह आछिल।
आज से आमार मने सन्देह घुचिल॥
हासे लक्ष्मी जगन्माता - स्वामीर वचने।
अन्तरे थाकिया सब स्वप्न कथा शुने॥
विश्वम्भर बोले माता शुनह वचन।
नित्यानन्द आनि झाट कराह भोजन॥ (चैः भाः)

प्रभु बोले, 'माते! श्रीनित्यानन्द ने जब भूख लगने पर सपने में तुमसे भोजन माँगा है, तब आज ही निताइ को भोजन कराओ।' माता के भोजन पकाने जाने पर महाप्रभु नित्यानन्द को निमन्त्रण देने उनके पास गये।

आमार बाड़ीते आजि गोंसाञिर भिक्षा।
चञ्चलता ना करिब - कराइल शिक्षा॥
कर्णधरि नित्यानन्द 'विष्णु विष्णु बोले।
चञ्चलता करे यत पागल सकले॥
ए बुझियो मोरे तुमि बासह चञ्चल।
आपनार मत तुमि देखह सकल॥ (वही)

इस प्रकार दोनों परमानन्द से कृष्ण विषयक वार्त्ता करते हुये प्रभु के घर गये। पाद प्रक्षालन करके दोनों भोजन के लिये बैठे बिल्कुल मानो कौशल्या के घर में श्रीराम-लक्ष्मण भोजन करने बैठे हों। दोनों सुखपूर्वक भोजन कर रहे हैं, शची माता परोस रही हैं। माता ने एक बार चावल लेकर आकर अचानक एक अद्‌भुत दर्शन किया, रात का सपना उनके सम्मुख प्रत्यक्ष हो उठा! उन्होंने निमाइ-निताइ को कृष्ण वर्ण तथा शुक्ल वर्ण के पाँच वर्ष के शिशु के रूप में दर्शन किया। दोनों ही चतुर्भुज तथा दिगम्बर थे। शंख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीहल, मूसल हाथ में सुशोभित थे। श्रीवत्स, कौस्तुभ, मकर कुण्डल आदि अलंकारों से भूषित थे, अपनी बहू को अपने पुत्र के हृदय में

माता ने देखा। इस अद्‌भुत दर्शन से माता मूर्च्छित हो गयीं। सारे घर में चावल छिटक गया। शीघ्र महापभु ने माता की सेवा करके चेतना वापस लौटायी। माता अनोखा अनुभव प्राप्त करके प्रेमाविष्ट हो गयीं।

शची देवी की भाँति श्रीवास की पत्नी मालिनी देवी ने भी श्रीनिताइचाँद की भगवत्ता का अनुभव प्राप्त किया था। नित्यानन्द के बच्चे की भाँति उनकी गोद में दोनों स्तनों का पान करने पर भी तथा उनके अपने हाथ से नित्यानन्द को भोजन कराने पर भी नित्यानन्द तत्त्व मालिनी देवी को सुविदित था। कटोरी चोर कौआ तथा निताइचाँद-

एक दिन एक कौआ मालिनी देवी की एक पीतल की कटोरी लेकर उड़ गया। उस कटोरी में श्रीविग्रह को घी का भोग लगाया जाता था। मालिनी देवी इस बारे में अत्यन्त चिन्तित हो गयीं। ठाकुर जी की सेवा का सामान चोरी हो गया, सेवानिष्ठ श्रीवास पण्डित उनका तीव्र तिरस्कार करेंगे, इस भय से देवी अत्यधिक डरकर रोने लगीं। श्रीचैतन्यभागवत में वर्णित है—

एक दिन पितलेर बाटी निल काके।
उड़िया बसिल काक ये डालेते थाके॥
अदृश्य हइल काक कोन राज्ये गेल।
महाचिन्ता मालिनीर चित्तेते जन्मिल॥
बाती थुइ सेइ काक आइल बार बार।
मालिनी देखये शून्य बदन ताहार॥
महातीव्र ठाकुर पण्डित - व्यवहार।
श्रीकृष्णेर घृत पात्र हइल अपहार॥
शुनिले प्रमाद हैब हेनमने गणि।
नाहिक उपाय किछु काँन्दये मालिनी॥

ऐसे समय नित्यानन्द ने आकर देखा मालिनी रो रही हैं। 'माँ! तुम क्यों रो रही हो? तुम्हें क्या हुआ है बताओ, मैं तुम्हारे सारे दु:ख दूर करुँगा।' मालिनी ने आँखों के आँसू पोंछकर कौये के कटोरी ले जाने की बात नित्यानन्द को बतायी।' ओह यह बात है! इसके लिये तुम रो रही हो? माँ तुम चुप हो जाओ, अभी कौआ तुम्हारी कटोरी लाकर देगा। कौआ कटोरी दूसरी जगह रखकर पुन: श्रीवास के घर आया था। सर्वज्ञ नित्यानन्द कटोरी चोर कौये को पहचान कर बोले, ओरे कौये! तुम अभी कटोरी लाकर दो।' क्षीरोदशायी नारायण जगत् के जीवों के अन्तर्यामी हैं, वह सभी जीवों के अन्दर परमात्मा

के रूप में विराजमान हैं। श्रीनित्यानन्द कारणार्णवशायी, गर्भोदकशायी, क्षीरोदकशायी, नारायण के मूल तत्त्व स्वरूप हैं, ये सभी श्रीनित्यानन्द की दूरतर, दूरतम कलायें हैं तथा कलाओं के भी कला हैं। श्रीनित्यानन्द सभी नारायणों के प्रतिष्ठा स्वरूप हैं। कौआ एक क्षुद्र जीव है। सम्पूर्ण जीवों की हृदय के प्रेरणा स्वरूप नित्यानन्द की आज्ञा का उल्लंघन कौआ किस प्रकार करेगा? निताइ की आज्ञा पाकर कौआ उड़कर अदृश्य हो गया तथा चोंच में कटोरी लेकर तभी वहाँ आया तथा मालिनी के पास कटोरी रख दिया। नित्यानन्द का प्रभाव देखकर मालिनी आनन्द से विह्वल होकर नित्यानन्द की स्तुति करने लगीं—

ये जन आनिल मृत गुरुर नन्दन।
ये जन पालन करे सकल भुवन॥
यमेर घरेते हैते ये आनिते पारे।
काक स्थाने बाटी आनेकि महत्त्व ताँरे॥
योंहार मस्तकोपरि अनन्त भुवन।
लीलाय ना जाने भव करये पालन॥
अनादि अविद्या ध्वंस हय याँर नामे।
कि महत्त्व ताँर - बाटी आने काक स्थाने॥
ये तुमि लक्ष्मण रूपे पूर्वे वनवासे।
निरवधि रक्षक आछिला सीता पाशे॥
तथापिह मात्र तुमि सीतार चरण।
इहाबइ, सीता नाहि देखिले केमन॥
तोमार से वाणे रावणेर वंश नाश।
से तुमि ये बाटी आन- केमन प्रकाश॥
याँहार चरणे पूर्वे कालिन्दी आसिया।
स्तवन करिला महा प्रभाव देखिया॥
चतुर्दश भुवन पालन शक्ति याँर।
काक स्थाने बाटी आने कि महत्त्व ताँर॥
तथापि तोमार कर्म अल्प नाहि हये।
येइ कर सेइ सत्य चारि वेदे कहे॥ (चैः भाः)

मालिनी देवी का स्तव सुनकर नित्यानन्द बाल्य भाव में उदार हँसी हँसकर बोले,– 'माता! मुझे बड़ी भूख लगी है, भोजन करुँगा। तब नित्यानन्द

को देखकर वात्सल्य से मालिनी की स्तन्य धारा बहने लगी। निताइचाँद ने बाल्यभाव से उनका स्तन पान किया। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने लिखा है—

एइमत अचिन्त्य नित्यान्देर चरित।
आमिकि बलिव - सर्वशास्त्रेते विदित॥
करये दुर्विज्ञ कर्म अलौकिक येन।
ये जानये तत्त्व से वासये सत्य हेन॥
अहर्निश भावावेशे परम उद्दाम।
सर्व-नदीयाय बुले महा ज्योतिर्धामि॥ **(चैः भाः)**

एक दिन श्रीनिताइचाँद श्रीगौरांग के भवन में आये। तब श्रीगौरसुन्दर श्रीविष्णुप्रिया देवी की सेवा के आनन्द में मग्न थे, पुत्र को लक्ष्मी के साथ देखने पर माता अत्यधिक आनन्दित होती हैं, इसीलिये श्रीगौरसुन्दर माता को आनन्द देने के लिये कभी-कभी लक्ष्मी देवी की सेवा ग्रहण करते हैं। उस दिन वह श्रीमती की ताम्बूल सेवा ग्रहण कर रहे थे, अचानक देखा, बाल्यभाव में नित्यानन्द दिगम्बर होकर आँगन में उपस्थित हुये हैं। उनका मुख हास्य युक्त है, अगले ही पल अट्टहास्य मानो आनन्द का सागर उच्छलित हो गया हो- उस आनन्द की तरंगों में लोक लज्जा, व्यावहारिक ज्ञान सब बह गया हो! श्रीगौरांग सुन्दर शीघ्र आँगन में आकर बोले, यह क्या? एकदम ही दिगम्बर मूर्त्ति!' प्रेमोन्मत्त निताइ इसका कोई उत्तर न देकर केवल होता है, होता है, कहने लगे। इस समय श्रीगौरांग तथा श्रीनित्यानन्द के बीच जिस प्रकार का कथोपकथन हुआ था, वह असंलग्न बातों का तथा उन्मत्ततता का चरम निदर्शन है। श्रीचैतन्यभागवत में दिखायी पड़ता है—

निताइचाँद की प्रेमोन्मत्तता—

प्रभु बोले नित्यानन्द! परह वसन।
नित्यानन्द बोले आजि आमार गमन॥
प्रभु बोले नित्यानन्द! इहा केने करि?
नित्यानन्द बोले आर खाइते ना पारि॥
प्रभु कहे एक एड़ि कह केने आर?
नित्यानन्द बोले आमि गेनु दश बार॥
क्रुद्ध हइ बोले प्रभु मोर दोष नाइ।
नित्यानन्द बोले प्रभु! एथा नाइ आइ॥

प्रभु कहे कृपा करि परह वसन।
नित्यानन्द बोले आमि करिब भोजन॥
चैतन्येर भावे मत्त नित्यानन्द राय।
एक शुने आर एक हासिया बेड़ाय॥

प्रभु ने स्वयं निताइ को वस्त्र पहनाया। बाह्य ज्ञान रहित निताइ केवल हँस रहे हैं। श्रीपाद नित्यानन्द का यह भाव अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। असम्बन्ध असंलग्न (वे सिर पैर की बातें) साधारणतया बाह्यज्ञान हीनता या उन्मत्तता का लक्षण है। अनन्त ज्ञान के आधार, महा कृष्ण प्रेमी श्रीपाद नित्यानन्द ने महाप्रभु की युक्तिपूर्ण बातों का इस प्रकार अटपटा उत्तर क्यों दिया? इस प्रश्न के उत्तर में केवल यह कहा जा सकता है, कि प्रेमोन्मत्त श्रीपाद नित्यानन्द का व्यावहारिक जगत् के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ की शिष्टता, सभ्यता, आचार-व्यवहार के वह बहुत ऊपर हैं। उनका सभी प्रकार का कुण्ठा रहित, सभी प्रकार के व्यवहार से वर्जित, यहाँ के नियम, आचरणादि उनके दुर्ज्ञेय भाव के प्रतिकूल है। वह कृष्ण के प्रेम में सदा विह्वल, उन्मत्त, मतवाले हैं। अधिकतर समय ही वह बाह्यज्ञान रहित-अथाह अतुल स्पर्श, अनन्त विस्तृत, सुविशाल सिन्धु की भाँति वह अपने भाव में स्वयं समुच्छ्वसित हैं! प्रभु की युक्तिपूर्ण बातों के उन असंलग्न उत्तर से यही अनुमान किया जा सकता है। वास्तविक रूप से यह वस्तु विश्व की नहीं है- यह अश्रुतपूर्व, अदृष्टपूर्व, अनन्त असीम भाव पूर्ण गोलोक-वृन्दावन की आराध्यात्म वस्तु है। इसके तत्त्व का निर्णय करना मानव ज्ञान के अतीत है। यह निरन्तर किसी अचिन्त्य आनन्द के सागर में प्रवाहमान हैं। इसीलिये श्रीगौरसुन्दर ने कहा है- "नित्यानन्द बिना किछु नाहिक तोमार।" नित्यानन्द को नित्यानन्द के द्वारा ही अनुभव करना होगा- दूसरा उपाय नहीं है।

जो भी हो, शची माता श्रीनित्यानन्द को अपना पुत्र विश्वरूप ही समझती थीं। बीच-बीच में वह निताइ को विश्वरूप की भाँति देखती थीं तथा उस प्रकार की बातें भी सुनती थीं। अपने आँगन में दिगम्बर निताइ को जब महाप्रभु ने वस्त्र पहनाया, तब शची माता ने उनके हाथ में पाँच मेवावाटी (सन्देश-बंगाली मिठाई) प्रदान किया। नित्यानन्द ने एक सन्देश खाकर फेंक क्यों दिया? निताइ बोले, एक बार में मुझे इतना सारा क्यों देती हो- मैं क्या इतना खा सकता हूँ? शचीमाता बोलीं, और तो घर में सन्देश नहीं है, अब और क्या खाओगे, मैं और कहाँ से लाऊँगी? निताइ बोले, घर में जाकर

देखो, तुम्हारा सन्देश घर के अन्दर ही है। शचीमाता ने घर में जाकर देखा, चार सन्देश घर में ही हैं। शचीमाता अत्यन्त ही विस्मित हो गयीं, निताइ ने जो फेंक दिया वह घर के अन्दर कैसे आया? उन सन्देशों को लेकर जब निताइ को देने गयीं, तब देखा निताइ उन्हीं लड्डुओं को ही खा रहे हैं। शचीमाता के विस्मय का अन्त नहीं रहा, वह निताइ बोले, जिन्हें फेंक दिया था, तुम्हारा दु:ख देखकर उन्हें ही पुन: लाकर खा रहा हूँ। शचीमाता को रहस्य समझने को और बाकी नहीं रहा। वह निताई से बोलीं—

आइ बोले नित्यानन्द! केने मोर भाँड़।
जानिल ईश्वर तुमि, मोरे माया छाड़॥ **(चै: भा:)**

निताइ माता की बातों से लज्जित हो गये। बोले, तुम मेरी माँ हो, मैं तुम्हारी सन्तान हूँ। तुम मुझे ईश्वर कह रही हो? यह कैसी बात है। यह कहते हुये चरण स्पर्श करने जाने पर शचीमाता पलायन कर गयीं।

एइमत नित्यानन्द चरित्र अगाध।
सुकृतिर भाल, दुष्कृतिर कार्य-बाध॥ **(वही)**

श्रीनित्यानन्द की कौपीन तथा पादोदक का प्रभाव-

इस नित्यानन्द महिमा के वर्णन में हम जिन श्रीमन्महाप्रभु के नित्यानन्द स्तव की व्याख्या, आलोचना कर रहे हैं, इस स्तुति के पश्चात् ही महाप्रभु श्रीनित्यानन्द की एक कौपीन को लेकर उसके टुकड़े-टुकड़े करते हुये अनेक हिस्सों में फाड़कर सभी पार्षदों को एक-एक टुकड़ा देकर बोले—

प्रभु बोले ए वस्त्र बान्धह सभे शिरे।
अन्येर कि दाय इहा वाञ्छे योगेश्वरे॥
नित्यानन्द-प्रसादे से हय विष्णु भक्ति।
जानिह कृष्णेर नित्यानन्द पूर्ण शक्ति॥
कृष्णेर द्वितीय नित्यानन्द बइ नाइ।
संगी सखा शयन भूषण बन्धु भाइ॥
वेदेर अगम्य - नित्यानन्देर चरित्र।
सर्व-जीव-जनक-रक्षक सर्व-मित्र॥
इहार व्यभार कर्म कृष्ण रसमय।
इहाने सेबिले कृष्ण प्रेमभक्ति हय॥
भक्ति करि इहान कौपीन बान्ध शिरे।
महा-यत्ने इहा पूजा कर गिया घरे॥ **(चै: भा:)**

महाप्रभु ने श्रीमन्नित्यानन्द की कौपीन का काटा हुआ एक–एक टुकड़ा भक्तगणों को देकर महाभक्ति के साथ उसे सिर पर बाँधने के लिये कहा।

प्रभु का आदेश पाकर भक्तवृन्द श्रीनिताइचाँद की कौपीन का टुकड़ा शिरोभूषण के रूप में अपने–अपने सिर पर धारण करने लगे। निताइ के कौपीन का फटा हुआ टुकड़ा योगेश्वरगणों के लिये भी वाञ्छनीय है, क्योंकि उनके श्रीअंग से स्पर्शित वस्त्र खण्ड में उनकी शक्ति समाहित है।

प्रेमानन्दघन विग्रह निताइ के जीर्ण कौपीन के टुकड़े में उनकी प्रेम शक्ति विराजित रहकर जन साधारण को कृष्णप्रेम में प्रमत्त कर सकने के कारण महाप्रभु ने इसे योगेश्वरगणों के लिये भी वाञ्छनीय कहा है।

श्रीनित्यानन्द के अन्दर श्रीकृष्ण की पूर्ण शक्ति विराज कर रही है। अत: नित्यानन्द की कृपा से कृष्णभक्ति प्राप्त होती है। श्रीनित्यानन्द को प्रसन्न करना तथा उनकी प्रसन्नता के द्वारा अनुग्रह प्राप्त करना कृष्ण भक्ति प्राप्ति का अमोघ उपाय है।

श्रीनित्यानन्द कृष्ण का द्वितीय स्वरूप हैं, वह त्रेता में लक्ष्मण के रूप में, द्वापर में बलदेव के रूप में, इस कलियुग में नित्यानन्द के रूप में श्रीभगवान् के संगी हैं। वह सखा, शयन, भूषण, भाइ, बन्धु के रूप में युग–युग में श्रीकृष्ण की विभिन्न प्रकार से सेवा किया करते हैं। श्रीनित्यानन्द का यह सब चरित्र वेद के लिये भी अगम्य है। अत: मानव ज्ञान के सर्वथा बाहर की वस्तु है, इसमें क्या सन्देह है!

श्रीमन्महाप्रभु बोले, श्रीनित्यानन्द सभी जीवों के जनक, रक्षक तथा मित्र है। वह कारणार्णवशायी, गर्भोदकशायी तथा क्षीरोदकशायी पुरुषत्रय के मूलावतारी हैं। अत: वह विश्व के सृष्टा, रक्षक तथा पालन कर्त्ता हैं। वह सभी जीवों के अन्तर्यामी हैं। विश्व की सृष्टि के पालन के मूल कारण ही वह हैं। इसके पश्चात् हम श्रीमन्महाप्रभु के स्तव के "तोमारे बुझिते शक्ति मनुष्येर कोथा" इस अंश की व्याख्या में इस विषय की विशद रूप से आलोचना करेंगे।

श्रीमन्नित्यानन्द का आचार व्यवहार सब कृष्ण प्रेम रसमय है, अत: साधारण की दृष्टि में उनका आचरण उन्मत्त की भाँति, अनाचारी की भाँति दिखायी पड़ने पर भी विद्वान् व्यक्ति के लिये वह प्रेमोन्माद है, अत: उनका आचरण, व्यवहार अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। श्रीमन्महाप्रभु बोले– इनके सेवन से जीव अवश्य श्रीकृष्ण में प्रेम भक्ति प्राप्त करता है। अत: भक्तवृन्दो! आपलोग

महाभक्ति के साथ इनके कौपीन का फटा हुआ टुकड़ा अपने सिर पर बाँध लें। महायत्नपूर्वक इसका प्रतिदिन पूजन करें। अवश्य कृष्ण प्रेम की प्राप्ति होगी। "न हि वस्तुशक्तिस्तर्कमपेक्षते" अर्थात् वस्तु की शक्ति विचार की परवाह नहीं करती। उस प्रकार की महाशक्तिशाली द्रव्य शक्ति का प्रभाव देह, मन, बुद्धि, प्राण तथा आत्मा में अत्यन्त प्रबल क्रिया प्रदर्शित करती है। इसलिये भजनानन्दी साधु महद्‌गणों के द्वारा उपयोग की गयी वस्तुयें मानव आत्मा के लिये विशेष कल्याणकारी होती है। भक्तवृन्दों ने महाप्रभु की आज्ञानुसार कार्य किया।

श्रीनित्यानन्द की कौपीन की महिमा के प्रकाश के पश्चात् एक और नया अध्याय प्रारम्भ हुआ, वह था श्रीमन्महाप्रभु का भक्तगणों के प्रति श्रीनित्यानन्द के पादोदक पान का आदेश। वह एक विचित्र, विपुल तथा विशाल विस्मयकारी विषय था!

प्रभु बोले शुनह सकल भक्तगण।
नित्यानन्द - पादोदक करह ग्रहण॥
करिले इँहार पादोदक रस-पान।
कृष्ण दृढ़ भक्ति हय इथे नाहि आन॥
आज्ञा पाइ सभे नित्यानन्देर चरण।
पाखालिया पादोदक करये ग्रहण॥
पाँच बार दश बार एको जने खाय।
बाह्य नाहि नित्यानन्द हासये सदाय॥
आपने बसिया प्रभु गौर राय।
नित्यानन्द पादोदक कौतुके लुटाय॥
सभे नित्यानन्द - पादोदक करि पान।
मत्त प्राय 'हरि' बलि करये आह्वान॥
केहो बोले आजि धन्य हइल जीवन।
केहो बोले आजि सब खण्डिल बन्धन॥
केहो बोले आजि हइलाम कृष्ण दास।
केहो बोले आजि धन्य दिवस प्रकाश॥
केहो बोले पादोदक बड़ स्वादु लागे।
एखने ओ मुखेर मिष्टता नाहि भागे॥
कि से नित्यानन्द-पादोदकेर प्रभाव।
पान मात्र सभे हैला चञ्चल-स्वभाव॥

केहो नाचे केहो गाय केहो गणि जाय।
हुंकार गर्जन केहो करये सदाय॥
उठिल परमानन्द कृष्ण संकीर्तन।
विह्वल हइया नृत्य करे भक्तगण॥

प्रभु बोले, 'भक्तवृन्दो! कृष्णभक्ति प्राप्ति की प्रकृष्ट साधना या श्रेष्ठ उपाय है, श्रीमन्नित्यानन्द के पादोदक का पान करना' प्रभु का आदेश पाते ही भक्तगण परमभक्ति युक्त होकर नित्यानन्द के पाद पद्मों का प्रक्षालन करके पुनः-पुनः उसका पान करने लगे। इस पादोदक पान के प्रभाव से तुरन्त सभी महामत्तताकारी मदिरापान की भाँति अत्यधिक प्रमत्त हो गये। महा संकीर्तन की ध्वनि से स्थान गुंजायमान हो उठा! कोई बोला, आज मेरा जीवन धन्य हो गया, कोई बोला, आज मेरे सारे बन्धन छूट गये, कोई बोला, आज सच में कृष्ण का दास हो गया, कोई बोला, आज किस शुभ घड़ी में सुप्रभात हुआ था! कोई बोला, यह तो पादोदक नहीं है, यह तो अद्भुत सुधारस है, मुँह की मिठास अभी तक स्थायी बनी हुई है!!

श्रीमन्नित्यानन्द के पादोदक का कैसा अद्भुत प्रभाव है! भक्तगणों के बीच कृष्णप्रेम का एक बड़ा बवंडर विद्युत वेग से प्रवाहित हो गया! प्रशान्त नीले आकाश में तड़ित के वेग से अचानक जो विद्युतीय अद्भुत शक्तिशाली बवंडर पैदा होता है, पाश्चात्य भाषा में जिसे टारनेडो (ज्नतदंकव) कहते हैं। अचानक इस विद्युतीय बवंडर से पलभर के अन्दर प्रकृति के वक्ष पर एक विशाल प्रलयकारी अवस्था उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार एक बूँद पादोदक पान से आन्तरिक जगत् में ईश्वरीय महाप्रेम के महाप्रभाव के फलस्वरूप प्रमत्त नाम संकीर्तन विशाल उछल कूद तथा भूकम्प की भाँति हुंकार गर्जन के साथ ताण्डव नृत्य!! यह आन्तरिक जगत् में विद्युतीय शक्ति की भाँति महा-महिमायुक्त प्रभाव का ही परिचायक है।

इसके पश्चात् श्रीगौरसुन्दर उस नृत्य-कीर्तन में शामिल हो गये। निताइचाँद ने भी अनोखा नृत्य प्रारम्भ किया। दोनों प्रभुओं को घेरकर भक्तगणों ने महाप्रमत्त होकर नृत्य प्रारम्भ किया। वह अद्भुत उन्माद पूर्ण नृत्य श्रीचैतन्यभागवत में इस प्रकार से वर्णित हुआ है।

क्षणेके श्रीगौरचन्द्र करिया हुंकार।
उठिया लागिला नृत्य करिते अपार॥

नित्यानन्द स्वरूप उठिला ततक्षण।
नृत्य करे दुइ प्रभु बेढ़ि भक्तगण॥
कार गाये केबा पड़े केबा कारे धरे।
केबा कार चरणेर धूलि लय शिरे॥
केबा कार गला धरि करये क्रन्दन।
केबा कोन रूप करे ना जाय वर्णन॥
प्रभु करियाओ कारो किछु भय नाञि।
प्रभु-भृत्य सकले नाचये एक ठाञि॥
नित्यानन्द चैतन्ये करिया कोला कुलि।
आनन्दे नाचेन दुइ महा कुतूहली॥
पृथिवी कम्पिता नित्यानन्द - पद ताले।
देखिया आनन्दे सर्वगण 'हरि' बोले॥
प्रेम रसे मत्त हइ वैकुण्ठ ईश्वर।
नाचेन लइया सब प्रेम अनुचर॥

इस प्रकार से सारा दिन महा उन्मादना पूर्ण नृत्य चला। सायंकाल सभी के साथ श्रीगौरहरि बैठे! नित्यानन्दमहिमा सिन्धु- तब भी प्रभु के हृदय में उच्छ्वसित हो रहे थे। हाथ से तीन बार ताली बजाकर सभी की दृष्टि अपनी तरफ आकर्षित की तथा प्रभु अत्यन्त निष्कपटता के साथ अन्तरंग भक्तों से निताइ की महिमा कहने लगे—

प्रभु बोले एइ नित्यानन्द स्वरूपेरे।
ये करये भक्ति श्रद्धा से करे आमारे॥
इहान चरण ब्रह्मा शिवेरो वन्दित।
अतएव इहाने करिह सभे प्रीत॥
तिलार्द्धेको इहाने याहार द्वेष रहे।
भक्त हइलेओ से आमार प्रिय नहे॥
इहान बातास लागिषेक यार गाय।
ताहारे ओ कृष्ण ना छाड़िव सर्वथाय॥
शुनिया प्रभुर वाक्य सर्वभक्तगण।
महा जय जय ध्वनि करिला तखन॥ **(चैः भाः)**

श्रीनित्यानन्द के नवद्वीप आगमन पर महाप्रभु ने उनकी महाशक्ति को पहचान लिया तथा भक्तगणों को भी पहचान करा दिया।

श्रीचैतन्यभागवत में इसके बाद ही श्रीजगाइ-मधाइ उद्धार लीला वर्णित हुई है। श्रीश्रीनित्यानन्द की लीला में जगाइ-मधाइ का उद्धार कार्य एक प्रधान घटना है। इसकी प्रधानता का कारण है, श्रीनिताइचाँद की असाधारण कारुण्य शक्ति का प्रकाश! पतितों के उद्धार के कार्य में उनकी अलौकिक कारुण्य शक्ति कितनी व्यापकरूप से क्रियाशील होकर नित्य या शाश्वत प्रेमानन्द दान से अधम (नीच) तक को धन्य किया है- यह महापातकी उद्धार लीला ही उसका उज्ज्वल साक्ष्य प्रदान करती है। एक दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीपाद नित्यानन्द तथा हरिदास को बुलाकर बोले—

श्रीजगाइ-मधाइ उद्धार—

शुन शुन नित्यानन्द! शुन हरिदास।
सर्वत्र आमार आज्ञा करह प्रकाश॥
प्रति धरे धरे गिया कर एइ भिक्षा।
कृष्ण भज, कृष्ण बोल, कर कृष्ण शिक्षा॥
इहा बइ आर ना बलिबा बोलाइवा।
दिन-अवसाने आसि आमारे कहिबा॥
तोमरा करिले भिक्षा येइ ना बलिब।
तबे आमि चक्रहस्ते सभारे काटिब॥ (चै: भा:)

श्रीमन्महाप्रभु का यह आदेश मानो महाराजाधिराज की आज्ञा की तरह था। इस आज्ञा को सुनकर वैष्णववृन्द महा आनन्द से हँसने लगे। महाप्रभु नाम कीर्तन की विजय डंका से चारों दिशायें निनादित कर देंगे यह समझ कर भक्तवृन्द आनन्दोल्लास में मग्न हो गये। इतने सब पार्षदों के रहते प्रभु ने श्रीनिताइचाँद तथा हरिदास को ही यह आज्ञा क्यों प्रदान की? श्रीहरिदास नामाचार्य हैं, नाम-साधना में महासिद्ध पुरुष हैं; उनको देखते ही द्रष्टा के मुँह से कृष्ण नाम निकलेगा तथा साक्षात् प्रेमानन्द के स्वरूप निताइचाँद उसी क्षण उन्हें नित्य प्रेमदान से धन्य करेंगे। आज्ञा वाहक श्रीनित्यानन्द तथा हरिदास उसी क्षण नाम प्रचार के उद्देश्य से राज पथ पर निकल गये।

आज्ञा पाइ दुइ-जने बुले घरे घरे।
बोल कृष्ण, गाओ कृष्ण, भजह कृष्णेरे॥
कृष्ण प्राण, कृष्ण धन, कृष्ण से जीवन।
हेन कृष्ण बोल भाइ! हइ एक मन॥

एइ मत नदीया - प्रति घरे घरे।
बलिया बेड़ान दुइ जगत - ईश्वरे॥
दोंहार संन्यासी-वेश यान घरे घरे।
आथे व्यथे आसि भिक्षा निमन्त्रण करे॥
नित्यानन्दहरिदास बोले एइ भिक्षा।
कृष्ण बोल, कृष्ण भज, कर कृष्ण शिक्षा॥
एइ बोल बलि दुइ जन चलि जाय।
ये हय सुजन सेइ बड़ सुख पाय॥
अपरूप शुनि लोक दुइजन मुखे।
नाना-जने नाना-कथा कहे नाना-सुखे॥ (चैः भाः)

जब श्रीनित्यानन्द हरिदास कृष्णनाम प्रचार के लिये बाहर निकलकर कृष्णभजन तथा कृष्ण विषयक शिक्षा के द्वारा जन-साधारण को प्रबुद्ध कर रहे थे, तब सज्जन मात्र ही ने उससे परम आनन्द प्राप्त करके उनका उपदेश ग्रहण किया था। दुष्टजनों ने इससे विपरीत समझकर विभिनन प्रकार की बातें कही थी, कोई बोला, तुम लोग मन्त्रदोष से क्षिप्त होकर हमलोगों को भी पागल करने क्यों आ रहे हो? चैतन्य के नृत्य के समय दरवाजे पर नहीं मिले उनके घर जाने पर वे 'मारो-मारो' कहकर तिरस्कार करते हुये बोले—

भव्य भव्य लोक सब हइल पागल।
निमाञि पण्डित नष्ट करिल सकल॥ (चैः भाः)

सरस्वती देवी ने इनके मुख से भी स्तव किया है। जो भव्य सभ्य या सज्जन व्यक्ति थे, वे निमाइ पण्डित की कृपा से नाम प्रेम में पागल हो गये, तथा जो असज्जन, अनित्य माया के खेल में रमे हुये थे, उनका भी माया का खेल निमाइ ने नष्ट करके उनको प्रेमधर्म के पथ का अवलम्बन कराया था। सरस्वती के मुख से यह व्याख्या ही संगत है। जो भी हो दुर्जनों ने विभिन्न प्रकार से निन्दा अपवाद किया था, किसी ने राज दण्ड का भय दिखाया था। प्रतिदिन प्रचार के कार्य में जो सब घटनायें घटती थी। श्रीनित्यानन्द हरिदास सायंकाल महाप्रभु के पास सभी वर्णन करते थे।

एक दिन रास्ते में एक भीषण घटना घटित हो गयी। नित्यानन्द हरिदास जब हरिनाम का प्रचार करते हुये राजपथ को आनन्दमय करते हुये जा रहे थे तब उन्होंने दो अत्यन्त अद्‌भुत व्यक्तियों को देखा- उनका आकार अत्यन्त भीषण था, महाडकैत तथा घोर शराबी थे। विश्व में ऐसा कोई बुरा कार्य नहीं

था जो उन्होंने नहीं किया हो। दूर से नित्यानन्द हरिदास ने उन्हें देखकर लोगों से उनका परिचय पूछने पर वे बोले—

लोक बले गोंसाञि! ब्राह्मण दुइ जन।
दिव्य पिता माता महा कुले उतपन्न॥
सर्वकाल नदीयाय पुरुषे पुरुषे।
तिलार्द्धेको दोष नाहि ए - दोहार वंशे॥
एइ दुइ गुणवस्तु पासरिल धर्म।
जन्म हैते एइमत करये अपकर्म॥
छाड़िल गोष्ठीये बड़ दुर्जन देखिया।
मद्यपेर संगे बुले स्वतन्त्र हइया॥
ए-दुइ देखिया सब नदीया डराय।
पाछे कारो कोन दिन बसति पोड़ाय॥
हेन पाप नाहि याहा ना करे दुइ जन।
डाका चुरि मद्य मांस करये भक्षण॥ (चैः भाः)

श्रीपाद नित्यानन्द का हृदय निरन्तर करुणा की सुधा धारा से परिषिक्त है, वह महाकारुण्य का ही स्वरूप हैं। उन्होंने ज्यों ही जगाइ मधाइ की बुरी अवस्था की बात सुनी त्यों ही उनके हृदय में स्थित करुणासिन्धु समुच्छ्वसित हो उठा! वह अपने मन में कहने लगे, यदि जगत् के जीवों की इतनी ही दुर्गति है तब कारुण्यघन विग्रह श्रीभगवान् के अवतरण की क्या आवश्यकता है? वह पातकी उद्धार के लिये ही तो अवतीर्ण हुये हैं, उन्हें ऐसा पातकी और कहाँ मिलेगा? विशेष रूप से उनके आविर्भाव स्थल में यदि इस प्रकार का पातकी हो, वह अवतीर्ण होकर यदि छिपे ही रहे, महाकारुण्य का प्रकाश नहीं किया तब उनके अवतरण की आवश्यकता क्या थी? दयामय गौर हरि यदि इन दो महापातकियों का उद्धार करते हैं, तभी जगत् उनकी कृपा के प्रभाव का अनुभव कर पायेगा। जगाइ मधाइ की दुर्गति देखकर पतित पावन प्रभु निताइचाँद के कारुण्यकेन्द्र ने कम्पित होकर उनके दिल में उनके लिये किस प्रकार के संकल्प को जागरित किया, श्रीचैतन्यभागवत में उसका इस प्रकार से वर्णन है—

तबे हङ नित्यानन्द चैतन्येर दास।
ए दुयेरे कराङ यदि चैतन्य प्रकाश॥
एखने ये मदे मत्त आपना ना जाने।
एइमत हय यदि श्रीकृष्णेर नामे॥

'मोर प्रभु' बलि यदि कान्दे दुइ जन।
तबे से सार्थक मोर यत पर्यटन॥
ये ये जन ए- दुइर छाया पर शिया।
वस्त्रेर सहित गंगा स्नान कैल गिया॥
सेइ सब जन यबे ए-दोंहारे देखि।
गंगा स्नान हेन माने तबे मोरे लेखि॥

दूसरों का दु:ख देखकर चित्त की विगलित अवस्था का नाम ही करुणा है तथा उस दु:ख को दूर करने के लिये संकल्प ही है करुणा का कार्य। पातकी के सारे पाप-ताप आदि को दूर करके उनको कृतार्थ करने का संकल्प महाकारुण्य का परिचय है। पुन: महापातकी का महादु:ख दूर करके उन्हें पतित-पावन करने का संकल्प तथा उसके लिये आजन्म संचित अपनी समस्त सुकृतियों का दान करने के संकल्प में ही कारुण्य की पराकाष्ठा है! निताइचाँद कह रहे हैं, यदि करुणामय प्रभु श्रीगौरसुन्दर इन दोनों महापातकियों का उद्धार करते हैं, तब समझूँगा मेरी समस्त तीर्थयात्रा सफल हुई है। अर्थात् मैंने पृथ्वी के समस्त तीर्थों का पर्यटन करके यदि कोई पुण्य का संचय किया है- उस पुण्य पुंज के फल स्वरूप दयामय श्रीगौरसुन्दर इनका उद्धार करें। केवल उद्धार ही नहीं अन्यान्य पार्षदों की भाँति इन्हें भी पतित पावन कर दें!! महापातकी को महा कृतार्थ करने के लिये अपना पुंजीभूत पुण्यफल उसको अर्पण करना कितने बड़े महाकारुण्य का परिचय है, उसे विद्वान् जन समझ कर देखें। निताइचाँद जीव तत्त्व नहीं हैं, वह साक्षात् ब्रज के बलदेव हैं, पुण्य संचय के लिये उनका तीर्थ-पर्यटन नहीं है, तीर्थ को धन्य करने के लिये तथा जीवों के उद्धार के लिये ही उनका तीर्थ पर्यटन है, यह हमने पहले कहा है। वह स्वयं इच्छा करने पर ही जगाइ-मधाइ की भाँति सैकड़ों पातकियों का उद्धार कर सकते हैं, लेकिन उनके उक्त प्रकार के संकल्प से श्रीगौरसुन्दर की करुणा की महिमा को प्रकट करना तथा पातकियों के उद्धार के लिये अपना सब कुछ लुटा देना प्रदर्शित हुआ है। वह तो साक्षात् नित्यानन्द हैं, नित्यानन्द के बिना उनका और कुछ भी नहीं है, वह कभी किसी को भी निरानन्द में नहीं रख सकते हैं।

नित्यानन्द प्रभुर से महिमा अपार।
पतितेर त्राण लागि याँर अवतार॥
ए सब चिन्तिया मने हरिदास-प्रति।
बोले हरिदास! देख ताँहार दुर्गति॥
ब्राह्मण हइया हेन दुष्ट व्यवहार।
ए-दोंहार यम घरे नाहि प्रतिकार॥
प्राणान्ते मारिल तोमा ये यवन गणे।
ताहारओ करिला तुमि भाल मने मने॥
यदि तुमि शुभानुसन्धान कर मने।
तबे से उद्धार पाय एइ दुइ जने॥
तोमार संकल्प प्रभु ना करे अन्यथा।
आपने कहिला प्रभु एइ तत्त्व कथा॥ **(चैः भाः)**

श्रीहरिदास नित्यानन्द तत्त्व भलीभाँति जानते हैं, वह समझ गये दो दस्युओं का उद्धार हो गया। सामने बोले, ठाकुर! जो तुम्हारी इच्छा है वही प्रभु की इच्छा है। बीच में तुम मुझ जैसे क्षुद्र जीव की इतनी परीक्षा क्यों लेते हो?' हरिदास की बात से तुष्ट होकर प्रभु उसका आलिंगन करके बोले हरिदास! प्रभु के जिस आदेश का हम प्रचार कर रहे हैं, चलो उन शराबियों को उसे बतायें। सभी के लिये कृष्ण को भजने का आदेश है, पापी-तापी के निकट उनकी आज्ञा विशेषरूप से घोषित करनी होगी। प्रभु के आदेश की घोषणा करने की जिम्मेदारी हमारी है, उसके बाद कौन उस आदेश को मानेगा नहीं मानेगा उसकी जिम्मेदारी-प्रभु की है।' नित्यानन्द हरिदास को लेकर दस्युओं के निकट जाने लगे। सज्जन व्यक्ति निषेध करने लगे, 'ठाकुर! उनके पास मत जाना, उन्हें साधु संन्यासी का ज्ञान नहीं है। ब्रह्म वध, गौवध में उनको कोई संकोच नहीं है, उनके पास जाने पर अन्त में जान गँवाना पड़ेगा।' जिनका पातकी उद्धार ही प्राणों का संकल्प है, जीवन का भय उनके लिये अत्यन्त तुच्छ है। दोनों प्रभु निर्भीक रूप से उनकी तरफ बढ़ने लगे तथा सुन सकें ऐसे स्थान पर रुककर प्रभु के आदेश की घोषणा करने लगे—

बोल कृष्ण भज कृष्ण लह कृष्ण नाम।
कृष्ण माता कृष्ण पिता कृष्ण धन प्राण॥
तोमा सभा लागिया कृष्णेर अवतार।
हेन कृष्ण भज, सब छाड़ अनाचार॥ **(चैः भाः)**

अब कहाँ जायें! घोर शराबी जगाइ-मधाइ उनके मुँह से यह बात सुनते ही पकड़ो-पकड़ो' कहते हुये उनकी ओर तीव्रगति से दौड़ पड़े। उनका इरादा भाँपकर दोनों भागने लगे। सज्जन लोग डरकर बोले, "हमने पहले ही आप लोगों से निषेध किया था, उनके पास मत जाना वे शराबी है, पशु से भी अज्ञानी हैं, वे कृष्णनाम का क्या समझते हैं! अब देख लिया ना कैसी विपदा है! दौड़ते हुये चले जाओ, उनकी आँखों से ओझल न होने तक बच नहीं पाओगे।" दुष्ट व्यक्ति हँसते हुये बोले- 'भगवान् ने पाखण्डियों को उचित सजा दी है।' दो ठाकुर भाग रहे हैं, दो दस्यु तर्जन, गर्जन करते हुये उनके पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं। वे 'ये पकड़ा, ये पकड़ा करते हुये दोनों प्रभु तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। नित्यानन्द कह रहे हैं- 'हरिदास! अच्छा ही वैष्णव हुआ। आज यदि प्राण बचे तो लाखों पाये।' हरिदास बोले, 'ठाकुर! और मत बोलो, तुम्हारी बुद्धि से अपमृत्यु से जान गयी! शराबियों को जैसा कृष्ण उपदेश किया उसकी यह उचित सजा है।' यह कहकर हँसते-हँसते दोनों प्रभु भागे जा रहे हैं। जगाइ-मधाइ शराब के नशे में चूर थे, उसके ऊपर उनका स्थूल (भारी) शरीर, थोड़ी दूर दौड़ते ही वे थककर चूर हो गये। तर्जन-गर्जन करते-करते वे थककर बैठ गये नित्यानन्द तथा हरिदास ने उन्हें निरस्त होते देखकर दोनों ने एक दूसरे को आलिंगन करके चैन की साँस ली।

हरिदास हँसते हुये नित्यानन्द से बोले, 'ठाकुर! तुम्हारी जैसी चंचल बुद्धि है, शराबी को कृष्णनाम का उपदेश देने चले थे, आज अच्छी तरह से अक्कल ठिकाने लग जाती। उससे तुम्हें क्या नुकसान होता ठाकुर! तुम तो घोड़े की भाँति दौड़ सकते हो। तुम्हें तो कोई भय नहीं है, लेकिन मुझे लेकर इतनी खींच तान क्यों? शराबी का उद्धार करना है तो तुम करोगे, तुम में वह शक्ति है। भागना है तुम दौड़ सकते हो। मैं अपनी जलन में मर रहा हूँ, मेरा उद्धार कैसे होगा, इस चिन्ता में तुम्हारे चरणों के तले में पड़ा रहता हूँ। उद्धार के लिये मुझे लेकर इतनी खींच तान क्यों ठाकुर? मेरे द्वारा तो किसी फल की आशा नहीं है। लाभ में तुम तो दौड़ते हुये भाग जाओगे, मैं वृद्ध हूँ चलने में असमर्थ हूँ, मुझे अच्छी तरह धुनाई करके वे दस्यु छोड़ देंगे, और तुम तमाशा देखोगे- यही तो तुम्हारा लाभ है! ठाकुर तुम्हें सौगन्ध है! आज से मुझे और साथ मत लाना।' निताइ हँसकर बोले, हरिदास! तुम मुझे क्यों दोष देते हो? क्या मैंने तुम्हें आदेश किया है? जिनके आदेश से आये हो, उनके पास चलो

ना उनसे यह बात कहो ना।' इस प्रकार से बातचीत करते हुये दोनों महाप्रभु के निकट गये।

श्रीमन्महाप्रभु तारा मण्डल से घिरे हुये पूर्णचन्द्र की भाँति भक्तगणों से घिर कर कृष्ण कथा का वार्त्तालाप कर रहे थे, इस अवसर पर नित्यानन्द तथा हरिदास ने आकर जगाइ–मधाइ की उद्दण्डता की बात बतायी। महाप्रभु के भक्तगणों से उनका परिचय पूछने पर श्रीवास तथा गंगादास ने प्रभु को जगाइ–मधाइ का परिचय तथा उनकी दस्युवृत्ति, मद्यपानादि अनाचार की बात बतायी, उसे सुनकर प्रभु बोले—

प्रभु बोले जानों जानों सेइ दुइ बेटा।
खण्ड खण्ड करिमु आइले मो एथा॥
नित्यानन्द बोले खण्ड खण्ड कर तुमि।
से-दुइ थाकिते कति ना जाइब आमि॥
किसेर बा एत तुमि करह बड़ाइ।
आगे सेइ - दुइरे ये गोविन्द बोलाइ॥
स्वभावेइ धार्मिक बोलये कृष्णनाम।
एइ दुइ विकर्म बइ नाकि जाने आन॥
ए दुइ उद्धार यदि दिया भक्ति दान।
तबे जानि 'पातकी पावन' हेन नाम॥
आमारे तारिया यत तोमार महिमा।
ततोधिक स-दोंहार उद्धारेर सीमा॥
हासि बोले विश्वम्भर हइल उद्धार।
येइ क्षणे दरशन पाइल तोमार॥
विशेषे चित्तह तुमि एतेक मंगल।
अचिराते कृष्ण तार करिब कुशल॥
श्रीमुखेर वाक्य शुनि भागवत गण।
जय जय हरिध्वनि करिला तखन॥ (चैः भाः)

श्रीमन्महाप्रभु ने वैष्णवगणों की सभा में श्रीमुख से जो व्यक्त किया, उससे स्पष्ट रूप से ही समझ में आ गया कि, श्रीमन्नित्यानन्द की कृपा ही जगाइ–मधाइ के उद्धार का एकमात्र हेतु है। ब्रह्म दस्युद्वय के उद्धार के विषय में और किसी को किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहा। इधर श्रीहरिदास श्रीअद्वैताचार्य के निकट निताइचाँद की असीम साहसिकता की बातों का उल्लेख करके हास्य करने लगे।

चञ्चलेर संगे प्रभु आमारे पाठाय।
आमि थाकि कोथा, से वा कोन् दिगे जाय॥
वर्षाते जाह्नवी जले कुम्भीर बेड़ाय।
साँतार एड़िया तारे धरि बारे जाय॥
कूले थाकि डाक पाड़ि करि हाय हाय।
सकल गंगार माझे भासिया बेड़ाय॥
यदि बा कूलेते उठे छाओपाल देखिया।
मारिबार तरे शिशु धाम खेदाड़िया॥
तार पिता माता आइसे हाथ ठेंगा लैया।
ता' सभा' पाठाइ आमि चरणे धरिया॥
गोयालार घृत दधि लइया पलाय।
आमारे धरिया तारा मारिबारे चाय॥
सेइ से करये कर्म, ये युगत नहे।
कुमारी देखिया बोले 'मोरे विवाहिये॥
चढ़िया षाँड़ेर पिठे महेश बोलाय।
परेर गावीर दुग्ध ताहा दुहि खाय॥

(मध्य खण्ड त्रयोदश अध्याय)

ठाकुर! यह सब ठाकुर का कार्य है, मैं कुछ कहूँ तो तुम लोगों को गाली देता है। कहता है तेरा अद्वैत मेरा क्या कर सकता है? जिसे ठाकुर कहकर बुलाते हो वह चैतन्य आकर ही मेरा क्या करेगा? मैं आप लोगों से यह सब बातें नहीं बता सकता। ऐसे एक खेपा पागल के साथ प्रभु ने मुझे प्रचार कार्य में लगाया है! इतने दिन जो होना था वह तो हुआ है, लेकिन आज दैव भाग्य से मेरा प्राण बचे हैं। महा-नशेड़ी दो दस्यु रास्ते में पड़े हुये हैं, लोगों के मना करने पर भी उनके पास जाकर कृष्ण का उपदेश देना प्रारम्भ किया था। उनके अत्यन्त क्रोध से मारने के लिये पकड़ो-पकड़ो कहते हुये दौड़ते हुये आने पर, वह तो बिजली की गति से दौड़कर भाग गया, मैं वृद्ध हूँ, चल नहीं सकता, ठाकुर! आज केवल ही तुम्हारी दया से जिन्दगी बची है।

हासिया अद्वैत कहे कोन चित्त नहे।
मद्यपेर उचित- मद्यप संग हये॥
तिन-मातोयालेर संगे एकत्र उचित।
नैष्ठिक हइया केने तुमि तार भित?

नित्यानन्द करिब - सकल मातोयाल।
उहान चरित्र आमि जानि भाले भाल॥
एइ देख तुमि दिन-दुइ-तिन ब्याजे।
सेइ दुइ मद्यप आनिब गोष्ठी माझे॥
बलिते अद्वैत हइलेन क्रोधावेश।
दिगम्बर हइ बोले अशेष-विशेष॥
शुषिब सकल चैतन्येर कृष्ण भक्ति।
केमने नाचये गाय देखों ताँर शक्ति॥
देख कालि सेइ दुइ मद्यप आनिसा।
निमाञि निताइ दुइ नाचिब मिलिया॥
एकाकार करिबेक सेइ दुइ जने।
जाति लइ तुमि आमि पलाइ यतने॥
अद्वैतेर क्रोधावेशे हासे हरिदास।
'मद्यप उद्धार' चित्ते हइल प्रकाश॥ (चैः भाः)

जिस प्रकार श्रीहरिदास ठाकुर ने मजाक में तिरस्कार के बहाने श्रीनिताइचाँद का महामिलन कीर्तन किया, उसी प्रकार श्रीअद्वैताचार्य ने भी निन्दा तथा क्रोध के बहाने निताइचाँद की गुण गाथा का गान किया तथा उनके द्वारा अविलम्ब दो महादस्यु उद्धार को प्राप्त करके महाभागवत बन जायेंगे यह भी व्यक्त किया।

इधर उन दोनों महा ब्रह्मदैत्यों के उद्धार का समय करीब आ गया। जिस घाट पर महाप्रभु स्नान करते थे उन्होंने उस घाट पर-अड्डा जमाया तथा इधर-उधर दिन-रात हुंकार, गर्जन करते हुय धावा बोलने लगे।

वहाँ उनके भय से सभी का दिल आतंकित हो उठा। रात होने पर उनके डर से और कोई गंगा नहाने तक नहीं जाता था। अगर जाना जरूरी होने पर दस बीस लोग एक साथ मिलकर तब जाते थे।

प्रभुर बाड़ीर काछे रहे निशा भागे।
सर्वरात्रि प्रभुर कीर्तन शुनि जागे॥
मृदंग मन्दिरा बाजे कीर्तनेर संगे।
मद्येर विक्षेपे तारा शुनि नाचे रंगे॥
दूरे थाकि सब ध्वनि शुनिबारे पाय।
शुनिलेइ नाचिया अधिक मद्य खाय॥

× × × × ×

प्रभुरे देखिया बोले निमाञि पण्डित।
कराइल सम्पूर्ण मंगल चण्डीगीत॥
गायेन सब भाल मुञि देखि बारे चाङ।
सकल आनिया दिब यथा येइ पाङ॥
दुर्ज्जन देखिया प्रभु दूरे दूरे जाय।
आर आर पथ दिया सभेइ पालाय॥ (चैः भाः)

इस प्रकार की अवस्था में सज्जन लोग समझ गये थे कि, जगाइ-मधाइ का इतना अत्याचार, उद्दण्डता तथा उत्पात थोड़े समय में ही दूर हो जायेगा, नदीया के आकाश में जिस अद्‌भुत चन्द्र, सूर्य का उदय हुआ है, तथा असंख्य तारे इनके चारों तरफ विराज कर रहे हैं, ऐसी अवस्था में नदीया में और उद्दण्डता का अन्धकार किसी भी प्रकार से नहीं टिक सकता है। एक दिन जगाइ-मधाइ के उद्धार का संकल्प लेकर उन्होंने जिस पथ पर अड्‌डा जमाया था, शाम के बाद प्रभु निताइचाँद अकेले उस रास्ते के किनारे से होकर आ रहे थे तथा उनको सुनायी पड़े इस प्रकार से कृष्ण नाम कर रहे थे। जगाइ-मधाइ के कानों में श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के श्रीमुख से निकले हुई कृष्ण नाम की ध्वनि प्रवेश करते ही उनके अनन्त जन्मों की संचित महापाप का भण्डार हमेशा के लिये क्रोध के रूप में बाहर निकला!

के रे के रे बलि डाके जगाइ माधाइ।
नित्यानन्द बोलेन-प्रभुर बाड़ी जाइ॥
मद्येर विक्षेपे बोले - किबा नाम तोर?
नित्यानन्द बोले - अवधूत नाम मोर॥
अवधूत नाम शुनि माधाइ कुपिया।
मारिल, प्रभुर शिरे मुटुकी तुलिया॥
फुटिल मुटुकी शिरे रक्त पड़े धारे।
नित्यानन्द महाप्रभु 'गोविन्द' स्मरे॥ (चैः भाः)

मधाइ के जोर से फेंकी हुई मटकी के किनारे के आघात से निताइचाँद का सिर फूट गया। रक्त की धारा से चेहरा भीग गया, दयालु निताइ जिस उद्देश्य से उस रास्ते से आ रहे थे उनका वह उद्देश्य सिद्ध हुआ, उन्होंने अपने सिर की गरम रक्त की धारा से जगाइ-मधाइ के युगों-युगों से संचित महा-महा-पातक पुंज को पलभर में धो दिया। सिर का रक्त न देकर अन्य उपाय से भी निताइ उनका उद्धार कर सकते थे, लेकिन वह तो नित्यानन्द हैं, नित्यानन्द के बिना उनमें और कुछ भी नहीं है। वह विश्व के किसी को भी

निरानन्द नहीं रख सकते। यदि जीव के निरानन्द को दूर करके उन्हें नित्यानन्द दान करने के लिये उनके सिर के रक्त को देने की भी आवश्यकता हो तो वह उसे हँसीयुक्त मुख से देने के लिये तैयार हैं। दयालु निताइ की इस चेष्टा या आचरण से विश्व के मानव ने उनके निकट यही शिक्षा प्राप्त की। धन्य-धन्य है निताइचाँद की करुणा, धन्य हैं निताइ के युग के लोग! मधाइ के पाप का वेग समाप्त होने के समय वह और एक बार मटकी का नुकीला किनारा फेंक कर मारने के लिय उद्यत हुआ। जगाइ ने उसको रोका।

दया हैल जगाइर रक्त देखि माथे।
आर बार मारिते - घरिल दुइ हाते॥
केने हेन मारिले निर्दय तुमि दढ़।
देशान्तरी मारिया हइबा कोन् बड़?
एड़ एड़ अवधूत ना मारिह आर।
संन्यासी मारिया कोन् लाभ बा तोमार॥ **(वही)**

इधर निताइचाँद का मुख हास्ययुक्त है- नयन युगल प्रेमरस से लबालब हैं। मुख में अमृतमय मधुर भाषा है- उस भाषा की कैसी आकर्षिणी शक्ति है! वह प्रेम से स्निग्ध गले से बोले, 'भाइ मधाइ! तुमने मुझे मारा है, अच्छा किया है, लेकिन एक बार मुँह से कृष्ण नाम कहो! तुम्हारे मुँह से कृष्ण नाम सुनने पर मुझे कितना आनन्द होगा,- भाइ! तुम भी अत्यधिक आनन्द प्राप्त करोगे!' उसी समय यह बुरी खबर महाप्रभु के कानों में गयी। वह तुरन्त पार्षदों के साथ वहाँ दौड़े चले आये। उन्होंने निताइचाँद के रक्तरंजित मुखमण्डल को देखकर क्रोध से अधीर होकर सुदर्शन चक्र का आह्वान किया। आज्ञाकारी सुदर्शन ने तुरन्त आकर दर्शन दिया। जगाइ-मधाइ उस महातेज: पुंज प्रलयकारी कालाग्नि के समान सुदर्शन के दर्शन मात्र ही महा सन्त्रस्त होकर मूर्च्छितवत् हो गये।

प्रमाद गणिला सब भागवत गण।
आथे व्यथे नित्यानन्द करे निवेदन॥
माधाइ मारिते प्रभु! राखिल जगाइ।
दैबे से पड़िल रक्त, दुःख नाहि पाइ॥ **(वही)**

सुदर्शन के आविर्भाव पर परम करुण निताइचाँद ने प्रभु के निकट अत्यन्त आर्त्तभाव से निवेदन किया- 'प्रभो! इस महाप्रेम की लीला में तो किसी अस्त्र का प्रयोग नहीं है, यह तो महाकारुण्य की लीला है! सुदर्शन को

रोकिये, जगाइ-मधाइ की रक्षा कीजिये। विशेषरूप से मधाइ मुझे मारने को उद्यत होने पर जगाइ ने मेरी रक्षा की है। लेकिन जो खून आप देख रहे हैं, वह संयोगवश हुआ है, उसके लिये कोई जिम्मेदार नहीं है, तथा उससे मुझे बिल्कुल भी तकलीफ नहीं हुई है।

जगाइ राखिल हेन वचन शुनिया।
जगाइ रे बोले आलिंगन कैला सुखी हैया॥
जगाइ रे बोले कृष्ण कृपा करु तोरे।
नित्यानन्द राखिया किनिलि तुइ मोरे॥
ये अभीष्ट चित्ते देख ताहा तुमि माग।
आजि हैते हउतोर, प्रेम भक्ति लाभ॥
जगाइ रे वर शुनि वैष्णव मण्डल।
जय जय हरिध्वनि करिला सकल॥ (वही)

प्रभु ने जब जगाइ को वरदान किया, तुरन्त जगाइ प्रेम से मूर्च्छित हो गये, प्रभु ने उन्हें चेतन कराकर अपना चतुर्भुज रूप दिखाया तथा उनके वक्ष पर श्रीचरण अर्पण करके हमेशा के लिये धन्य किया। मधाइ नित्यानन्द को मारने के लिये उद्यत होने पर उसको निषेध करने का ही यह चरम पुरस्कार है। अत: यह दान निताइचाँद का ही है यह सुनिश्चित है।

जगाइ-मधाइ मानो एक ही जीव हैं केवल दो देह हैं। उनका एक स्थान पर जन्म, एक स्थान पर निवास, एक पाप, एक पुण्य - सभी कुछ एक हैं। अत: जगाइ की प्रेम प्राप्ति के साथ ही साथ मधाइ का चित्त निर्मल हो गया। मधाइ तुरन्त गल वस्त्र होकर (गले में कपड़ा डालकर) प्रभु के चरणों में पड़कर कुछ देर मूर्च्छित की भाँति पड़ा रहा, उसके बाद रोते-रोते बोला, 'प्रभो! मेरी गति निश्चित करो। आपके चरणों में क्षमा प्रार्थना करने का साहस या योग्यता मुझमें नहीं है। जिन करुणा-घन मूर्त्ति ने मेरे उद्धार के लिये उनकी पुंजीभूत सुकृति का दान किया, मैंने उन्हीं के सिर का खूब बहाया है। अनन्तकोटि जन्मों में भी मेरे इस महा अपराध का खण्डन नहीं होगा। प्रभो! मुझ पर कृपा करें।'

प्रभो बोले अपराध कैले तुमि बड़।
नित्यानन्द चरण धरिया तुमि पड़॥
पाइया प्रभुर आज्ञा माधाई तखन।
धरिल अमूल्य धन निताइ - चरण॥

ये चरण धरिले ना जाइ कभु नाश।
रेवती जानने सेइ चरण प्रकाश॥
विश्वम्भर बोले - शुन नित्यानन्द राय।
पड़िले चरणे कृपा करिते जुयाय॥ (वही)

प्रभु बोले, 'दयालु निताइ! मधाइ ने तुम्हारे शरीर से खूब बहाया है। तुम ही इसके सारे अपराधों को क्षमा कर सकते हो। जब अनुतप्त होकर तुम्हारे चरणों में शरण लिया है, तब तुम कृपा करके उसका परित्राण करो।' प्रभु की बात सुनकर कारुण्य घन मूर्त्ति निताइ बोले, 'वह क्या प्रभु, परित्राण करने की योग्यता क्या मुझमें है! आप सर्वेश्वर हैं, आपही वह कर सकते हैं। आप इसकी रक्षा करें। किसी जन्म की मेरी यदि कोई सुकृति हो तो मैंने वह सब मधाइ को दी। उसका कोई अपराध नहीं है, सब अपराध मेरा है। प्रभो! माया छोड़ो, मधाइ आपका है, उस पर कृपा करें।'

कोन जन्मे थाकि यदि आमार सुकृत।
सब दिलुँ माधाइरे शुनह निश्चित॥
मोर यत अपराध - किछु दाय नाइ।
माया छाड़ कृपा कर तोमार माधाइ॥ (वही)

महाप्रभु बोले, 'ठीक है, यदि इतनी ही कृपा की है तब एक बार मधाइ को तुम्हारे श्रीअंग को स्पर्श करने का अधिकार दो- तुम उसको आलिंगन करो।' प्रभु के यह बात कहते ही पतित पावन निताइचाँद ने मधाइ को वक्ष के साथ जकड़ कर पकड़ लिया। मधाइ कृत कृतार्थ हो गया!! केवल बाहर ही उसे स्पर्श का अधिकार दिया हो- ऐसा नहीं है, निताइ ने मधाइ के देह के अन्दर प्रविष्ट होकर उसके चित्त को नित्यानन्दमय कर दिया!! जगाइ-मधाइ श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द के चरणों का स्तव करने लगे। श्रीनित्यानन्द की करुणा से दो महा ब्रह्मदैत्य पल भर के अन्दर ही अचानक महाभागवत में परिणत हो गये!!

प्रभु बोले तोरा आर ना करिस पाप।
जगाइ-माधाइ बोले आर ना रे बाप॥
प्रभु बोले शुन शुन तुमि दुइ जन।
सत्य तोरे एइ आमि बलिल वचन॥
कोटि कोटि जन्मे यत आछे पाप तोर।
आर यदि ना करिस सब दाय मोर॥

तो सभार मुखे मुञि करिब आहार।
तोर देहे हइषेक मोर अवतार॥ (वही)

महाप्रभु के श्रीमुख की महाकारुण्यमय वाणी सुनकर जगाइ-मधाइ आनन्द से मूर्च्छित हो गये। मोह दूर हो गया। दोनों ब्राह्मण प्रेमानन्द के सागर में प्रवाहमान हो गये। प्रभु ने भक्तगणों को आज्ञा दी, इनको मेरे घर ले चलो। इनको लेकर ही आज मेरा कीर्तन विहार होगा।

ब्रह्मार दुर्लभ आजि ए दोंहारे दिब।
ए-दोंहारे जगतेर उत्तम करिब॥
ए-दुइ-परशे ये करिल गंगा स्नान।
ए-दुइरे बलिबेक गंगार समान॥
नित्यानन्द प्रतिज्ञा अन्यथा नाहि हय।
नित्यानन्द इच्छा मुञि जानिह निश्चय॥ (वही)

प्रभु के आदेश से भक्तगण आनन्द से मूर्च्छित जगाइ-मधाइ को पकड़कर प्रभु के घर ले गये। प्रभु के पार्षदगण प्रभु के साथ घर के अन्दर प्रविष्ट हुये। बाहरी लोग जिससे अन्दर नहीं घुस पायें' इसलिये दरवाजा बन्द हो गया। पार्षदों के साथ प्रभु गौर-निताइ जगाइ-मधाइ को लेकर महा आनन्द से बैठ गये। जगाइ-मधाइ का शरीर अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्त्विक विकारों से भूषित था। महाप्रभु की कृपा से जगाइ-मधाइ की जिह्वा में शुद्ध सरस्वती प्रादुर्भूत हो गयीं। उन्होंने श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द की महामहिमामय अपूर्व स्तुति की। श्रीचैतन्यभागवत के मध्य खण्ड में त्रयोदश अध्याय में उसका विस्तृत रूप से वर्णन है, विज्ञ जन उस स्थान पर उसका आस्वादन करें। अपूर्व स्तव करके जगाइ-मधाइ रोदन करने लगे।

यतेक वैष्णव सब अपूर्व देखिया।
जोड़ हाते स्तुति करे सभे दाण्डाइया॥
ये स्तुति करिल प्रभु! एइ दुइ मद्यपे।
तोर कृपा बिने इहा जाने कार बापे॥
तोमार अचिन्त्य शक्ति के बुझिते पारे।
यखन ये रूपे कृपा करह याहारे॥
प्रभु बोले ए-दुइ मद्यप नहे आर।
आजि हैते एइ दुइ सेवक आमार॥
सभे मिलि अनुग्रह करह दोंहारे।
जन्मे जन्मे आर येन आमा ना पासरे॥

ये ये रूपे यार ठाञि आछे अपराध।
क्षमिया ए दुइ प्रति करह प्रसाद॥
सर्व-भागवत गण कैला आशीर्वाद।
जगाइ-माधाइ हैला निर-अपराध॥
प्रभु बोले उठ उठ जगाइ-माधाइ।
हइला आमार दास आर चिन्ता नाइ॥
सशरीरे कभु कारो हेन नाहि हय।
नित्यानन्द-प्रसादे से जानिह निश्चय॥ **(चैः भाः)**

श्रीमन्नित्यानन्द की कृपा से जगाइ-मधाइ की जीवन की धारा पलभर के अन्दर विपरीत दिशा में प्रवाहित हो गयी। उनके नारकीय हृदय में परम उज्ज्वल प्रेमभक्तिमय गोलोक-वृन्दावन की सुषमा फूट पड़ी। एक पल में पहले जो कठिनाई से दमन करने योग्य, दुधर्ष, महापाखण्डी, अत्यन्त कदाचारी दस्यु थे, सम्पूर्ण नदीया के नर-नारी भय से सन्त्रस्त तथा विकम्पित होते थे, वे श्रीनिताइचाँद की कृपा से भुवन-पावन, सभी-के द्वारा नमस्कार के योग्य तथा पूज्य आदर्श भक्त के रूप में परिवर्तित हो गये! वे 'जगदानन्द तथा माधवानन्द के नाम से भक्तगणों के निकट समादृत तथा सम्पूजित होने लगे। नित्यानन्द ने उन्हें नित्यानन्द दान से सदैव के लिये कृतार्थ किया।

अब वे प्रतिदिन प्रात:काल गंगास्नान करते हैं। गंगास्नान के लिये आये हुये नर-नारियों से हाथ जोड़कर क्षमा की भिक्षा माँगते हुये कहते हैं- 'जाने, अनजाने आप लोगों के साथ जो सब अपराध किया है, आप लोग निजगुण से उसे क्षमा करें। आप लोग यदि क्षमा नहीं करेंगे तो हमारी मुक्ति नहीं है।' वे लोग प्रतिदिन दो लाख नाम ग्रहण करते हैं। अपने पहले किये गये पाप कार्यों का स्मरण करके स्वयं को धिक्कार करते हुये निरन्तर 'कृष्ण' कहकर रोदन करते हैं। महाप्रभु स्वयं सभी भक्तगणों के साथ निरन्तर उनको आश्वासन प्रदान करते हैं, प्रभु स्वयं उनको भोजन कराते हैं, फिर भी वे अपने किये हुये अपराध के पाश्चात्ताप में निरन्तर जलते रहते हैं। यद्यपि श्रीगौर-नित्यानन्द की कृपा से- वे सम्पूर्ण पाप-ताप आदि से मुक्त होकर प्रेम प्राप्ति करके धन्य हुये हैं, फिर भी भक्ति की अतृप्ति के स्वभाव के कारण भक्त के लिये कृतापराध के यथार्थ प्रायश्चित्त पश्चात्ताप में निरन्तर सन्तप्त होते रहते हैं।

विशेष रूप से नित्यानन्द के अंग में रक्तपात की बात मधाइ किसी भी प्रकार से भूल नहीं पाते हैं।

मधाइ का पश्चात्ताप—

उस बात को स्मरण करके निरन्तर वह रोदन करते रहते हैं। यद्यपि नित्यानन्द प्रभु ने सब अपराध क्षमा कर दिया, उन्हें वक्ष में जकड़ लिया, महाप्रभु तथा भक्तगणों के समक्ष अपनी संचित सुकृति के दान की बात कही- लेकिन फिर भी मधाइ चित्त में शान्ति नहीं प्राप्त कर पाये। नित्यानन्द के अंग में रक्तपात की बात स्मरण करते ही वह विलाप करते-करते मूर्च्छित हो जाते हैं।

नित्यानन्द-अंगे मुञि केलु रक्त पात।
इहा बलि निरन्तर करे आत्मघात॥
ये अंगे चैतन्य चन्द्र करये विहार।
हेन अंगे मुञि पापी करिलुँ प्रहार॥
मूर्छागत हय इहा स्मङरि माधाइ।
अहर्निश कान्दे आर किछु चिन्ता नाइ॥ (चैः भाः)

इधर नित्यानन्द प्रभु निरन्तर परमानन्दमय हैं। सदैव ही उनका बाल्यावेश है। एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सकते। मुख में अविराम कृष्णनाम का अमृत प्रवाह है। और रात दिन नगर भ्रमण।

सहजे परमानन्द नित्यानन्द राय।
अभिमान शून्य, सर्वनगरे बेड़ाय॥ (चैः भाः)

अचानक एक दिन माधवानन्द श्रीपाद नित्यानन्द को एकान्त में पाकर उनके श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम किया, प्रेमाश्रु से निताइ के चरणों का प्रक्षालन किया। दन्त में तृण धारण करके नित्यानन्द का स्तव करने लगे—

मधाइ की अनोखी स्तुति—

विष्णु रूपे तुमि प्रभु! करह पालन।
तुमि से फणाय धर अनन्त भुवन॥
भक्तिर स्वरूप प्रभु! तोमार कलेवर।
तोमारे चिन्तये मने पार्वती शंकर॥
तोमार से भक्तियोग तुमि कर दान।
तोमा' बइ चैतन्येर प्रिय नाहि आन॥
तोमार से प्रसादे गरुड़-महाबली।
लीलाय बहये कृष्ण हइ कुतूहली॥

तुमि से अनन्त मुखे कृष्ण गुण गाओ।
सर्वधर्म श्रेष्ठ भक्ति तुमि से बुझाओ॥
तोमारि से गुण गाय ठाकुर नारद।
तोमार से यत-किछु चैतन्य सम्पद॥

यद्यपि माधवानन्द महापाप के फल से ब्रह्मदस्यु हुआ था, फिर भी किसी दिन वैष्णव निन्दा नहीं की, इसलिये आसानी से इन्होंने श्रीश्रीगौरनिताइ की कृपा प्राप्त की थी। इन्होंने अवश्य ही किसी शास्त्र का अध्ययन नहीं किया था, लेकिन प्रभु की कृपा से भक्ति प्राप्त करके इन्होंने सभी शास्त्रों में पारदर्शिता प्राप्त की थी। भक्ति महारानी के आविर्भाव के साथ ही साथ उनकी सेवा के लिये भक्त के हृदय में सर्वविद्या का आविर्भाव हो जाता है। ऐसी अवस्था में इस प्रकार की वेद गुह्य भगवत्स्तुति इनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। उन्होंने फिर कहा—

तोमार से कालिन्दी भेदन करि नाम।
तोमा' सेबि जनक पाइल महाज्ञान॥
सर्वधर्ममय तुमि पुरुष-पुराण।
तोमारे से वेदे बोले 'आदि देव' नाम॥
तुमि से जगत पिता, महा योगेश्वर।
तुमि से लक्ष्मण चन्द्र महाधनुर्धर॥
तुमि से पाषण्ड क्षय रसिक आचार्य।
तुमि से जानह चैतन्येर सर्व कार्य॥
तोमारे सेबिया पूज्या हैल महामाया।
अनन्त ब्रह्माण्ड चाहे तोमा' पद छाया॥
तुमि चैतन्येर भक्त तुमि महाभक्ति।
यत किछु चैतन्येर तुमि सर्वशक्ति॥

माधवानन्द का हृदय अब भक्ति रस से भरपूर है। वर्षा की नदी की भाँति उनकी चित्त भूमि में भक्ति-मन्दाकिनी की धारा उच्छ्वसित होकर उठ रही है! उस भक्तिरसमय चित्त की सुनिर्मल अनुभूति स्तव के रूप में प्रवाहित हो रही है! उनके प्राणों के अभीष्ट देव को अकेले में पाकर हृदय का द्वार खोलकर स्तुति कर रहे हैं। श्रीनित्यानन्द श्रीचैतन्य की सर्वशक्ति किस प्रकार से हैं वही बता रहे हैं—

तुमि शय्या तुमि खट्वा तुमि से शयन।
तुमि चैतन्येर छत्र तुमि प्राणधन॥
तोमा' बइ कृष्णेर द्वितीय नाहि आर।
तुमि गौर चन्द्रेर सकल अवतार॥
तुमि से करह प्रभु! पतितेर त्राण।
तुमि से संहार सर्व पाषण्डीर प्राण॥
तुमि से करह प्रभु! वैष्णवेर रक्षा।
तुमि से वैष्णव धर्म कराइला शिक्षा॥
तोमार कृपाय सृष्टि करे अज-देवे।
तोमारे से रेवती वारुणी कान्ति सेवे॥
तोमार से क्रोध महारुद्र-अवतार।
सेइ द्वारे कर सर्व सृष्टिर संहार॥

श्रीनित्यानन्द ब्रज के साक्षात् बलदेव हैं। अनन्त देव के रूप में वही श्रीकृष्ण की शैय्या, शयन, आसन, भूषण, छत्र सभी है। उनसे ही सभी अवतारों का प्रकाश होता है। पतितों का उद्धार, पाखण्डियों का नाश, वैष्णवों की रक्षा, वैष्णव धर्म की शिक्षा या प्रचार नित्यानन्द से ही सम्पन्न होता है। उनकी कृपा से ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, वह स्वयं विष्णु के रूप में विश्व का पालन करते हैं तथा उनके क्रोध से ही महारुद्र का आविर्भाव होता है- जिससे सृष्टि का संहार अथवा प्रलय होता है। सब करके भी तुम कुछ भी नहीं करते हो। तुम सभी विषयों में निर्लिप्त हो!

सकल करिया तुमि किछु नाहि कर।
अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ! तुमि वक्षेधर॥
परम कोमल सुख-विग्रह तोमार।
ये विग्रहे करे कृष्ण शयन विहार॥
से हेन श्रीअंगे आमि करलिुँ प्रहार।
भुञि हेन दारुण पातकी नाहि आर॥
पार्वती प्रभृति नबार्व्वुद नारी लैया।
ये अंग पूजये शिव जीवन करिया॥
ये अंगन-स्मरणे सर्व-बन्ध-विमोचन।
हेन अंग रक्त पड़े मोहर कारण॥ **(वही)**

माधवानन्द ने श्रीनित्यानन्द के श्रीअंग में जो आघात किया था, उसका अनुताप वह किसी भी प्रकार से हृदय से दूर नहीं कर पा रहे हैं। इसीलिये

अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी भाषा में आक्षेप कर रहे हैं- हाय! मैंने क्या किया, श्रीकृष्ण के सुख विहार स्थल तथा अधिष्ठान क्षेत्र परम सुकोमल सुखमय विग्रह को मैंने आघात किया है- हाय! मुझे सैकड़ों बार धिक्कार है! मेरे समान घोर महापातकी विश्व में और कोई नहीं है! इस प्रकार अनेक बातों से अनुताप करते हुये माधवानन्द नित्यानन्द के चरणों को प्रेमाश्रु से भिगोने लगे तथा अपने किये हुये महा अपराध के लिये क्षमा माँगने लगे।

माधाइर काकु प्रेम शुनिञा स्तवन।
हासि नित्यानन्द राय बलिला वचन॥
उठ उठ माधाइ! आमार तुमि दास।
तोमार शरीर हैल आमार प्रकाश॥
शिशु पुत्रे मारिले कि बापे दुःख पाय?
एइ मत तोमार प्रहार मोर गाय॥
तुमि ये करिले स्तुति इहायेइ शुने।
सेइ भक्त हइबेन आमार चरणे॥
आमार प्रभुर तुमि अनुग्रह पात्र।
आमाते तोमार दोष नाहि तिल मात्र॥
ये जन चैतन्य भजे, से-इ मोर प्राण।
युगे युगे आमि तार करि परित्राण॥
ना भजि चैतन्य ये वा मोरे भजे गाय।
मोर दुःखे जन्मे जन्मे से हो दुःख पाय॥
एत बलि तुष्ट हैया दिला आलिंगन।
सर्व दुःख माधाइर हैल विमोचन॥ (चैः भाः)

प्रभु नित्यानन्द आश्रितजनों के हृदय में किसी भी प्रकार का दुःख नहीं रख सकते! माधवानन्द के हृदय के सभी प्रकार के अनुताप आदि दुःखों का नाश करके उनके हृदय को नित्यानन्दमय बना दिया।

श्रीमन्नित्यानन्द के इस विश्व में अवतरण का अन्तरंग उद्देश्य अत्यन्त गूढ़ है। मनुष्य की बुद्धि का वहाँ पर प्रवेशाधिकार नहीं है। साधारणतया उस सम्बन्ध में हम शास्त्र वाक्यों तथा महाजनों की वाणी से उसे जान सकते हैं कि उपास्य तत्त्व की सेवा ही उनका कार्य है। महाप्रभु के अवतरण का अन्तरंग उद्देश्य श्रीराधारानी के प्रेमरस का आस्वादन तथा आनुषागिक उद्देश्य विश्व के जीवों को प्रेम का दान है। उसी प्रकार श्रीनित्यानन्द के अवतरण का अन्तरंग उद्देश्य श्रीगौरसुन्दर की सेवा है। जो सेवा उनकी अपनी ही है, दूसरों

के लिये वह उपदिष्ट नहीं है। क्योंकि आनन्दमय की यह अनन्य सेवा है, जिनका नित्यानन्द के अलावा और कुछ भी नहीं है- वही करने में सक्षम हैं। सहायक रूप से उन्होंने पतितों का उद्धार तथा प्रेम का प्रचार किया है। श्रीअनन्तदेव के स्वरूप में श्रीबलदेव श्रीभगवान् की जो विविध सेवा करते हैं, वह शास्त्र में वर्णित है। द्वापर में उन्होंने श्रीबलदेव के रूप में श्रीकृष्ण की, त्रेता में श्रीलक्ष्मण के रूप में श्रीरामचन्द्र की तथा कलि में श्रीनित्यानन्द के रूप में श्रीगौरसुन्दर के नित्य सहचर होकर उनके विविध कार्यों मैं सहायक होकर सेवा की है।

श्रीनित्यानन्द ने निरन्तर छाया की भाँति श्रीगौरसुन्दर के साथ रहकर कभी अग्रज की भाँति, तो कभी अनुज की भाँति उनकी सेवा की है। जैसे श्रीमन्महाप्रभु के साथ शान्तिपुर में श्रीअद्वैताचार्य के घर जाकर अद्वैताचार्य के प्रति प्रभु की दण्ड कृपा के साथी तथा सहायक थे श्रीनित्यानन्दराय श्रीअद्वैताचार्य के प्रेम के आकर्षण तथा आह्वान से श्रीगौरांग का आविर्भाव हुआ था, यह सर्वजन विदित है। आचार्य उनके लाये हुये आराध्य देवता की हर वक्त आराधना करने, उनका दर्शन स्पर्शन उनकी चरण धूलि से स्वयं को पवित्र करने के लिये समुत्सुक रहते थे। दूसरी ओर महाप्रभु आचार्य को अपना पूज्य मानते थे तथा उनके इस प्रकार के आचरण से असन्तुष्ट तथा क्रुद्ध होते थे। इसलिये आचार्य को प्रभु से छिपकर अपना कार्य साधना पड़ता था। इस सम्बन्ध में श्रीचैतन्यभागवत में वर्णित है—

ये चरण मने चिन्ते से हैल साक्षाते।
अद्वैतेर इच्छा - थाके सदाइ ताहाते॥
साक्षाते ना पारे प्रभु करियाछे राग।
तथापिह चुरि करे चरण-पराग॥
भावावेशे प्रभु ये समये मूर्च्छा पाय।
तखन अद्वैत चरणेर पाछु जाय॥
दण्डवत हइ पड़े चरणेर तले।
पाखाले चरणे दुइ नयनेर जले॥
कखनो वा निछिया पुँछिया लय शिरे।
कखनो वा षड़ंग विहित पूजा करे॥
इहो कर्म अद्वैत करिते पारे मात्र।
प्रभु करियाछे यारे महामहा पात्र॥

एक दिन प्रभु नृत्य करते-करते प्रेमानन्द में भरकर मूर्च्छित हो गये। अवसर पाकर श्रीअद्वैत ने चुपके से उनकी चरणधूलि का अपने अंग में लेप किया। होश आने पर नृत्य करते-करते मजा किया प्रभु बोले- "मुझे यह क्या हुआ। मुझे नृत्य में सुख क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है?" किसके प्रति अपराध से मेरा उल्लास नहीं हो रहा है। किसी चोर ने क्या मेरा कुछ चुरा लिया है? किसी ने क्या मेरे चरणों की धूलि ली है! तुम लोग सच-सच बताओ- यह किसका कार्य है? अन्तर्यामी प्रभु की बात सुनकर सभी मौन होकर आपस में एक दूसरे की ओर देखने लगे।

बलिते अद्वैत-भय ना बलिले मरि।
बुझिया अद्वैत बोले जोड़ हात करि॥
सुन बाप! चोरे यदि साक्षाते ना पाय।
तबे तार अगोचर चुरि से जुयाय॥
मुञि चुरि करियाछों क्षम मोर दोष।
आर ना करिब यदि तोमा असन्तोष॥ (चै. भा.)

प्रभु! चरणधूलि लेने जाने पर तुम बाधा देते हो, इसलिये छिपकर उसे चुराकर ही लेना होता है। मैंने ही वह चुराया है। इससे अगर तुम असन्तुष्ट होते हो तो मुझे क्षमा करो- भविष्य में ऐसा और नहीं करुँगा।' अद्वैत के क्षमा माँगने पर प्रभु सन्तुष्ट नहीं हो सके, बल्कि महा क्रुद्ध होकर विस्तृत अद्वैत की महिमा कहने लगे।

सकल संसार तुमि करिया संहार।
तथा पिह चित्ते नाहि वास' प्रतिकार॥
संहारेर अवशेषे सबे आछि आमि।
आमा' संहारिया तबे सुखे थाक तुमि॥
तपस्वी संन्यासी ज्ञानी योगी ख्याति यार।
कारे तुमि नाहिकर शूलेते संहार॥
कृतार्थ हइतेये आइसे तोमा' स्थाने।
ताहारे संहार करिया धरिया चरणे॥
मथुरा निवासी एक परम वैष्णव।
तोमार देखिते आइल चरण वैभव॥
तोमा' देखि कोथा से पाइब विष्णुभक्ति।
आरो संहारिले तार चिरन्तन शक्ति॥

लइया चरणधूलि तारे कैला क्षय।
संहार करिते तुमि परम निर्द्दय॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड यत आछे भक्ति योग।
सकल तोमारे कृष्ण दिला - उपभोग॥
तथापिह तुमि चुरि कर' क्षुद्र स्थाने।
क्षुद्र संहारिते कृपा नाहि बास मने॥ **(चै.भा.)**

इस प्रकार तिरस्कार के बहाने अद्वैताचार्य की विपुल महिमा गायी। वैष्णववृन्द प्रभु की वाणी सुनकर आनन्द के सागर में प्रवाहित हो गये। प्रभु बोले, 'तुमने चोरी की है, अच्छा मैं कर सकता हूँ या नहीं कर सकता, अब वही देखो। यह कहकर महापराक्रम से गौररूपी सिंह हँसते-हँसते अद्वैत की चरणधूलि लूटने लगे। अद्वैत का चरण अपने मस्तक पर रगड़ने लगे। उनके चरणयुगल अपने वक्ष से लगाकर कहने लगे- 'यह देखो चोर को बाँध लिया है। चोर सौ बार में जो चोरी करता है गृहस्थ चोर को पकड़कर एक दिन में ही वह सब छुड़ा लेता है।

अद्वैत बोलये सत्य कहिला आपनि।
तुमि ये गृहस्थ आमि किछुइ ना जानि॥
प्राण, बुद्धि, मन, देह - सकल तोमार।
के राखिब तुमि प्रभु! करिले संहार॥
हरिषेरो दाता तुमि, तुमि देह ताप।
तुमि संहारिले वा राखिब कार बाप?

★ ★ ★ ★ ★

कि दाय चरणधूलि, सेह रहु पाछे।
काटिले तोमार शास्ता कोन जन आछे॥
तबे ये एमत कर'- नहे ठाकुराली।
आमार संहार हय, तुमि राख वा संहार।'
ये तोमार इच्छा प्रभु! ताइ तुमि कर॥ **(चै.भा.)**

इस तरह प्रभु के चरणों में शरणागत होकर ही अथवा प्रभु की इच्छा के प्रवाह में शरीर उड़ेल कर ही आचार्य स्थिर नहीं हो सके। वह मन ही मन एक तरकीब के बारे में सोचने लगे जिससे प्रभु अत्यन्त क्रोधित होकर या आपे से बाहर होकर उन्हें दण्ड देकर शोधन करके दास के रूप में स्वीकार कर लें। तरकीब भी निश्चित हो गयी—

भक्ति बुझाइते से प्रभुर अवतार।
हेन भक्ति ना मानिमु एइ मन्त्र सार॥
भक्ति ना मानिले क्रोधे आपना पासरि।
प्रभुमोरे शास्ति करिबेन चुले धरि॥ (चै.भा.)

इस प्रकार तरकीब निर्धारित करके आचार्य किसी कार्य के बहाने हरिदास के साथ शान्तिपुर चले गये, तथा वहाँ जाकर भक्ति से बढ़कर ज्ञान की प्रधानता की व्याख्या करने लगे। भक्त वाञ्छाकल्पतरु प्रभु विश्वम्भर अद्वैत का संकल्प जान गये। एक दिन नित्यानन्द के साथ नगर भ्रमण करते हुये शान्तिपुर जाने का संकल्प करके दोनों गंगा में तैरते हुये शान्तिपुर की ओर चले।

हेन-मते दुइ प्रभु आपन-आनन्दे।
सुखे दुइ चलिलेन जाह्नवी-तरंगे॥
महाप्रभु निरवधि करये हुंकार।
'मुञि सेइ मुञि सेइ बोले बार बार॥
मोहोरे आनिला नाढ़ा शयन भांगिया।
एखाने बाखाने ज्ञान, भक्ति लुकाइया॥
तार शास्ति करो आज देख पर तेखे।
केमन देखिब आजि ज्ञानयोग राखे॥
तर्ज्जे गर्ज्जे महाप्रभु गंगा स्रोते भासे।
मौन हइ नित्यानन्द मने मने हासे॥
दुइ प्रभु भासि जाय गंगार उपरे।
अनन्त मुकुन्द येन क्षीरोद सागरे॥ (चै.भा.)

उधर भक्ति योग के प्रभाव से श्रीअद्वैत समझ गये, कि प्रभु क्रोधित होकर आ रहे हैं, अतः मेरा उद्देश्य सफल होगा। क्रोधित होकर विश्वम्भर आ रहे हैं जानकर वह अधिक प्रमत्त होकर ज्ञानयोग की व्याख्या करने लगे। विश्वम्भर ने नित्यानन्द के साथ आकर देखा, अद्वैत ज्ञानानन्द के रंग में प्रवाहमान हैं। अपने कानों से आचार्य की ज्ञान की व्याख्या सुनकर प्रभु और अधिक क्रोधित हुये। प्रभु को देखकर श्रीहरिदास तथा आचार्य के पुत्र श्रीअच्युतानन्द ने प्रणाम किया। अद्वैत की पत्नी सीता देवी ने प्रभु का क्रोध से तमतमाया चेहरा तथा लाल-लाल आँखों को देखकर विस्मित तथा भयभीत होकर मन ही मन नमस्कार किया। विश्वम्भर की कोटि सूर्य सम क्रोधपूर्ण मूर्त्ति को देखकर सभी शंकित चित्त से दूर हटकर खड़े हो गये।

क्रोध मुखे बोले प्रभु आरे आरे नाढ़ा।
बोल देखि 'ज्ञान' भक्ति दुइते के बाढ़ा॥
अद्वैत बोलये सर्वकाल बड़ ज्ञान।
ज्ञान नाहि यार तार भक्ति ते कि काम॥
ज्ञान बड़ अद्वैतेर शुनिञा वचन।
क्रोधे बाह्य पासरिला श्रीशचीनन्दन॥
पिण्डा हैते अद्वैतेर धरिया आनिया।
स्वहस्ते किलाय प्रभु उठाने पाड़िया॥
अद्वैत गृहिणी पतिव्रता जगन्माता।
सर्वतत्त्व जानियाओ करये व्यग्रता॥
बुढ़ा विप्र बुढ़ा विप्र राख राख प्राण।
काहार शिक्षाय एत कर अपमान॥
एड़ बुढ़ा-वामनेरे आर कि करिबा।
कोन किछु हैले एड़ाइते ना पारिबा॥
प्रतिव्रता-वाक्य शुनि नित्यानन्द हासे।
भये कृष्ण स्मङरयै प्रभु हरिदासे॥ (चै.भा.)

कोई सोच सकता है कि अद्वैताचार्य के प्रति महाप्रभु का इस प्रकार का आचरण सुसंगत हुआ? अद्वैताचार्य अत्यन्त सम्भ्रान्त व्यक्ति, सुपण्डित तथा वयोवृद्ध है, विशेष रूप से महाप्रभु के अत्यन्त माननीय है; उन्हें ज्ञान को भक्ति की अपेक्षा बड़ा बताने पर इस प्रकार से प्रहार करना क्या उचित कार्य है? इस प्रकार की धारणा श्रीभगवान् की लीला में लौकिक दृष्टि का फल है। सच्चिदानन्दमय श्रीभगवान् की लीला भी सच्चिदानन्दमयी तथा रस स्वरूप के रूप में ही जानना होगा। लौकिक दृष्टि से अथवा लौकिक बुद्धि के द्वारा लीला का विचार नहीं चलता। उसमें महा अपराध अनिवार्य है। महाप्रभु ने जो किया है वही अद्वैताचार्य का हार्द या काम्य है। इस प्रकार का आवेश लाने के लिये ही उनका भक्ति की अपेक्षा ज्ञान को बड़ा कहकर व्याख्या करना है। अत: महाप्रभु का यह प्रहार श्रीअद्वैताचार्य का परमामृत-आहार या परम आस्वाद्य है। साधारण मनुष्य इसका रहस्य न समझ कर इसकी निन्दा करेगा, यह जानकर भी भक्त वाञ्छा-कल्पतरु श्रीगौरहरि ने ऐसा करके भक्त के मनोरथ को पूर्ण किया है। "तोमार कृपाय तोमाय कराय निन्द्य कर्म। साक्षात् ईश्वर तुमि के जाने तोमार मर्म॥" (चै.च.)। वास्तव में इसमें जैसे एक तरफ श्रीअद्वैताचार्य की अभीष्ट की पूर्ति है, वैसे ही दूसरी

तरफ जो भक्ति से बढ़कर भी और कुछ है ऐसा समझते हैं, वे महाप्रभु के प्रलयंकर क्रोध के पात्र हैं- यही व्यंजित हुआ है। जो भी हो, महाप्रभु ने आवेश में आचार्य के निकट अपने बहुत ऐश्वर्य की बात व्यक्त की।

इधर—

शास्ति पाइ अद्वैत परमानन्दमय।
हाते तालि दियो नाचे करिया विनय॥
येन अपराध कैलुँ तेन शास्ति पाइलुँ।
भालइ करिला प्रभु! अल्पे एड़ाइलुँ॥
एखने से ठाकुरालि बलिये तोमार।
दोष अनुरूप शास्ति करिला आमार॥
इहाते से प्रभु! भृत्ये चित्ते बल पाय।
बलिया आनन्दे नाचे शान्तिपुर राय॥
आनन्दे अद्वैत नाचे सकल अंगने।
भ्रूकुटी करिया बोले प्रभुर चरणे॥
कोथा गेल एबे मोरे तोमार से स्तुति।
कोथा गेल एबे तोर से सब ढांगाति॥ (चै.भा.)

प्रभु! मैं दुर्वासा ऋषि नहीं हूँ, जिसकी झूठन सर्वांग में लेप करोगे, मैं भृगु भी नहीं हूँ जिनके चरणचिह्न वक्ष में धारण करोगे। मेरा नाम अद्वैत है, तुम्हारा शुद्ध दास, जन्म–जन्म में तुम्हारा उच्छिष्ट (झूठन) ही मेरा ग्रास है! तुम्हारे उच्छिष्ट के प्रभाव से तुम्हारी माया को मैं नहीं मानता। जब मेरी गलती के अनुरूप दण्ड देकर भृत्य के रूप में स्वीकार किया है, तब इस वक्त श्रीचरण सिर पर प्रदान कर धन्य करो।' यह कहकर आचार्य प्रभु के श्रीचरण मस्तक पर धारण कर प्रणत हुये (प्रणाम की मुद्रा में झुक गये)।

सम्भ्रमे उठिया कोले कैला विश्वम्भर।
अद्वैतेरे कोले करि कान्दये विस्तर॥
अद्वैतेर भक्ति देखि नित्यानन्द राय।
क्रन्दन करये येन नदी बहि जाय॥
भूमिते पड़िया कान्दे प्रभु हरिदास।
अद्वैत गृहिणी कान्दे कान्दे यत दास॥
कान्दये अच्युतानन्द-अद्वैत तनय।
अद्वैत भवन हैल कृष्ण प्रेममय॥ (चै.भा.)

महाप्रभु इस विषय में अत्यधिक लज्जित हो गये तथा मुक्त कण्ठ से भक्त महिमा की घोषणा करने लगे। इस प्रकार से मामला थम गया। अद्वैत की गृहिणी सीतामाता ने श्रीमन्मदन गोपाल की भोग आराधना का कार्य किया। तीनों प्रभु प्रसाद ग्रहण करने बैठे।

भोजन हइल पूर्ण किछु मात्र शेष।
नित्यानन्द हइलो परम बाल्यावेश॥
सर्वघरे अन्न छड़ाइया हैल हास।
प्रभु बोले 'हास हाय' हासे हरिदास॥ (चै.भा.)

अद्वैताचार्य सामाजिक ब्राह्मण हैं- झूठन आदि का विचार मानकर चलते हैं। अवधूत के इस कार्य से क्रोध के बहाने आग की भाँति जल उठे तथा तिरस्कार के छल से नित्यानन्द की महिमा व्यक्त करने लगे—

जाति नाश करिलेक एइ नित्यानन्द।
कोथा हैते आसि हैल मद्यपेर संग॥
गुरु नाहि बोलय 'संन्यासी' करि नाम।
जन्म वा निश्चय नाहि जानि कोन ग्राम॥
केह त ना चिने नाहि जानि कोन जाति।
ढुलिया ढुलिया बुले येन माता हाती॥
घरे घरे पश्चिमार खाइयाछे भात।
एखाने आसिया हैल ब्राह्मणेर साथ॥
नित्यानन्द-मद्यपे करिब सर्वनाश।
सत्य सत्य सत्य एइ शुन हरिदास॥ (चै.भा.)

इस प्रकार क्रोधावेश में आचार्य के कमर से कपड़ा खिसक गया। हाथ झूठन से सना हुआ, कपड़ा नहीं सँभाल सके। अपनी हालत देखकर स्वयं ही हँसने लगे। क्रोध दूर हो गया। अट्टहास्य का फव्वारा छूटने लगा। आचार्य की चेष्टा देखकर सभी हँसने लगे।

अद्वैत चरित्र देखि हासे गौर राय।
हासि नित्यानन्द दुइ अंगुली देखाय॥
शुद्ध हास्यमय अद्वैतेर क्रोधावेशे।
किबा वृद्ध किबा शिशु हासये विशेषे॥
क्षणेके हइल बाह्य कैल आचमन।
परस्पर सन्तोषे करिला आलिंगन॥

नित्यानन्द अद्वैते हइल कोला कोली।
प्रेम रसे दुइ प्रभु महा कुतूहली॥ (चै.भा.)

इस प्रकार श्रीगौरांग तथा नित्यानन्द परम-आनन्द से शान्तिपुर में आचार्य के घर पर कुछ दिन रुककर अद्वैत तथा हरिदास के साथ नवद्वीप में आकर भक्त गोष्ठी के साथ मिल गये। एकदिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीवास के घर में श्रीनित्यानन्द के साथ विविध लीला रस रंग में बैठे हुये थे, इस अवसर पर मुरारी गुप्त ने आकर प्रभु के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करके अन्त में नित्यानन्द के श्रीचरणों में प्रणाम किया। गुप्त दोनों की वन्दना करके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। मुरारी गुप्त के प्रति प्रभु अत्यन्त ही सन्तुष्ट थे, निष्कपट रूप से उनसे बोले—

मुरारी गुप्त के प्रति नित्यानन्द तत्त्व का प्रकाश—

ये करिला मुरारी नाहय व्यवहार।
व्यतिक्रम करिया करिला नमस्कार॥
कोथा तुमि शिखाइबा ये ना इहा जाने।
व्यवहारे हेन धर्म तुमि लङ्घ' केने? (चै.भा.)

मुरारी बोले, प्रभु! किस तरह से जानूँगा बताओ? सर्वान्तर्यामी तुम जिसके हृदय में जिसे प्रकार की प्रेरणा देते हो, जीव तो वही जान या सीख सकता है! जीव की स्वतन्त्र शक्ति कहाँ है? प्रभु बोले—'ठीक है ठीक है', आज घर जाओ—कल सब कुछ जान सकोगे।' व्यवहार में क्या कमी रह गयी, तथा प्रभु उन्हें क्या बतायेंगे इत्यादि सम्भ्रम हर्ष-विषाद के साथ मुरारी अपने आवास पर जाकर सो गये।

स्वप्ने देखे- महा भागवतेर प्रधाना।
मल्ल वेशे नित्यानन्द चले आगुयान॥
नित्यानन्द- शिरे देखे महा नाग-फणा।
करे देखे श्रीहल-मुषल ताल-वाणा।
नित्यानन्द मूर्त्ति देखे येन हल धर।
शिरे पाखा धरि पाछे जाय विश्वम्भर॥
स्वप्ने प्रभु हासि बोले जानिला मुरारी।
आमि ये कनिष्ठ मने बुझह विचारि॥
स्वप्ने दुइ प्रभु हासे मुरारी देखिया।
दुइ भाइ मुरारीरे गेला शिखाइया॥ (चै.भा.)

नींद टूटने पर मुरारी रोने लगे तथा हा नित्यानन्द कहते हुये बार-बार लम्बी साँसें छोड़ने लगे। महासती मुरारी गुप्त की पत्नी पति की भाव विह्वलता देखकर 'कृष्ण कृष्ण' कहकर उन्हें सुस्थिर करने लगीं। मुरारी श्रीनित्यानन्द को प्रभु का बड़ा भाई जानकर प्रात:काल प्रभु के पास गये तथा पहले श्रीनित्यानन्द के चरणों में शीश झुकाकर बाद में विश्वम्भर की चरण वन्दना की उसे देखकर मजाकिया प्रभु हँसते हुये बोले—

हासि बोले विश्वम्भर मुरारी ए केन?
मुरारी बोलये प्रभु! लआयाइले येन॥
पवन-कारणे येन शुष्क तृण चले।
जीवेर सकल कर्म तोर शक्ति बले॥
प्रभु बोले मुरारि! आमार प्रिय तुमि।
अतएव तोमारे भांगिल मर्म आमि॥ (चै.भा.)

श्रीचैतन्यभागवत में मध्य खण्ड तेइसवें अध्याय में अत्यन्त विस्तृत रूप से श्रीमन्महाप्रभु कीनगर संकीर्तन लीला वर्णित हुई है। नदीया में मुसलमान काजी ने जिस दिन कीर्तन का मृदंग तोड़कर संकीर्तन का निषेध किया तथा नगरवासियों ने महाप्रभु को यह बात बतायी, संकीर्तन प्रवर्तक श्रीमन्महाप्रभु ने उस दिन संकीर्तन की बाधा को सुनकर महाक्रोध से महारुद्र के समान प्रलयंकर मूर्त्ति धारण करके महा हुंकार की ध्वनि की। जिस प्रकार कोई राज-राजेश्वर दिग्विजय के लिये निकलने से पहले महासेना-पति के पास अपने मन की इच्छा जताता है, उसी प्रकार महानगर संकीर्तन में काजी का दलन तथा कीर्तन के प्रचार के लिये संकल्प करके महाप्रभु ने श्रीनाम संकीर्तन के अभियान में महा सेनापति की भाँति पहले श्रीनिताइचाँद को आह्वान करके मन की इच्छा व्यक्त की थी।

महानगर संकीर्तन में निताइचाँद—

प्रभु बोले नित्यानन्द! हओ सावधान।
एइ क्षणे चल सर्व वैष्णवेर स्थान॥
सर्व नवद्वीपे आजि करिम कीर्तन।
देखों मोरे कोन कर्म करे कोन जन॥
देख आजि काजिरे पोड़ाङ घरे द्वार।
कोन् कर्म करे देखों राजा वा ताहाव॥

प्रेम भक्ति-वृष्टि आजि करिब विशाल।
पाषण्डीर गणेरे हइब आजि काल॥ (चै.भा.)

इसके पश्चात् जो सब नागरिक काजीर के भय से भीत होकर मन के दु:ख के कारण नगर में संकीर्तन निषेध का समाचार प्रभु के चरणों में ज्ञापित करने के लिये आये थे, उनसे बोले—

चल चल भाइ सब नागरिक गण।
सर्वत्र आमार आज्ञा करह कथन॥
कृष्णेर रहस्य आजि देखिबेक येइ।
एको महादीप लइ आसिबेक सेइ॥
भांगिब काजिर घर काजिर दुयारे।
कीर्तन करिमु देखों कोन कर्म करे॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मोर सेवकेर दास।
मुञि विद्यमाने ओकि भयेर प्रकाश॥
तिलार्ध्वे को भय केहो ना करिह मने।
विकाले आसिबे झाट करिया भोजने॥ (चै.भा.)

नागरिक गण और भोजन क्या करेंगे, सभी महा आनन्द के सागर में प्रवाहमान हो गये। महाप्रभु आज नदीया के नगर-नगर में कीर्तन करेंगे, यह खबर विद्युत वेग से सर्वत्र प्रचारित हो गयी। जिनका नृत्य न देख पाकर नदीया के हजारों व्यक्तियों ने शोक किया था, आज वह पार्षदों के साथ नगर-नगर में कीर्तन करेंगे, इस समाचार से महा आनन्द में प्रत्येक घर में सभी दीप सजाने लगे। धनाढ्य व्यक्तियों ने लाखों दीप सजाया तथा शाम को सभी दीप लेकर प्रभु के पास आये। प्रभु के पार्षद वैष्णव सभी के समागत होने पर प्रभु ने श्रीमुख से सभी को आदेश किया—

आगे नृत्य करिबेन आचार्य गोसाञि।
एक सम्प्रदाय गाइबेन तान ठाञि॥
मध्ये नृत्य करि जाइबेन हरिदास।
एक सम्प्रदाय गाइबेन तान पाश॥
तबे नृत्य करिबेन श्रीवास पण्डित।
एक सम्प्रदाय गाइबेन तान भित॥
नित्यानन्द दिगे' मात्र चाहिलेन प्रभु।
नित्यानन्द बोले तोमा'ना छाड़िब कभु॥

धरिया बुलिब प्रभु! एइ कार्य मोर।
तिलेको हृदये पद ना छाड़िब तोर॥
स्वतन्त्र नाचिते प्रभु! मोर कोन् शक्ति।
यथा तुमि तथा मुञि एइ मोर भक्ति॥
प्रेमानन्द धारा देखि नित्यानन्द-अंगे।
आलिंगन करि राखिलेन निज-संगे॥ (चै.भा.)

श्रीनित्यानन्द प्रभु जानते हैं महानगर संकीर्तन में महाप्रभु के देह मन में जो विपुल आवेश उत्पन्न होगा उससे उनके भावोन्माद में जो मूर्च्छा, ठोकर आदि विकार दिखायी पड़ेंगे, अनन्तदेव के अलावा विश्वम्भर को सँभालने की और किसी में शक्ति नहीं है। इसीलिये उन्होंने दूसरी जगह नृत्य स्वीकार न करके प्रभु के समीप रहने की प्रार्थना की। नगर संकीर्तन जिन असंख्य नरनारियों का समावेश था, सभी में अद्‌भुत उन्मादना थी, पाखण्डियों का त्रास, महाप्रभु का काजी दलन, भक्तों के प्रति अनुग्रह आदि जो श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने श्रीचैतन्यभागवत में वर्णन किया है, उसका पाठ करने पर महाप्रभु की वह महा उन्मादनापूर्ण नगर संकीर्तन लीला मानो पाठकों के आँखों के सामने सजीव हो उठती है। विज्ञ जन उस स्थान पर ही लीला का आस्वादन करेंगे, हमने केवल उस परमानन्दमय लीला में परमानन्द-स्वरूप प्रभु श्रीनित्यानन्द की भूमिका का संक्षेप में उल्लेख किया। उस असंख्य कोटि जन-समावेश के अन्दर जहाँ करोड़ों दीपक के प्रकाश से नदीया नगरी जगमगा उठी थी, महा उन्मादनापूर्ण संकीर्तनानन्द में सभी महा मतवाले हो उठे थे; प्रत्येक घर का द्वार महा मांगलिक साज से सुसज्जित हुआ था, उसके बीच न्यग्रोध परिमण्डल देह श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द ने महा संकीर्तन के विकार में प्रमत्त होकर कैसा असमोर्ध माधुर्य का विस्तार करके दर्शकों के नेत्रों को सफल किया था, हमने श्रीचैतन्यभागवत से केवल उसी अंश को उधृत किया है।

सांसारिक ताप हरे' श्रीमुखि देखिया।
सर्वलोक 'हरि' बोले डाकिया डाकिया॥
जिनिञा कन्दर्प कोटि लावण्येर सीमा।
हेन नाहि याहा दिया करिब उपमा॥
तथापिह बलि तान कृपा - अनुसारे।
अन्यथा से रूप कहिबारे के बा पारे॥

ज्योतिर्मय कनक विग्रह वेद सार।
चन्दने भूषित गौरचन्द्रेर आकार॥
चाँचर-चिकुरे शोभे माल तीर माला।
मधुर मधुर हासे जिनि सर्वकला॥
ललाटे चन्दन शोभे फागु बिन्दु सने।
बाहु तुलि 'हरि हरि' बोले श्री बदने॥
आजानुलम्बित माला सर्व-अंगे दोले।
सर्व अंग तिते पद्म नयनेर जले॥
दुइ महा भुज येन कनकेर स्तम्भ।
पुलकेर शोभा येन कनक-कदम्ब॥
सुरंग अधर अति सुन्दर दशन।
श्रुतिमले शोभा करे भ्रूभंग-पत्तन॥
गजेन्द्र जिनिया स्कन्ध, हृदय सुपीन।
तहि शोभे शुक्ल यज्ञ सूत्र अति क्षीण॥
चरणाविन्द - रमा तुलसीर स्थान।
परम निर्मल सूक्ष्म वास परिधान॥
उन्नत नासिका सिंह ग्रीव मनोहर।
सभा हैते सुपीत सुदीर्घ कलेवर॥

श्रीभगवान् रस स्वरूप है, उनकी लीला में ही उस रस की अभिव्यक्ति है। विशेष रूप से महाप्रभु की लीला साक्षात् प्रेम रस की ही लीला है। इस लीला में नित्यानन्द मुख्य संगी तथा सहायक हैं, इसीलिये प्रभु ने कहा है-
"नित्यानन्द बिना किछु नाहिक तोमार।"

एक दिन विश्वम्भर किसी कार्य के लिये अपने घर पर थे, श्रीअद्वैताचार्य गोपभाव से श्रीवास के आँगन में नृत्य कर रहे थे। अद्वैत के उस परमावेशमय नृत्य का किसी भी प्रकार से विराम नहीं हो रहा था। भक्तगण उन्हें घेर कर दो प्रहर नृत्यगीत करते-करते थककर चूर हो गये थे। सभी मिलकर आचार्य को स्थिर करके उन्हें घेर कर बैठे गये। थोड़ा स्थिर होकर आचार्य के बैठने पर श्रीवास रामाइ इत्यादि सभ गंगा स्नान के लिये गये। इधर पुनः आचार्य का आर्त्ति सिन्धु उच्छ्वसित हो उठा! वह अकेले श्रीवास के आँगन में लोट लगाने लगे। अन्तर्यामी प्रभु विश्वम्भर आचार्य की आर्त्ति से स्थिर न रह सकने पर दौड़ते हुये श्रीवास के घर आये तथा आचार्य को लेकर विष्णु गृह में प्रविष्ट होकर द्वार बन्द करके बैठ गये।

हासिया ठाकुर बोले शुनह आचार्य।
कि तोमार इच्छा बोल, कि बा चाह कार्य?
अद्वैत बोलये तुमि सर्व वेद सार।
तोमारेइ चाहों प्रभु! कि चाहिब आर॥
हासि बोले प्रभु आमि एइत साक्षात।
आर कि आमारे चाह बोलह आमार॥
अद्वैत बोलये प्रभु! कहिला सुसत्य।
एइ तुमि प्रभु! सर्ववेदान्तेर तत्त्व॥
तथापिह विभव देखिते किछु चाइ।
प्रभु बोले, कि इच्छा बोलह मोर ठाँइ॥
अद्वैत बोलये प्रभु पूर्व अर्जुनेरे।
याहा देखाइले तथि बड़ इच्छा धरे॥ (चै.भा.)

यह बात कहते ही आचार्य की आँखों के सामने कुरुक्षेत्र के युद्ध के मैदान का दृश्य फूट पड़ा। असंख्य सैन्य-सामन्त के बीच एक दिव्य रथ देखा, उसमें श्यामसुन्दर ने पहले उन्हें शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज रूप में दर्शन दिया। अगले ही पल प्रभु का विश्वरूप आचार्य के नयनों में दिखायी पड़ा। प्रभु के अन्दर आचार्य असंख्य चन्द्र, सूर्य, गिरि, नदी, उपवन देखने लगे। करोड़ों मुख, करोड़ों आँखें, करोड़ों बाहु दर्शन किया। सामने अर्जुन स्तुति कर रहे थे। प्रभु के असंख्य बदन विवर से महाकालाग्नि निकल रही थी। उसमें दुष्ट पाखण्डीगण पतंगे की भाँति भस्म हो रहे थे। दूसरों से द्रोह करने वाले तथा निन्दा करने वाले चैतन्य की मुखाग्नि में जल रहे थे। विश्वरूप का दर्शन करके अद्वैत रोते-रोते दाँतों में तिनका धारण करके पुनः-पुनः प्रभु के दास्य की प्रार्थना करने लगे।

श्रीनित्यानन्द का विश्वरूप दर्शन—

परम आनन्द प्रभु नित्यानन्द राय।
पर्यटन सुखे भ्रमे सर्व नदीयाय॥
प्रभु प्रकाश सब जाने नित्यानन्द।
जानिलेन प्रभु हइयाछे विश्व अंग॥
सत्वरे आइला यथा आछेन ठाकुर।
विष्णु-गृहे द्वार दिया गर्ज्जेन प्रचुर॥

नित्यानन्द आगमन जानि विश्वम्भर।
द्वार घुचाइला प्रभु हइला भितर॥
अनन्त ब्रह्माण्ड रूप नित्यानन्द देखि।
दण्डवत हइया पड़िला बुजि आँखि॥
प्रभु बोले, उठ नित्यानन्द मोर प्राण।
तुमि से जानह मोर सकल आख्यान॥
ये तोमारे प्रीति करे मुञि सत्य तार।
तोमा बइ प्रियतम नाहिक आमार॥
तुमि आर अद्वैत ये करे भेद बुद्धि।
भाल मते ना जाने से अवतार शुद्धि॥ (चै.भा.)

विश्वरूप दर्शन करके श्रीनित्यानन्द तथा अद्वैत महा आनन्द से रोते हुये विष्णु गृह में लोट लगाने लगे। प्रभु भी 'देखो-देखो' कहकर परमावेश में हुंकार गर्जन करने लगे। दोनों प्रभु विश्वरूप दर्शन करके स्तुति करने लगे। दोनों का ही चित्त मन महा-आनन्दमय हो उठा।

एक दिन महाप्रभु गोपीभाव में तन्मय होकर 'गोपी गोपी' नाम जप कर रहे थे। अचानक एक छात्र वहाँ उपस्थित था, वह प्रभु का भाव मर्म न समझ कर बोला—

गोपी गोपी केने बोल निमाञि पण्डित।
'गोपी गोपी' छाड़ि 'कृष्ण' बोलह त्वरित॥
कि पुण्य जन्मिबा 'गोपी गोपी' नाम लैले।
कृष्ण नाम लइले से पुण्य वेदे बोले॥ (चै.भा.)

अज्ञ छात्र प्रभु की भाव तन्मयता को समझने में अक्षम होकर प्रभु को 'कृष्ण' नाम ग्रहण का उपदेश देने गया था। प्रभु तब गोपी भाव में इतने ही आविष्ट थे कि बाहरी जगत का कोई होश ही उनको नहीं था। श्रीराधारानी ने जिस प्रकार भ्रमर गीत में (भागत 10/47 अध्याय में) एक भ्रमर को कृष्ण के दूत के रूप में कल्पना कर मान की भंगी में कृष्ण का तिरस्कार किया था, प्रभु ने भी श्रीराधाभाव में छात्र से उसी प्रकार की बात कहकर कृष्ण का तिरस्कार किया।

भिन्न भाव प्रभुर से अज्ञे नाहि बुझे।
प्रभु बोले दस्यु कृष्ण कोन् जने भजे॥
कृतघ्न हइया बालि मारे दोष बिने।
स्त्रीजित हइया काटे स्त्रीर नाक-काने॥

सर्वस्व लइया 'बलि' पाठाय पाताले।
कि हइब आमार ताहार नाम लैले॥ (चै.भा.)

यह कहकर महाप्रभु के भावाविष्ट दशा में छात्र को मारने के लिये दौड़ने पर छात्र डर के कारण भाग गया। प्रभु भी हाथ में डण्डा लेकर पकड़ों-पकड़ों कहते हुये छात्र को मारने के लिये उसके पीछे-पीछे दौड़े। छात्र अत्यधिक डरकर भाग गया, भक्तवृन्दों ने प्रभु को पकड़कर लाकर सभी ने मिलकर उन्हें सुस्थिर किया। अज्ञ छात्र प्रभु के इस व्यवहार पर उन्हें मारने का षड्यन्त्र करने लगे। अन्तर्यामी प्रभु सभी कुछ जानकर एक दिन भक्तगणों के बीच एक अद्‌भुत बात बोले—

करिल पिप्पलि खण्ड कफ निवारिते।
उलटिया आरो कफ बाढ़िल देहेते॥
बलि अट्टअट्ट हासे सर्वलोक नाथ।
कारण ना बुझि भय जन्मिल सभात॥ (चै.भा.)

एकमात्र श्रीनित्यानन्द ही महाप्रभु की इस बात का अभिप्राय समझ पाये। प्रभु शीघ्र ही गृहत्याग करेंगे। जानकर महादु:ख तथा विषाद से नित्यानन्द मृत प्राय: हो गये। प्रभु ने सबसे पहले श्रीनित्यानन्द को ही एकान्त में ले जाकर उनके मन की बात व्यक्त की—

श्रीनित्यानन्द से महाप्रभु की संन्यास के विधान की प्रार्थना—

प्रभु बोले शुन नित्यानन्द महाशय।
तोमारे कहिये निज हृदय - निश्चय॥
भाल से आइलाम आमि जगत तारिते।
तारण नहिले आइलाङ संहारिते॥
आमारे देखिया कोथा पाइब बन्ध-नाश।
एक गुण बन्ध आरो हैल कोटि पाश॥
आमारे मारिते यबे करिलेक मने।
तखनेइ पड़ि गेल अशेष-बन्धने॥
भाल लोक राखिते करिलुँ अवतार।
आपने करिलुँ सर्व जीबेर संहार॥
देख कालि शिखा-सूत्र सब मुण्डाइया।
भिक्षा करि बेड़ाइमु संन्यास करिया॥

ये ये जने चाहियाछे मोरे मारिबारे।
भिक्षुक हइमु कालि ताहार दुयारे॥
तबे मोरे देखि सेइ धरिब चरणे।
एइमते उद्धारिब सकल भुवने॥ (चै.भा.)

श्रीपाद! संन्यासी को तो सभी नमस्कार करते हैं, संन्यासी को और कोई भी प्रहार नहीं करता है। अत: संन्यासी बनकर मैं सभी के दरवाजे-दरवाजे पर भिक्षा माँगता फिरुँगा। मेरे दिल की बात तुम्हें बतायी, अवश्य ही मैं गृहस्थ धर्म त्यागकर संन्यास ग्रहण करुँगा। तुम मुझे जो करवाते हो मैं वही किया करता हूँ, तुम मुझे संन्यास ग्रहण का विधान दो। अवतार का उद्देश्य तुम तो सभी कुछ जानते हो, यदि जगत् का उद्धार चाहते हो, तो मेरे इस कार्य में बाधा मत डालना।

शुनि नित्यानन्द श्रीशिखर अन्तर्धान।
अन्तरे विदीर्ण हैल मन देह प्राण॥
कोन् विधि दिब किछ ना आइसे बदने।
अवश्य करिब प्रभु जानिलेन मने॥
नित्यानन्द बोले प्रभु तुमि इच्छामय।
तोमार ये इच्छा सेइ आमार निश्चय॥
विधि वा निषेध के तोमारे दिते पारे।
सेइ सत्य ये तोमार आछये अन्तरे॥
सर्वलोकपाल तुमि सर्वलोक नाथ।
भाल हये ये मते से विदित तोमा'त॥
ये रूपे करिबे तुमि जगत उद्धार।
तुमि से जानह ताहा के जानये आर॥ (चै.भा.)

फिर भी प्रभु तुम एक बार सभी वैष्णवों को तुम्हारे मन की अभिलाषा बताओ। कौन क्या कहता है, उसे सुनो। उसके बाद तुम्हारी जो इच्छा हो वही करना। तुम्हारी अबाधित इच्छा के प्रतिकूल किसी की कुछ करने की क्षमता या शक्ति नहीं है। नित्यानन्द का वाक्य सुनकर सन्तुष्ट होकर प्रभु उन्हें बार-बार आलिंगन करने लगे।

ग्रह छाड़िबेन प्रभु जानि नित्यानन्द।
वाक्य नाहि स्फुरे देह हइल निष्पन्द॥
स्थिर हइ नित्यानन्द गणे मने मने।
प्रभु गेले आइ प्राण धरिब केमने॥

केमते वञ्चिव आइ काल - दिन राति।
एतेक चिन्तिते मूर्च्छा पाय महामति॥
भाविया आइर दुःख नित्यानन्द राय।
निभृते बसिया प्रभु कान्दये सदाय॥ (चै.भा.)

प्रभु ने सभी पार्षदों से संन्यास की इच्छा ज्ञापित की। सभी महाविषाद से विह्वल हुये, लेकिन स्वेच्छामय प्रभु की इच्छा के प्रतिकूल कोई कुछ कहने का साहस नहीं कर सका। दुःख, विषाद से मृत प्राय होकर सभी ने आहार, निद्रा का त्याग कर दिया। प्रभु ने सभी को विभिन्न आश्वासन पूर्ण वाक्यों से सान्त्वना प्रदान की। शचीमाता के यह समाचार सुनकर महा व्याकुल होकर विलाप करते रहने पर प्रभु ने उनको सान्त्वना पूर्ण वाक्यों से आश्वस्त किया। जिस दिन संन्यास ग्रहण करेंगे, उस दिन शचीमाता, गदाधर, ब्रह्मानन्द, चन्द्रशेखर आचार्य तथा मुकुन्द इन पाँच लोगों को बताने का दायित्व नित्यानन्द को ही प्रभु ने सौंपा।

महाप्रभु ने निर्धारित दिन काटोया जाकर श्रीकेशव भारती के निकट संन्यास ग्रहण किया। श्रीकेशव भारती ने प्रभु के भुवन पावन श्रीकृष्णचैतन्य' नाम का प्रकाश किया।

चब्बिश वत्सर-शेष येइ माघ मास।
तार शुक्लपक्षे प्रभु करिला संन्यास॥
संन्यास करि प्रेमावेशे चलिला वृन्दावन।
राढ़ देशे तिन दिन करिला भ्रमण॥

★ ★ ★ ★ ★

परात्म निष्ठा मात्र वेश धारण।
मुकुन्द सेवाय हय संसार तारण॥
सेइ वेश कैल एवे वृन्दावने गिया।
कृष्ण निषेवण करि निभृते बसिया॥ (चै.भा.)

प्रेमोन्माद में महाप्रभु दिशाओं का होश खोकर तीन दिन अनाहार में, अनिद्रा में वृन्दावन गमन के आवेश में राढ़देश में घूम रहे हैं। श्रीनित्यानन्द, आचार्य रत्न तथा मुकुन्द ये तीन लोग प्रभु का पीछाकर रहे हैं। प्रेमोन्मादी प्रभु का कोई पता नहीं है। जो भी प्रभु का दर्शनकर रहे हैं वे ही प्रेमावेश में 'हरि हरि' बोल रहे हैं। कुछ गोप बालक गौचारण कर रहे हैं, प्रभु को देखकर वे उच्चस्वर से हरि ध्वनि कर रहे हैं। प्रभु उनके सिर पर हाथ रखकर 'बोल

बोल' कह रहे हैं; तथा उनको भाग्यवान कहकर स्तुति कर रहे हैं। चुपके से श्रीनित्यानन्द ने उन्हें सिखा दिया है, प्रभु श्रीवृन्दावन का रास्ता पूछें तो वे गंगा के किनारे का रास्ता दें।

तबु प्रभु पुछिलेन शुन शिशुगण।
कह देखि कोन पथे जाब वृन्दावन॥
शिशु सब गंगातीर पथ देखाइल।
सेइ पथे आवेशे प्रभु गमन करिल॥ (चै.च.)

श्रीनित्यानन्द ने आचार्यरत्न से कहा, 'तुम श्रीअद्वैताचार्य के पास जाकर बताओ, मैं प्रभु को लेकर उनके मन्दिर जाऊँगा। वह गंगा के किनारे नाव लेकर ठहरें। उसके बाद नवद्वीप जाकर शचीमाता के साथ सब विरह तापित भक्तों को शान्तिपुर में आचार्य के मन्दिर ले आना।' आचार्य रत्न को भेजकर श्रीनित्यानन्द ने प्रभु वृन्दावन गमन के आवेश में आविष्ट महाप्रभु के सामने आकर अपना परिचय प्रदान किया।

श्रीनित्यानन्द का प्रेमोन्मादी महाप्रभु को सुस्थिर करना, शचीमाता तथा भक्तवृन्दों को सान्त्वना—

प्रभु कहे श्रीपाद! तोमार कोथा के गमन।
श्रीपाद कहे तोमार संगे जाब वृन्दावन॥
प्रभु कहे कत दूरे आछे वृन्दावन।
तेंहो कहे कर एइ यमुना दर्शन॥
एत बलि ताँरे निल गंगा सन्निधाने।
आवेशे प्रभुर हैल गंगाय यमुना ज्ञाने॥
अहो भाग्य यमुनार पाइल दरशन।
एत बलि यमुनारे करेन स्तवन॥ (चै.च.)

गंगा को यमुना समझकर स्नान किया प्रभु ने। संग में दूसरा कौपीन तथा बहिर्वास नहीं था, इस अवसर पर श्रीअद्वैताचार्य नया कौपीन बहिर्वास लेकर नाव में चढ़ाकर उस स्थान पर आये। आचार्य के प्रभु के आगे आकर प्रभु को प्रणाम करके खड़े होने पर उनको देखकर संचय पूर्ण चित्त से प्रभु ने उनसे प्रश्न किया—

तुमि त अद्वैत गोंसाञि हेथा केन आइला।
आमि वृन्दावने तुमि केमते जानिला॥
आचार्य कहे तुमि याँहा सेइ वृन्दावन।
मोर भाग्ये गंगातीरे तोमार आगमन॥ (चै.च.)

गंगा का किनारा सुनकर प्रभु चौंक गये! प्रभु ने अभी यमुना का स्तव किया है, श्रीवृन्दावन आये हैं जानकर उनका चित्त ब्रजमाधुरी के आस्वादन के लिये अत्यधिक लोलुप हो गया था। अचानक आचार्य से वह गंगा के किनारे अवस्थान कर रहे हैं सुनकर मानो आसमान से धरती पर जा गिरे!

प्रभु कहे नित्यानन्द आमारे वांञ्चिला।
गंगाय आनिया मोरे यमुना कहिला॥
आचार्य कहे मिथ्या नहे श्रीपाद-वचन।
यमुनाते स्नान तुमि करिला एखन॥
गंगाय यमुना बहे हञा एक धार।
पश्चिमे यमुना बहे पूर्वे गंगाधार॥
पश्चिमे धारे यमुना बहे ताँहा कैला स्नान।
आर्द्र कौपीन छाड़ि शुष्क कर परिधान॥
प्रेमावेशे तिन दिन आछे उपवास।
आजि मोर घरे भिक्षा चल मोर वास॥
एक मुष्टि अन्न मुइ करियाछों पाक।
शुका-रुखा व्यञ्जन एक सूप आर शाक॥
एत बलि नौकाय चढ़ाइ निल निज घर।
पाद-प्रक्षालन कैल आनन्द अन्तर॥ (चै.च.)

इसके पश्चात् परम भक्ति में भरकर प्रभु को आचार्य ने विविध अन्न व्यंजन आदि भोजन कराकर स्वस्थ किया। नवद्वीप से शचीमाता तथा भक्तवृन्द आये तथा अद्वैताचार्य के घर पर शचीमाता ने कई दिन अपने हाथ से भोजन पकाकर प्रभु को प्रसाद सेवन कराया, इससे माता ने श्रीगौर-विरह तापित चित्त में कुछ शान्ति प्राप्त किया। भक्तवृन्दों ने भी प्रभु के दर्शन तथा उनके साथ नृत्य कीर्तन में आनन्द प्राप्त किया। प्रभु नित्यानन्द ने सभी के दिल में ही इसी प्रकार से आनन्द दान किया है इसी कारण वह यथार्थ में ही नित्यानन्द हैं। नित्यानन्द के बिना उनमें और कुछ भी नहीं—"नित्यानन्द बिना किछु नाहिक तोमार।"

श्रीमन्महाप्रभु ने माता की इच्छा से नीलाचल में ठहरने का संकल्प ग्रहण किया तथा आचार्य भवन से विदा लेकर नीलाचल के लिये प्रस्थान किया। अद्वैताचार्य ने श्रीनित्यानन्द प्रभु, जगदानन्द पण्डित, दामोदर पण्डित तथा मुकुन्द दत्त इन चार लोगों को प्रभु के साथ भेजा। नीलाचल गमन के

पथ पर श्रीमन्नित्यानन्द की भावोन्मत्तता श्रीचैतन्यभागवत में इस प्रकार से वर्णित हुई है—

नीलाचल गमन के पथ पर नित्यानन्द का प्रेमोन्माद—

चैतन्य आवेशे मत्त नित्यानन्द राय।
विह्वलेर प्राय व्यवसाय सर्वथाय॥
कखनो हुंकार करे कखनो रोदन।
क्षणे महा अट्टहास क्षणे वा गर्जन॥
क्षणे वा नदीर माझे एड़ेन साँतार।
क्षणे सर्व-अंगे धूला माखेन अपार॥
क्षणे वा आछाड़े खायेन प्रेम रसे।
चूर्ण हय अंग येन सर्वलोक वासे॥
आपना आपनि नृत्य करेन कखने।
टलमल करये पृथिवी सेइ क्षणे॥
ए सकल कथा ताने किछु चित्र नय।
अवतीर्ण आपने अनन्त महाशय॥
नित्यानन्द कृपाय ए सब शक्ति हय।
निरवधि गौरचन्द्र याहार हृदय॥

श्रीमन्महाप्रभु ने रेमुणा में आकर क्षीरचोरा गोपीनाथ का दर्शन किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरी के लिये गोपीनाथ ने जो खीर चोरी की थी, जो प्रभु ने अपने दीक्षा गुरु से सुनी थी, वह आख्यान सभी को सुनाकर परमानन्द दान किया। इसके बाद कटक आकर सभी ने साक्षी गोपाल का दर्शन किया तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु ने तीर्थ भ्रमण के समय लोगों के मुँह से साक्षी-गोपाल के वृन्दावन से ब्राह्मण की साक्षी देने के लिये पैदल विद्यानगर आगमन का विवरण जो सुना था, उसे महाप्रभु तथा भक्तगणों को श्रवण कराया।

श्रीमन्नित्यानन्द के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु के दण्ड भंग की बात का हमने पहले ही उल्लेख किया है। दण्ड भंग से प्रभु हल्का रोष प्रकट करके अकेले जगन्नाथ मन्दिर आये तथा जगन्नाथ का दर्शन करके प्रभु का महा भावावेश देखकर उस समय जगन्नाथ दर्शन में मग्न श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य प्रभु को अपने आवास पर ले गये। बाद में श्रीनित्यानन्द दल के साथ प्रभु से मिले। महाप्रभु फागुन तथा चैत्र दो महीने नीलाचल में ठहर कर वैशाख के प्रारम्भ में ही दक्षिण देश जाने के लिये तैयार हो गये। प्रभु के साथ कौन जायेगा, इसे

लेकर भक्तगणों के बीच आलोचना हुई। महाप्रभु के किसी को भी साथ में न लेकर अकेले ही जाने का मन बनाने पर श्रीपाद नित्यानन्द उसमें राजी नहीं हुये। दक्षिण के तीर्थस्थान सभी उनकी जानकारी में होने के कारण उन्होंने स्वयं महाप्रभु के साथ जाने के लिये प्रभु से अनुरोध किया। लेकिन महाप्रभु के उसमें राजी न होकर अकेले ही दक्षिण देश परिभ्रमण करने की इच्छा करने पर श्रीनित्यानन्द प्रभु उनसे बोले—

तबे नित्यानन्द कहे ये आज्ञा तोमार।
दुःख सुख हउक सेइ कर्त्तव्य आमार॥
किन्तु एक निवेदन करो आर बार।
विचार करिया ताहा कर अंगीकार॥
कौपीन बहिर्वास आर जल पात्र।
आर किछु संगे नाहि जाबे एइ मात्र॥
तोमार दुइ हस्त बद्ध नाम गणने।
जलपात्र बहिर्वास बहिबे केमने॥
प्रेमावेशे पथे तुमि हबे अचेतन।
जल पात्र वस्त्रेर केबा करिबे रक्षण॥
कृष्णदास नाम एइ सरल ब्राह्मण।
इहा संगे करि लह धर निवेदन॥
जल पात्र वस्त्र बहि तोमार संगे जाबे।
ये तोमार इच्छा कर किछु ना बलिबे॥ **(चै.च.)**

श्रीनित्यानन्द की प्रीति से प्रभु इसमें राजी हो गये। दक्षिण देश परिभ्रमण तथा सर्वत्र प्रेम प्रचार करते हुये प्रभु पुनः नीलाचल में लौट आये। आलाल नाथ में आकर कृष्णदास के द्वारा नित्यानन्द आदि सभी को अपने आने का समाचार दिया।

प्रभुर आगमन शुनि नित्यानन्द राय।
उठिया चलिला प्रेमे थेह नाहि पाय॥
जगदानन्द दामोदर पण्डित मुकुन्द।
वाचिया चलिला देहे ना धरे आनन्द॥
गोपीनाथाचार्य चले आनन्दित हञा।
प्रभुरे मिलिला सबे पथे लाग पाञा॥ **(चै.च.)**

इस प्रकार से प्रभु के नीलाचल में वापस लौटने पर विभिन्न दिशाओं देशों के नदियों का समूह जैसे समुद्र में आकर मिलता है, उसी प्रकार विभिन्न

स्थानों से समागत पार्षदगण नीलाचल में प्रभु के साथ आकर मिले। गौड़ के वैष्णवगण भी रथयात्रा के उपलक्ष्य में आये।

श्रीमन्नित्यानन्द श्रीचैतन्य के प्रेम रस में प्रमत्त होकर नीलाचल में सर्वत्र विचरण करते हैं। कभी जगन्नाथ को देखकर पकड़ने के लिये दौड़ते हैं। जगन्नाथ के द्वारपाल (पड़िछा) गण पकड़कर नहीं रख पाते हैं।

एकदिन उठिया सुवर्ण सिंहासने।
बलराम धरिया करिला आलिंगने॥
उठितेइ पड़िहारी धरिलेक हात।
धरिते पड़िल गिया हात पाँच सात॥
नित्यानन्द प्रभु बलरामेर गलार।
माला लइ परिलेन गले आपनार॥
माला परि चलिलेन गजेन्द्र गमने।
पड़िहारी उठिया चिन्तये मने मने॥
ए अवधूतेर कभु मानुषी शक्ति नय।
बलराम-स्पर्शे कि अन्येर देह रय॥
मत्त हस्ती धरि मुञि पारों राखिबारे।
मुञि धरिलेओ कि मनुष्य जाइते पारे॥
हेन मुञि हस्त दृढ़ करिया धरिलुँ।
तृण प्राय हइ गिया कोथाय पड़िलुँ॥
एइ मत चिन्ति पड़िहारी महाशय।
नित्यानन्द देखिलेइ करये विनय॥
नित्यानन्द स्वरूप स्वभाव बाल्य भावे।
आलिंगन करेन परम - अनुरागे॥ (चै.च.)

गौड़ के पार्षदों ने महाआनन्द के साथ नीलाचल में प्रभु के साथ चातुर्मास्य बिताया। प्रतिदिन अनन्त विसारी नीलसिन्धु में तथा महाप्रभु के भावसिन्धु में अवगाहन, रथयात्रा आदि में प्रभु का अद्‌भुत नृत्य-कीर्तन रंग का दर्शन, प्रतिदिन ही नयनों की चूसनी से प्रभु का रूपामृत तथा कर्णपात्र से प्रभु का कारुण्य से पूर्ण वचनामृत का पान। इस प्रकार उनके चार महीने एक पल की भाँति ही बीत गये।

एक दिन महाप्रभु नित्यानन्द लैया।
दुइ भाइ युक्ति कैल निभृते बसिया॥

किबा युक्ति कैल दोंहे केह नाहि जाने।
फले अनुमान पाछे कैल भक्त गणे॥
तबे महाप्रभु सब भक्ते बोलाइल।
गौड़ देशे जाह सभे विदाय करिल॥
सभारे कहिल प्रभु प्रत्यब्द आसिया।
गुण्डिचा देखिया जाबे आमारे मिलिया॥
नित्यानन्दे आज्ञा दिल जाह गौड़ देशे।
अनर्गल प्रेम भक्ति करिह प्रकाशे॥ (चै.च.)

श्रीमन्महाप्रभु का आदेश पाकर श्रीनित्यानन्द गौड़देश चले गये तथा प्रेमानन्द के रंग में सर्वत्र विचरण करने लगे।

प्रभु जननी तथा गंगा का दर्शन करके श्रीवृन्दावन जाने की अभिलाषा से जब बंगदेश (बंगाल) आये, तब पाणिहाटी गाँव में राघव पण्डित के घर पर श्रीमुख से श्रीनित्यानन्द की महिमा व्यक्त की—

राघव पण्डित से महाप्रभु का नित्यानन्द महिमा कथन—

राघव तोमारे आमि निज गोप्य कइ।
आमार द्वितीय नाहि नित्यानन्द बइ॥
एइ नित्यानन्द येइ करायेन आमारे।
से-इ करि, एइ आमि बलिल तोमारे॥
आमार सकल कर्म - नित्यानन्द द्वारे।
एइ आमि अकपटे कहिल तोमारे॥
येइ आमि सेइ नित्यानन्द भेद नाइ।
तोमार घरेइ सब जानिबा एथाइ॥
महायोगेन्द्रेरा याहा पाइते दुर्ल्लभ।
नित्यानन्द हैते ताहा हइबे सुलभ॥
एतेके हइया तुमि महा सावधान।
नित्यानन्द सेविह - येहेन भगवान्॥ (चै.भा.)

उस बार प्रभु का और वृन्दावन जाना सम्भव नहीं हुआ। कन्हाइ की नाट्यशाला से वह नीलाचल लौट गये। बाद में पुनः झाड़ खण्ड के रास्ते श्रीवृन्दावन आये तथा वृन्दावन दर्शन करके नीलाचल चले गये। यद्यपि श्रीनित्यानन्द प्रभु को बंगाल में रहकर प्रेम प्रचार का ही आदेश था, फिर भी नित्यानन्द जाकर प्रभु का दर्शन करते थे। अन्त्यलीला में महाप्रभु निरन्तर

एकान्त गम्भीरा में विरहिणी श्रीराधा के भाव में विभावित होकर स्वरूप दामोदर तथा रामानन्दराय के साथ ब्रजरस-सुधा के पान में निमग्न रहते थे। यही उनके अवतरण का आन्तरिक उद्देश्य था, गौड़ के वैष्णवगण प्रति वर्ष ही प्रभु के दशनार्थ नीलाचल जाते थे, श्रीपाद नित्यानन्द भी उन लोगों के साथ गौड़ तथा नीलाचल में आवागमन करते थे। प्रभु नीलाचल में गम्भीरा के मन्दिर में श्रीराधा के भाव में ब्रज रस-सुधासिन्धु में मग्न हैं। नित्यानन्द के अलावा उनके प्रेम प्रचार कार्य का और कोई इस प्रकार का सहायक कोई भी नहीं है। नित्यानन्द के अलावा निरानन्दमय जगत को नित्यानन्द दान से धन्य कौन करेगा? लेकिन वह भी श्रीकृष्णचैतन्य रस में मग्न होकर स्वच्छन्द गमन चारी स्वतन्त्र पक्षी की भाँति नीलाचल में विचरण करते थे। इस बारे में श्रीचैतन्यभागवत में लिखा हुआ है—

नित्यानन्द-महाप्रभु-परम उद्दाम।
सर्वनीलाचले भ्रमे' मा ज्योति धमि॥
निरवधि परमानन्द रसे उन्मत्त।
लखिते ना पारे केहो - अविज्ञात तत्त्व॥
सदाइ जपेन नाम- श्रीकृष्णचैतन्य।
स्वप्ने ओ नाहिक नित्यानन्द मुखे अन्य॥

श्रीनीलाचल नित्य आनन्दमय धाम है। जहाँ साक्षात् परमानन्दमय श्रीश्रीजगन्नाथ बलभद्रदेव विराजमान हैं। उनका दर्शन करने के लिये प्रतिदिन हजारों-हजारों आनन्दपूर्ण भक्तवृन्दों का आवागमन लगा रहता है। आनन्द में उन्मत्त सैकड़ों सेवक आनन्दमय के सेवानन्द में निरन्तर मग्न हैं। समीप ही अनन्त विसारी सुनील जलधि दर्शकों के नयनानन्द दाता हैं। उस आनन्दमय धाम में प्रेमानन्द से पूर्ण गम्भीरा में साक्षात् प्रेमानन्द रस-स्वरूप श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के चरण तले अवस्थान करके नित्यानन्द ने जिस आनन्द का अनुभव किया था, वह जीव शक्ति के लिये सर्वथा अविज्ञात है। महाज्योतिर्धाम परम उद्दाम प्रभु नित्यानन्द निरन्तर परमानन्द रस में उन्मत्त हैं!! विपुल आनन्दोच्छ्वास के साथ जिनके श्रीमुख में अविराम श्रीकृष्णचैतन्य नाम है। जो स्वयं नित्यानन्द हैं; जिनमें नित्यानन्द के सिवाय और कुछ भी नहीं है- उनके लिये हमें लगता है इस आनन्दमय स्थान का त्याग करके दूसरी जगह जाना सर्वथा असम्भव ही है। ऐसी हालत में एकदिन श्रीगौरसुन्दर ने एकान्त में उनसे कुछ मर्म की बात कही—

महाप्रभु का नित्यानन्द को गौड़देश में भेजना—

प्रभु बोले शुन नित्यानन्द महामति।
सत्वरे चलह तुमि नवद्वीप प्रति॥
प्रतिज्ञा करिया आछि आमि निज मुखे।
मूर्ख नीच दरिद्र भासाब प्रेम सुखे॥
तुमि ओ थाकिला यदि मुनि धर्म करि।
आपन-उद्दाम - भाव सब परिहरि॥
तबे मूर्ख नीच यत पतित संसार।
बोल देखि आर केबा करिब उद्धार॥
भक्ति रस दाता तुमि, तुमि सम्वरिले।
तबे अवतार वा कि निमित्त करिले॥
एतेके आमार वाक्य यदि सत्य चाओ।
तबे अविलम्बे तुमि गौड़ देशे जाओ॥
मूर्ख नीच पति दुःखित यत जन।
भक्ति दिया कर गिया सभार मोचन॥

हमने कहा है, श्रीनित्यानन्द के लिये आनन्दमय श्रीक्षेत्रधाम का त्याग करना सर्वथा असम्भव है, लेकिन जीव उद्धार ही जिनका विश्व में अवतरण का उद्देश्य है, उनके लिये अपनी सुखानुभाव प्रियता अत्यन्त तुच्छ वस्तु है। महानुभावगणों के हृदय की करुणा उनके अपने पक्ष को भुलाकर उन्हें जीवोद्धार के कार्य में नियोजित करती है। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु के इस आदेश को प्राप्त करते ही और किसी प्रकार का प्रतिवाद न करके गौड़देश को चल दिये।

आज्ञा पाइ नित्यानन्द चन्द्र सेइ क्षणे।
चलिलेन गौड़ देशे लइ निज गणे॥
रामदास गदाधरदास महाशय।
रघुनाथ वैद्य ओझा- भक्ति रसमय॥
कृष्ण दास पण्डित परमेश्वर दास।
पुरन्दर पण्डितेर परम उल्लास॥
नित्यानन्द स्वरूपेर यत आप्त गण।
नित्यानन्द संगे सभे करिला गमन॥ (चै.भा.)

श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु उनके पार्षदों के साथ गौड़देश के लिये चले। रास्ते में जाते ही श्रीनित्यानन्द ने समस्त पार्षदगणों को प्रेममय बना दिया। प्रेमावेश

में सभी देह स्मृति खो बैठे। देह में कितने ही सैकड़ों भावों का प्रकाश होना लगा उसका अन्त नहीं है।

नित्यानन्द के पार्षदों का प्रेमावेश—

प्रथमेइ वैष्णवाग्र गण्य रामदास।
तान देह हइलेन गोपाल-प्रकाश॥
मध्य पथे रामदास त्रिभंग हइया।
आछिला प्रहर - तिन बाह्य पासरिया॥
हइला राधिका भाव - गदाधर दासे।
'दधि के किनिब?' बलि महाअट्टहासे॥
रघुनाथ-वैद्य-उपाध्याय महामति।
हइलेन मूर्त्तिमती येहेन रेवती॥
कृष्णदास परमेश्वर दास दुइ जन।
गोपाल भावे है है करे सर्वक्षण॥
पुरन्दर पण्डित गाछेते गिया चड़े।
'मुञि रे अंगद' बलि लाफ दिया पड़े॥
एइ मत नित्यानन्द - श्रीअनन्त धाम।
सभारे दिलेन भाव परम - उद्दाम॥ (चै.भा.)

श्रीमन्नित्यानन्द की कृपा से गौड़ आने के पथ पर ही सब पार्षदगण देह-दैहिकादि की स्मृति खोकर अत्यन्त भावाविष्ट हो पड़े। वे प्रसिद्ध पथ छोड़कर दक्षिण में (दाँयें) बाँयें, कभी पीछे कोस-कोस रास्ता चलकर जब लोगों से पूछते थे, लोग कहते थे हाय! आप लोग रास्ता भटक कर काफी दूर निकल आये हैं। उनके सही रास्ता बताने पर वे लोग फिर वहाँ वापस लौटकर आते थे। अपनी देह की ही जब विस्मृति है तो रास्ते का और क्या! भूख, प्यास, भय, दु:ख इत्यादि देह का कर्म किसी में भी नहीं है, सभी परमानन्द, सुख में डूबे हुये हैं। इस प्रकार से गौड़देश आने के रास्ते में नित्यानन्द ने जिन सब लीलाओं को किया, अनन्त की वह नित्यानन्दमय अनन्त लीला सर्वथा दुर्ज्ञेय हैं अत: अवर्णनीय हैं।

पहले श्रीपाद नित्यानन्द ने गौड़देश में आकर पाणिहाटी गाँव में राघव पण्डित के घर में आश्रय लिया। पाणिहाटी में प्रेमी पार्षदगणों के साथ विह्वल अवस्था में सर्वदा हुंकार गर्जनादि के साथ नृत्य कीर्तन करने लगे। विशिष्ट कीर्तनीया गण भी आकर मिल गये। माधवघोष अत्यन्त विख्यात कीर्तनीया

थे धरती पर इस प्रकार का कीर्तनीया नहीं है, श्रीवृन्दावन के गायक के रूप में जिनकी अत्यन्त ख्याति थी। वह श्रीनित्यानन्द के महाप्रियतम पार्षद थे।

माधव गोविन्द वासुदेव - तिन भाइ!
गाइते लागिला नाचे ईश्वर निताइ॥
हेने से नाचेन अवधूत महाबल।
पद भरे पृथिवी करये टलमल॥
निरवधि 'हरि' बलि करेन हुंकार।
आछाड़ देखिया लोक लागे चमत्कार॥
याहारे करेन दृष्टि नाचिते नाचिते।
सेइ प्रेमे ढलिया पड़ये पृथिवीते॥
परिपूर्ण प्रेम रसमय नित्यानन्द।
संसार तारिते करिलेन शुभारम्भ॥

पाणिहाटी में नित्यानन्द का महाभिषेक—

इस शुभारम्भ की पूर्व बेला में श्रीनित्यानन्द की आज्ञा से उनका मस्तकाभिषेक कार्य प्रारम्भ हुआ। श्रीराघव पण्डितादि पार्षदगण विभिन्न गन्ध द्रव्यों से सुगन्धित हजारों कलश गंगाजल से प्रभु का अभिषेक करने लगे। यहाँ हरि ध्वनि से जमीन आसमान गूँज गया। अभिषेक के मन्त्र का पाठ करते हुये परमानन्द के साथ सभी ने प्रभु का अभिषेक किया। अभिषेक के अन्त में नये वस्त्र धारण करवाकर भक्तगणों ने चन्दन माला से प्रभु का श्रीअंग भूषित किया। इसके पश्चात् सोने की खटिया पर प्रभु नित्यानन्द के बैठने पर श्रीराघवानन्द ने सिर पर छत्र धारण किया। महा जय-जय की ध्वनि से त्रिभुवन व्याप्त हो गया। चारों ओर सभी आनन्दाश्रु विसर्जन करने लगे। इस प्रकार से पार्षदगणों ने श्रीमन्नित्यानन्द को प्रेमभक्ति राज्य के सम्राट के रूप में प्रतिष्ठित किया।

अत्यन्त आश्चर्य जनक घटना—

इस समय दो आश्चर्यजनक अलौकिक घटना घटी। प्रभु ने श्रीराघव पण्डित को अचानक कदम्ब की माला लाने का आदेश किया। राघव पण्डित हाथ जोड़ कर बोले, प्रभो! अब तो कदम्ब के फूल का मौसम नहीं है। प्रभु बोले, 'घर के अन्दर जाओ, देखो, यदि दैवयोग से कहीं किसी स्थान पर फूल खिला हो!' राघव पण्डित ने उनके घर में आकर देखा, नींबू के पेड़ पर

अनगिनत महा सुगन्धित कदम्ब के फूल खिलें हुये हैं। अत्यन्त आश्चर्य देखकर राघव आनन्द के सागर में बहकर माला पिरोकर प्रभु के पास लाने पर प्रभु ने परम सन्तोष के साथ वह माला पहनी। भक्तवृन्द इस अलौकिक घटना से सभी विह्वल हुये।

कुछ देर बाद एक और महा आश्चर्यजनक घटना घटी। प्रभु बोले, "भक्तवृन्द! तुम लोग क्या कोई दूसरे प्रकार की सुगन्ध अनुभव कर रहे हो?' भक्तवृन्द बोले, 'हाँ प्रभु दमनक फूल की सुगन्ध स्पष्ट अनुभव हो रही है। प्रभु बोले! हाँ, बिल्कुल वही। महाप्रभु आज तुम लोगों का कीर्तन सुनने के लिये नीलाचल से आकर एक वृक्ष का सहारा लिये हुये थे। उनके गले में दमनक फूल की माला थी। उसकी सुगन्ध से ही स्थान सुगन्धित बनी हुई है। इसी प्रकार से प्रभु तुम लोगों का कीर्तन सुनने के लोभ से बार–बार तुम्हारे निकट आते रहते हैं, क्यों कि तुम सब छोड़कर सभी निरन्तर कृष्ण कीर्तन किया करते हो। तुम सभी की देह निरन्तर श्रीकृष्णचैतन्य के यश तथा प्रेम रस से पूर्ण हो। भक्तगणों को इस प्रकार का आशीर्वाद देकर प्रभु ने हरि कहते हुये हुंकार किया तथा सर्वत्र कृष्ण प्रेम का विस्तार किया। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु की प्रेम पूर्ण कृपा दृष्टि से सर्वत्र ही कृष्ण प्रेम का संचार हुआ तथा सभी को अत्यन्त ही आत्म–विस्मृति हो गयी। प्रभु ने सभी को ब्रज के सर्वोत्कृष्ट गोपी–आनुगत्यमयी मधुर जातीय सुदुर्लभ प्रेमदान से धन्य किया। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने लिखा है–

श्रीनित्यानन्द का सर्वत्र दुर्लभ भक्ति का प्रचार–

शुन शुन आरे भाइ नित्यानन्द शक्ति।
ये रूपे दिलेन सर्व जगतेरे भक्ति॥
ये भक्ति गोपिका गणेर कहे भागवते।
नित्यानन्द हैते ताहा पाइल जागते॥ (चै.भा.)

नित्य आनन्द स्वरूप प्रभु नित्यानन्द की कृपा की सर्वश्रेष्ठ महिमा या प्रभाव यही है, कि उन्होंने ब्रज के उन्नत–उज्ज्वल रस–गर्भा गोपियों की आनुगत्यमयी प्रेम या श्रीमन्महाप्रभु की अनर्पितचरी करुणा का अवदान राधादास्य के दान से इस युग के मनुष्यों को धन्य या कृतार्थ किया है। प्रभु ने जिनके साथ लगातार प्रेम प्रचार का कार्य किया था, उन पार्षदगणों के देह

मन में पहले अलौकिक प्रेम भक्ति का संचार किया था। श्रीचैतन्यभागवत में वर्णित है—

नित्यानन्द बसिया आछेन सिंहासने।
सम्मुखे करये नृत्य पारिषद गणे॥
केहो गिया वृक्षेर उपर डाले चढ़े।
पाते पाते बेड़ाय तथापि नाहि पड़े॥
केहो केहो प्रेम सुखे हुंकार करिया।
वृक्षेर उपरे थाकि पड़े लाफ दिया॥
केहो वा हुंकार करि वृक्ष मूल धरि।
उपड़िया फेले वृक्ष बलि 'हरि हरि'॥
केह वा गुवाक वने जाय रड़दिया।
गाछ पाँच सात गुया एकत्र करिया॥
हेन से देहेते जन्मियाछे प्रेम बल।
तृण प्राय उपड़िया फेलेन सकल॥
अश्रु, कम्प, स्तम्भ, धर्म, पुलक हुंकार।
स्वर भंग, वैवर्ण्य, गर्ज्जन, सिंह सार॥
श्रीआनन्द मूर्च्छा आदि यत प्रेम भाव।
भागवते कहे येत कृष्ण अनुराग॥
सभार शरीरे पूर्ण हइल सकल।
हेन नित्यानन्द स्वरूपेर प्रेम-बल॥

इस स्थान पर श्रीमन्नित्यानन्द की अपार महिमा, अलौकिक तथा असाधारण रूप से व्यक्त हुई है। साधारणतया हम जड़ देह से जो शक्ति देख पाते हैं, वह देह से ही उत्पन्न होती है, अतः वह जड़ीय शक्ति है। इस शक्ति का प्रभाव या सामर्थ्य बहुत थोड़ा है, वह देह की पुष्टि के अनुसार यथा सम्भव प्रकाशित होती है! जैसे पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, उसी प्रकार मानव देह में प्रेम का आविर्भाव होने पर उस प्रेम के स्पर्श से जड़ देह में भी चिन्मयता आ जाती है। तब उस देह में जिस असाधारण अलौकिक शक्ति का विकास दिखायी पड़ता है, वह अत्यन्त अद्‌भुत है- जड़ीय शक्ति के साथ उसकी कोई तुलना नहीं होती। शक्ति का मूल अधिष्ठान क्षेत्र जड़ नहीं है, चिद्‌वस्तु ही शक्ति की मूल अधिष्ठान भूमि है। चिद्‌वस्तु के सारों का सार प्रेम की शक्ति सबसे अधिक होती है। जो प्रेम सर्वशक्तिमान्, विभु तथा स्वतन्त्र श्रीभगवान् तक को निरन्तर अधीन करके रखता है,

अत्यन्त कमजोर शरीर में भी यदि उस प्रेम का आविर्भाव होता है तब वही हजारों गजेन्द्र की शक्ति से शक्तिमान् हो उठता है! अत: श्रीनिताइचाँद के प्रेममय पार्षद गण विशाल वृक्ष को तिनके की भाँति उखाड़ देंगे– यह कुछ भी असम्भव या अविश्वास के योग्य नहीं है।

फल स्वरूप श्रीमन्नित्यानन्द के प्रधान पार्षदगणों में सभी शक्तियों का आविर्भाव हुआ। वे सभी सर्वज्ञ तथा वाक्य सिद्ध हो गये। सभी कामदेव की भाँति अत्यन्त सुन्दर हो गये। वे जिसको भी स्पर्श करते हैं वही देह–दैहिकादि सब भूलकर प्रेम में विह्वल हो जाता है। प्रभु निताइचाँद ने अपनी ही भाँति सभी पार्षदगणों को भी अत्यधिक प्रेमानन्दमय बना दिया! इस प्रकार श्रीमन्नित्यानन्द ने तीन महीने पाणिहाटी गाँव में रहकर भक्ति का प्रचार किया। इन तीन महीने वहाँ किसी के भी शरीर में बाह्यज्ञान नहीं था; तीन महीने किसी के भी शरीर में आहार, निद्रा की चेष्टा दिखायी नहीं पड़ी थी। इन लम्बे तीन महीने की अवधि में सभी रात दिन नृत्य कीर्तनानन्द में विभोर थे। पलभर की भाँति ये तीन महीने गुजर गये थे।

इसके पश्चात् इच्छामय प्रभु श्रीनिताइचाँद की अपने श्रीअंग में अलंकार धारण करने की इच्छा जाग्रत हुई! उनकी इच्छा के उन्मेषमात्र से ही सोने, चाँदी, हीरे, जवाहरात, पन्ना, मणि, मूँगा आदि के अलंकार, मोतियों की माला, अत्यन्त कीमती पट्टवस्त्रादि प्रभु के श्रीचरणों में भेंट प्रदान कर पुण्यवान लोग प्रणाम करने लगे। श्रीचैतन्यभागवत में प्रभु के अलंकार परिधान का वर्णन इस प्रकार दिखायी पड़ता है—

श्रीनित्यानन्द का अलंकार धारण—

दुइ हस्ते सुवर्णेर अंगद बलय।
पुष्ट करि परिलेन आत्म-इच्छामय॥
सुवर्ण मुद्रिका रत्ने करिया खिचन।
दश-श्रीअंगुले शोभा करे विभूषण॥
कण्ठे शोभा करे बहुविध दिव्यहार।
मणि मुक्ता प्रवालादि-यत सर्वसार॥
रुद्राक्ष विराल-अक्ष सुवर्ण रजते।
बान्धिया धरिला कण्ठे महेशेर प्रीते॥
मुक्ता कसा - सुवर्ण करिया सुरचन।
दुइ श्रुति मूले शोभे परम शोभन॥

पाद पद्मे रजत नूपुर विलक्षण।
तदुपरि बंक शोभे जगत मोहन॥
शुक्ल पट्ट नील पीत - बहुविध वास।
अपूर्व शोभये परिधानेर विलास॥
मालती मल्लिका यूथी चम्पकेर माला।
श्रीवक्षे करये दोल आन्दोलन खेला॥
गोरोचना-सहित चन्दन दिव्य गन्धे।
विचित्र करिया लेपिया छेन श्रीअंगे॥
प्रसन्न श्रीमुख-कोटि शशधर जिनि।
हासिया करेन निरवधि हरिध्वनि॥
ये दिगे चाहेन दुइ कमल नयने।
सेइ-दिगे प्रेम रसे भासे सर्वजने॥

प्रभु ने श्रीबलदेव के आवेश में विभिन्न अलंकार धारण किया। नित्यानन्द के पार्षदगण सभी ब्रज के सखा, गोपाल के अंश कला हैं। उन्होंने भी यथायोग्य अलंकार धारण किया तथा सींगा, बैंत, वेणु, गुञ्जा (वैजयन्ती) माला तथा बाँधने की रस्सी इत्यादि धारण किया। इस तरह से श्रीमन्नित्यानन्द पार्षदगणों के साथ गंगा के दोनों किनारे स्थित सभी गाँवों में भक्तगणों के घर-घर में अत्यन्त अद्‌भुत संकीर्तन विलास करने लगे। बालक-जीवन प्रभु निताइ ने गृहस्थों के शिशुगणों के अन्दर भी अद्‌भुत प्रेम शक्ति का संचार किया। शिशुगण भी हुंकार करके महावृक्ष समूह को उखाड़ फेंकते थे तथा स्वच्छन्द रूप से गोपाल के आवेश में इधर-उधर विचरण करते थे। सौ लोग भी एक शिशु को पकड़ नहीं पाते थे। "जय श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द" कहकर सिंहनाद करते थे। एक-एक बालक एक महीने तक भी भोजन नहीं करता था, प्रभु अपने हाथ से भोजन कराते थे। किसी बच्चे को अपने पास बाँधकर रखते थे, मारते थे फिर भी बच्चे अट्टहास्य करते रहते थे।

प्रभु एकदिन गोपी भावाविष्ट श्रीगदाधरदास के घर गये तथा उनके घर की श्रीबालगोपाल मूर्त्ति को वक्ष में धारण करके गोपाल के आवेश में हुंकार करके नृत्य आरम्भ किया। माधवानन्द घोष सुरीले गले से श्रीकृष्ण की दानलीला का गान करने लगे तथा प्रभु ने अद्‌भुत नृत्य कला प्रदर्शित करके नर-नारी मात्र को प्रेम सुख में प्रवाहमान किया। श्रीगदाधरदास परानन्द में मतवाले थे, रात के समय 'हरि ध्वनि करते-करते महा हिन्दू विद्वेषी काजी के

घर में घुसकर तिरस्कार करके काजी को हरिनाम लेने का उपदेश किया। प्रेमाविष्ट गदाधर को देखकर तथा उनकी बातें सुनकर काजी स्तम्भित हो गया।

हासि बोले काजी" शुनदासगदाधर।
कालि बलिबाङ 'हरि' आज जाह घर॥
हरिनाम मात्र शुनिलेन तार मुखे।
गदाधर दास पूर्ण हैला प्रेम सुखे॥
गदाधरदास बोले आर कालि केने।
एइत बलिला हरि आपन बदने॥
आर तोर अमंगल नाहि कोन क्षणे।
यखन करिला हरि नामेर ग्रहणे॥

इस प्रकार से प्रभु निताइचाँद ने अपने आश्रित दास गणों के द्वारा यवन को भी हरिभक्ति दान कर धन्य किया। इसके पश्चात् प्रभु ने खड़दह ग्राम में भक्ति का प्रचार करके सप्त ग्राम में आकर श्रीउद्धारण दत्त के घर में ठहर कर महा संकीर्तना नन्द में विहार किया तथा सभी वणिकों (वैश्य वर्ग) को अतिदुर्लभ प्रेमभक्ति दान से धन्य किया। श्रीनित्यानन्द को देखकर आचार्य हरिध्वनि करके विशाल हुंकार गर्जन करने लगे। दोनों ही परस्पर के दर्शन से दर्शन के आनन्द में विवश होकर परस्पर को जकड़कर आँगन में लोट लगाने लगे। कुछ देर में आचार्य ने थोड़ा स्थिर होकर श्रीनित्यानन्द की स्तुति आरम्भ की—

तुमि नित्यानन्द-मूर्त्ति नित्यानन्द नाम।
मूर्त्तिमन्त तुमि चैतन्येर गुण ग्राम॥
सर्वजीव-परित्राण तुमि महा हेतु।
महा प्रलयेते तुमि सत्य धर्म सेतु॥
तुमि से बुझाओ चैतन्येर प्रेम भक्ति।
तुमि से चैतन्य-वक्षे धर पूर्ण शक्ति॥
ब्रह्मा शिव-नारदादि 'भक्त' नाम यार।
तुमि से परम उपदेष्टा सभाकार॥
विष्णु भक्ति सभेइ लयेन तोमा हैते।
तथापिह अभिमान ना स्पर्शे तोमाते॥
पतित पावन तुमि दोषदृष्टि शून्य।
तोमारे से जाने यार आछे बहु पुण्य॥

★ ★ ★ ★ ★

मूर्ख नीच अधम पतित उद्धारिते।
तुमि अवतीर्ण हइयाछ पृथिवीते॥
ये भक्ति वाञ्छये योगेश्वर-सब मने।
तोमा' हैते पाइषेक ताहा ये-ते-जाने॥ (चै.भा.)

श्रीमन्नित्यानन्द श्रीअद्वैताचार्य के साथ रहस्यमय कृष्ण कथा के रंग में अशेष प्रकार से उनको आनन्ददान करके श्रीनवद्वीप धाम आये तथा पहले श्रीनित्यानन्द ने शचीमाता के पास जाकर उनकी श्रीचरणवन्दना की—

आइ बोले 'बाप! तुमि सत्य अन्तर्यामी।
तोमारे देखिते इच्छा करिलाङ आमि॥
मोर चित्त जानि तुमि आइला सत्वर।
के तोमा' चिनिते पारे संसार भितर॥
कथोदिन थाक बाप! एइ नवद्वीपे।
येन तोमा' देखों मुञि दशे पक्षे मासे॥
मुञि दुःखितेर इच्छा तोमारे देखिते।
दैवे तुमि आसियाछ दुःखित तारिते॥
शुनिया आइर वाक्य हासे नित्यानन्द।
ये जाने आइर प्रभावेर आदि अन्त॥
नित्यानन्द बोले शुन आइ सर्वमाता।
तोमारे देखिते मुञि आसियाछों हेथा॥
मोर इच्छा तोमा' देखि थाकिब एथाय।
नवद्वीपे थाकिलाम तोमार आज्ञाय॥ (चै.भा.)

शचीमाता की इच्छा से श्रीनित्यानन्द कुछ दिन नवद्वीप में रहकर पार्षदगणों के साथ प्रति घर-घर में कीर्तनानन्द के साथ विहार करने लगे। उस नवद्वीप में एक महादस्यु ब्राह्मण कुमार ने प्रभु के श्रीअंग में मणि-मुक्तादि का महार्घ्य अलंकार देखकर दस्युओं के साथ उनका हरण करने की योजना बनायी। धन हरण की आकांक्षा से विभिन्न बहाने से वह दस्यु नित्यानन्द के साथ-साथ घूमने लगा। अन्तर्यामी प्रभु उसके दिल की बात जानकर ऐकान्त में हिरण्य पण्डित नामक एक दरिद्र ब्राह्मण के घर पर रहने लगे। एकदिन उस दस्यु सेनापति ने रात में दस्युओं के साथ एकत्रित होकर प्रभु सो गये हैं या नहीं देखने के लिये एक दूत को भेजा। तब प्रभु भोजन कर रहे थे, तथा पार्षदगण महानन्द के साथ चारों तरफ मतवाले होकर हुंकार गर्जन हास्य रोदन आदि

कर रहे थे। यह समाचार पाकर दस्युगण उनके भोजन के पश्चात् विश्राम की प्रतीक्षा में ऐसा सो गये कि सुबह उनकी नींद टूटने पर वे भाग गये। और एकदिन उन्होंने उत्तम रूप से चण्डी की आराधना करके गहरी रात में प्रभु के विश्राम घर के पास आकर महाशक्तिशाली प्रकाण्ड मूर्त्ति अनेकों अस्त्रधारी सैन्य समूह को हरिनाम कीर्तन करते हुये प्रभु के पहरे में लगे हुये देखा। उस दिन भी वे भाग गये, कुछ दिन बाद घनी रात को हमला करने आकर सभी अन्धे हो गये तथा आँधी-तूफान, बरसात, ओला तथा बिजली गिरने से वे मृत प्राय हो गये। तब दस्य सेनापति को ज्ञान का उदय हुआ तथा मन ही मन श्रीनिताइ के चरणों में शरणागत होते ही सारा उपद्रव शान्त हो गया। दूसरे दिन प्रात:काल ही उस दस्यु सेनापति ने रोते-रोते प्रभु के चरणों में शरणागत होकर निष्कपट रूप से उनसे सभी कुछ स्पष्ट करके कहा तथा उच्चस्वर से रोदन करते हुये पतित पावन निताइचाँद के चरणों में शरणागत हुआ।

नित्यानन्द महाप्रभु- करुणा सागर।
पाद पद्म दिला तार मस्तक उपर॥
चरणारविन्द पाइ मस्तके प्रसाद।
ब्राह्मणेर खण्डिल सकल अपराध॥
सेइ विप्रद्वारे यत चोर दस्यु गण।
धर्म पथ लइलेन चैतन्य-शरण॥
डाका चुरि पर हिंसा चाड़ि अनाचार।
सभेइ हइल अति साधु व्यवहार॥
सभेइ लयेन हरिनाम लक्ष लक्ष।
सभे हइलेन विष्णु भक्ति योग दक्ष॥
योगेश्वर सबे वाञ्छे ये प्रेम विकार।
ये अश्रु ये कम्प ये वा पुलक हुंकार॥
चोर - डाकाइतेर हैल सेइ भक्ति।
हेन प्रभु-नित्यानन्द स्वरूपेर शक्ति॥ (चै.भा.)

इस प्रकार प्रभु नित्यानन्द गौड़ (बंगाल) के प्रत्येक गाँव में पार्षदगणों के साथ संकीर्तनानन्द की मस्ती में विहार करने लगे। खाना जोड़ा, बड़ गाछि, दोगाछिया, कुलिया इत्यादि गाँव में प्रभु ने अद्‌भुत कीर्तनानन्द रस का आस्वादन तथा प्रेम वितरण किया। इस तरह से बंगाल में सर्वत्र प्रेम प्रचार करके श्रीगौरचन्द्र के दर्शन के लिये नीलाचल की ओर चले। परम विह्वल

पार्षदों के साथ नृत्य, कीर्तन, हुंकार, गर्जन, आनन्द-क्रन्दन की मस्ती में शीघ्र ही नीलाचल जा पहुँचे। कमलपुर में आकर श्रीमन्दिर का शिखर दर्शन करके प्रेमानन्द से नित्यानन्द मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छा भंग होने पर रोते-रोते श्रीकृष्णचैतन्य कहकर हुंकार करने लगे। श्रीनित्यानन्द का शुभागमन जानकर महाप्रभु अकेले उनके पास आये। दोनों ही एक दूसरे को देखकर परमानन्द के साथ 'हरि' बोलते हुये सिंहनाद करने लगे। दोनों ही एक दूसरे को दण्डवत् प्रणाम तथा परिक्रमा करने लगे। दोनों ही प्रेमानन्द से आलिंगन बद्ध होकर परमानन्द से लोट लगाने लगे। दोनों के ही श्रीअंग में अष्ट सात्त्विक विकार व्याप्त हो गया। थोड़ा स्थिर होकर श्रीगौरहरि ने श्रीमन्नित्यानन्द की स्तुति आरम्भ की।

नाम रूपे तुमि नित्यानन्द मूर्त्तिमंत।
श्रीवैष्णव धाम तुमि-ईश्वरे अनन्त॥
यह किछु तोमार श्रीअंगे अलंकार।
सत्य सत्य सत्य भक्ति योग-अवतार॥
स्वर्ण-मुक्ता-रूपा-कसा-रुद्राक्षादि-रूपे।
नवविध-भक्ति धरि आछ निज सुखे॥
नीच जाति पतित अधम यत जन।
तोमा' हैते सभार हइल विमोचन॥
ये भक्ति दियाछ तुमि वणिक सभारे।
ताहा वाञ्छे सुर सिद्ध मुनि योगेश्वरे॥
स्वतन्त्र करिया वेदे ये कृष्णेरे कय।
हेन कृष्ण पार तुमि करिते विक्रय॥
तोमार महिमा जानिबार शक्ति कार।
मूर्त्तिमंत तुमि कृष्णरस-अवतार॥
बाह्य नाहि जान तुमि संकीर्त्तन-सुखे।
अहर्निश कृष्ण गुण तोमार श्रीमुखे॥
कृष्णचन्द्र तोमार हृदये निरन्तर।
तोमार विग्रह कृष्ण विलासेर घर॥
अतएव तोमारे ये जने प्रीति करे।
सत्य सत्य कभु कृष्ण ना छाड़ेन ताँरे॥ (चै.भा.)

श्रीमन्महाप्रभु के मुख से इस प्रकार की स्तुति सुनकर परम विनय, दैन्य के साथ निताइचाँद बोले, "प्रभु! तुम मेरी इस प्रकार से स्तुति करते हो, यह

तुम्हारी भक्त वत्सलता के अलावा और कुछ भी नहीं है। तुम मेरी परिक्रमा करो, नमस्कार करो, मारो, रखो, तुम स्वेच्छामय हो, तुम्हारे आचरण के ऊपर किसी का भी कुछ करने का नहीं है। तुमने ही मुझे मुनि का धर्म छुड़ाकर इस प्रकार सजाया है। प्रभु! तुम मुझे जिस तरह से नचाते हो मैं उसी तरह नृत्य किया करता हूँ। व्यवहारी लोग मुझे देखकर परिहास करते हैं।"

प्रभु बोले, तुम्हारे श्रीअंग का अलंकार नवविधा भक्ति के अलावा और कुछ भी नहीं है, तुमने नन्द के गोष्ठ में बैठकर वृन्दावन की लीला के सुख में इन सभी अलंकारों को धारण किया है। तुम्हारे साथीगण भी सब ब्रज के गोपाल हैं। अतः तुम्हारे तथा तुम्हारे सेवकों के साथ जो प्रीति करते हैं, वे निश्चय ही मुझे भी प्रीति करते हैं। इस प्रकार अनेकों बातचीत के पश्चात् श्रीगौरसुन्दर अपने घर चले गये तथा श्रीमन्नित्यानन्द परमानन्दित मन से श्रीजगन्नाथ दर्शन के लिये गये।

जगन्नाथ देखि मात्र नित्यानन्द राय।
आनन्दे विह्वल हइ गड़ागड़ि जाय॥
आछाड़ पड़ेन प्रभु प्रस्तर-उपरे।
शत जने धरिले ओ धरिते ना पारे॥
जगन्नाथ बलराम सुभद्रा सुदर्शन।
सभा' देखि नित्यानन्द करेन क्रन्दन॥
सभार गलार माला ब्राह्मणे आनिया।
पुनः पुनः देन सभे प्रभाव जानिञा॥
नित्यानन्द देखि यत जगन्नाथ दास।
सभार जन्मिला अति-परम-उल्लास॥
ये जन ना चिने, से जिज्ञासे कारो ठाँइ।
सबे कहे एइ कृष्ण चैतन्येर भाइ॥
नित्यानन्द-स्वरूपों सबारे करि कोले।
सिञ्चिला सभार अंग नयनेर जले॥ (चै.भा.)

इसके पश्चात् श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीगदाधर के दर्शन के लिये उनके भवन गये; वहाँ गदाधर के द्वारा सेवित श्रीश्रीगोपीनाथ का अनौखा माधुर्य दर्शन करके आनन्द के आँसुओं से भीग गये। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के आने की बात सुनकर श्रीगदाधर श्रीभागवत का पाठ छोड़कर अतिशीघ्र उनके पास आये। दोनों का दर्शन करके दोनों आनन्द के सागर में प्रवाहमान हो गये।

दोंहे मात्र देखिया दोंहार श्रीबदन।

गला धरि लागिलेन करिते क्रन्दन।
अन्योन्ये दुइ प्रभु करे नमस्कार।
अन्योन्ये दोंहे बले महिमा दोंहार॥
केहो बले आजि हैल लोचन निर्मल।
केहो बले आजि हैल जनम सफल॥
बाह्यज्ञान नाहि दुइ प्रभुर शरीरे।
दुइ प्रभु भासे भक्ति आनन्द-सागरे॥
हेन से हइल प्रेम भक्तिर प्रकाश।
देखि चतुर्दिगे पड़ि कान्दे सब दास॥
कि अद्‌भुत प्रेम नित्यानन्द-गदाधरे।
एकेर अप्रिय आरे सम्भाषा ना करे॥
गदाध-देवेर संकल्प एइ रूप।
नित्यानन्द-निन्दकेर ना देखेन मुख॥
नित्यानन्द-स्वरूपेरे प्रीति यार नाञि।
देखाओ ना देन तारे पण्डित - गोसाञि॥ (चै.भा.)

इसके पश्चात् दोनों प्रभु सुस्थिर होकर बैठकर श्रीचैतन्य कथा के रस में प्रवाहमान हो गये। श्रीगदाधर ने उस दिन श्रीनित्यानन्द को निमन्त्रण दिया।

श्रीमन्नित्यानन्द गदाधर को देने के लिये अत्यन्त यत्न के साथ कुछ अत्यन्त उत्तम किस्म के चावल तथा श्रीगोपीनाथ के लिये एक अति सुन्दर रंगीन कपड़ा गौड़देश से लेकर आये थे। गदाधर श्रीगोपीनाथ के श्रीअंग में वस्त्र परिधान करवाकर आनन्द के सागर में प्रवाहित हो गये तथा चावलों की अत्यन्त प्रशंसा करके रन्धन कार्य करने लगे।

गोपीनाथ-अग्रे लञा भोग लागाइला।
हेन काले गौरचन्द्र आसिया मिलिला॥
प्रसन्न श्रीमुखे 'हरे कृष्ण कृष्ण' बलि।
विजय हइला गौरचन्द्र कुतूहली॥
'गदाधर गदाधर' डाके गौरचन्द्र।
सम्भ्रमे वन्देन गदाधर पदद्वन्द्व॥
हासिया बलेन प्रभु केन गदाधर।
आमि कि ना हइ निमन्त्रणेर भितर॥
आमि त तोमरा दुइ हैते भिन्न नइ।
ना दिले ओ तोमरा बलेते आमि खाइ॥

नित्यानन्द द्रव्य - गोपीनाथेर प्रसाद।
तोमार रन्धन - मोर इथे आछे भाग॥ (चै.भा.)

श्रीमन्महाप्रभु का कृपा वाक्य सुनकर गदाधर आनन्द के सागर में प्रवाहित हो गये। परमानन्द के सहित प्रसाद लाकर प्रभु को निवेदन किया। चावल की सुगन्ध से वह स्थान भर गया; प्रभु चावल की प्रशंसा करते हुये प्रसाद ग्रहण करने बैठ गये। श्रीनित्यानन्द के द्वारा लाये गये चावल के आकर्षण से प्रभु स्वयं आकर वह प्रसाद भोजन करने लगे।

नित्यानन्द स्वरूपेर तण्डुलेर प्रीते।
बसिलेन महाप्रभु भोजन करिते॥
दुइ प्रभु भोजन करेन दुइ पाशे।
सन्तोषे ईश्वर अन्न-व्यञ्जन प्रशंसे॥
प्रभु बोले ए अन्नेर गन्धे ओ सर्वथा।
कृष्ण भक्ति हय इथे नाहिक अन्यथा॥
गदाधर! कि तोमार मनोहर पाक।
आमित एमत कभु नाहि खाइ शाक॥
गदाधर! कि तोमार विचित्र रन्धन।
तेंतुलि पत्रेर कर एमत व्यञ्जन॥
बुझिलाम वैकुण्ठे रन्धन कर तुमि।
तबे आर आपनारे लुकाओ वा केनि॥ (चै.भा.)

इस प्रकार विविध हास्य-परिहास रस में तीनों प्रभु ने एक साथ भोजन किया। भोजन के अन्त में प्रभु गणों के आचमन करने पर भक्तगण मुक्तावशिष्ट ग्रहण करके धन्य हुये। श्रीचैतन्य-नित्यानन्द तथा गदाधर इनकी पारस्परिक प्रीति यही जानते हैं। श्रीगौरांगदेव अचानक किसी के सामने यह सब गूढ़तत्त्व नहीं प्रकट करते। श्रीगदाधर की कृपादृष्टि पात से श्रीनित्यानन्द की कृपा से गदाधर तत्त्व के बारे में ज्ञात हुआ जाता है।

हेन मते नित्यानन्द - प्रभु नीलाचले।
विहरेन गौरचन्द्र संगे कुतूहले॥
तिन जन एकत्रे थाकेन निरन्तर।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द गदाधर॥
जगन्नाथ एकत्रे देखेन तिन जने।
आनन्दे विह्वल सबे मात्र संकीर्तने॥ (चै.भा.)

इस प्रकार श्रीमन्नित्यानन्द की विविध लीलाओं से उनमें नित्यानन्द के अलावा और कुछ भी नहीं है, इस प्रभु वाक्य की सत्यता की उपलब्धि होती है। इसके पश्चात् महाप्रभु ने निताइ की स्तुति में कहा है, "तोमारे बुझिते शक्ति मनुष्येर कोथा।" अत्यन्त गूढ़ दुर्ज्ञेय नित्यानन्द तत्त्व मानव बुद्धि के सर्वथा अगोचर है। श्रीनिताइचाँद की कृपा को सहारा बनाकर शास्त्र तथा महाजनों की वाणी के आश्रय के बिना नित्यानन्द महिमा सिन्धु की एक बूँद भी किसी को स्पर्श करने का अधिकार नहीं है। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्रीचैतन्यचरितामृत की आदि लीला के पंचम अध्याय में जो नित्यानन्द तत्त्व का वर्णन किया है, वह अत्यन्त गूढ़ तथा सूक्ष्म शास्त्र युक्ति से पूर्ण है। हम उसकी थोड़ी बहुत आलोचना करने पर समझ सकेंगे कि नित्यानन्द के बारे में श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख की वाणी "तोमारे बुझिते शक्ति मनुष्येर कोथा" की सत्यता कितनी है। श्रीकविराज गोस्वामी पाद ने अध्याय के प्रारम्भ में ही लिखा है—

सर्व अवतारी कृष्ण स्वयं भगवान्।
ताँहार द्वितीय देह श्रीबलराम॥
एकइ स्वरूप दोंहे भिन्न मात्र काय।
आद्य काय व्यूह कृष्ण-लीलार सहाय॥
सेइ कृष्ण नवद्वीपे श्रीचैतन्यचन्द्र।
सेइ बलराम संगे श्रीनित्यानन्द॥

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रीबलराम स्वरूप की दृष्टि से एक ही तत्त्व हैं, केवल शरीर अलग है। श्रीकृष्ण के आद्य-काय व्यूह श्रीबलराम कितने रूपों में श्रीकृष्ण लीला के सहायक हैं, श्रीनित्यानन्द तत्त्व के प्रतिपादन में श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने पाद श्रीस्वरूप दामोदर की कड़चा से श्रीनित्यानन्द तत्त्व विषयक श्लोक पंचक उद्धृतकर के उसका प्रतिपादन किया। उसका पहला श्लोक यथा—

संकर्षणः धारण तोय शायी।
गर्भोदशायी च पयोऽब्धि शायी।
शेषश्चयस्यांश कलाः स नित्या-
नन्दाख्य रामः शरणं ममास्तु॥

अर्थात् "परव्योम चतुर्व्यूहान्तर्गत संकर्षण, कारणार्णवशायी प्रकृति के अन्तर्गत अन्तर्यामी प्रथम पुरुष, गर्भोदक शायी ब्रह्माण्डान्तर्यामी द्वितीय पुरुष,

क्षीरोदकशायी व्यष्टि जीवान्तर्यामी तृतीय पुरुष तथा अनन्तदेव; ये जिनके अंश तथा कला हैं, वह नित्यानन्दाख्य बलराम मेरे शरण या समाश्रय हों।"

इससे पहले जाना गया कि परव्योम में चतुर्व्यूह स्थित महा संकर्षण श्रीमन्नित्यानन्द के अंश हैं। अब परव्योम स्थान कैसा है, तथा उसके अधिपति महा संकर्षण ही किस प्रकार के हैं, यह समझने का प्रयास करना होगा। अवद्यिा-तमसाच्छन्न जीव के लिये उस मायातीत तत्त्व की उपलब्धि सर्वथा असम्भव है। शास्त्र वाक्य से ज्ञात होता है। परव्योम अनन्त वैकुण्ठ की समष्टि है। वहाँ अनन्त भगदाविर्भाव समूह के अलग-अलग प्रकोष्ठ समूह विराजित हैं। उस परव्योम के सम्बन्ध में श्रीरूप गोस्वामी पाद के लघुभागवतामृत में लिखा हुआ है—

यः परव्योम नाथः स्यादसमानोर्द्धवैभवः।
श्रुति-स्मृति-महातन्त्र वर्णितोत्कर्ष सौष्ठवः॥
लोक सृष्टेः पुरा ब्राह्ये कल्पे यः परमेष्ठिने।
महावैकुण्ठ लोकस्थं स्वमात्मानम दर्शयत्॥ (पूर्व 2/28)

अर्थात् "जिसके समान तथा अधिक वैभव दूसरे का नहीं है, उसका उत्कर्ष श्रुति, स्मृति तथा महातन्त्र में विशेष रूप से वर्णित है। संसार की सृष्टि से पहले ब्राह्मकल्प में (जिस कल्प में ब्रह्मा का जन्म हुआ है) उन्होंने ब्रह्मा को महा वैकुण्ठ लोक में स्थित अपना स्वरूप दिखाया था।" मूल संकर्षण इस वैकुण्ठाधीश्वर श्रीनारायण के आविर्भाव समूह के ऊपर स्थित है, जानना चाहिये। इसके पश्चात् लघुभागवतामृत में श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कन्ध नवम अध्याय के नौ से सोलह श्लोक तक उद्धृत करके परव्योम का वर्णन किया गया है। उसमें से नौवाँ तथा दसवाँ श्लोक यथा—

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः
सन्दर्शयामास परं न यत्परम्।
व्यपेत संक्लेश - विमोह साध्वसं
स्वदृष्टवद्भिर्विवुधैरभिष्टुतम्॥
प्रवर्त्तते यत्र रज स्तमस्तयोः
सत्त्वञ्च मिश्रं न च काल विक्रमः।
न यत्र माया किमुतापरे हरे-
रनुव्रता यत्र सुरा सुरार्चिताः॥

अर्थात् "भगवान् परव्योम नाथ ने ब्रह्मा के द्वारा आराधित होकर उन्हें परव्योम नामक अपना लोक दिखाया था। जिससे बढ़कर श्रेष्ठ लोक और नहीं है। जिससे संक्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश) विमोह (अविवेक) तथा साध्वंस (पतनभय) विस्तृत हुआ है। जिन्होंने भगवत्साक्षात्कार प्राप्त किया है, वे महापुरुष इनका स्तव करते रहते हैं।

जिस लोक में रजः तमः तथा उनके सहचर लौकिक सत्त्व नहीं है, जहाँ माया नहीं है, अतः अपर अर्थात् माया कार्य महदादि तत्त्व नहीं हैं। इसके बाद और क्या कहूँगा। जहाँ सुरासुरों के सुपूजित श्रीहरि के पार्षदगण विराजमान हैं।

तात्पर्य यह है कि वैकुण्ठ में रजोगुण नहीं है, क्योंकि यह सृज्य पदार्थ नहीं हैं। पुनः तमोगुण के अभाव के कारण यह अविनाशी है। वहाँ लौकिक सत्त्वगुण का अभाव है अतः वह स्थान सच्चिदानन्द स्वरूप है। उसका कारण यह है कि वहाँ काल का प्रभाव नहीं है। काल के प्रभाव से प्रकृति का क्षोभ होता है तथा प्रकृति के क्षोभ से सत्त्वादि गुण पृथक् रूप से क्रिया करते हैं। काल विक्रम ही षड्भाव विकार का हेतु है। काल विक्रम न रहने पर उस स्थल पर उत्पत्ति, वृद्धि, विकास तथा विनाशादि की सम्भावना नहीं है। मूल श्लोक में लिखा हुआ है– "न यत्र माया" अर्थात् माया न रहने से वहाँ किसी प्रकार की विकृति की सम्भावना नहीं है, अतः सभी प्रकार के विकार की जड़ में ही कुठाराघात किया गया है। इसीलिये वह निर्विशेष स्वरूप भी नहीं है, वह चिन्मयी स्वरूप शक्ति का विलास है, अतः परव्योम त्रिपाद्भूत, सनातन, अमृत, शाश्वत, नित्य, अनन्त, शुद्ध सत्त्वमय, दिव्य, अक्षय तथा ब्रह्म का परम पद-स्वरूप है। उक्त श्लोक की क्रम सन्दर्भ टीका में श्रीजीव गोस्वामीपाद ने पद्मपुराण का श्लोक उद्धृत करके इसका प्रतिपादन किया है–

त्रिपाद् विभूतिरूपं तं शृणु भूधर-नन्दिनी।
प्रधान परव्योम्नोरन्तरे विरजा-नदी॥
वेदांग स्वदेजनितैस्तोयैः प्रस्नाविता शुभा।
तस्याः पारे परव्योम्नि त्रिपाद्भुतं सनातनम्॥
अमृतं शाश्वतं नित्यमनत्तं परमं पदम्।
शुद्ध सत्त्वमयं दिव्यमक्षरं ब्रह्मणः पदम्॥

श्रीजीव गोस्वामीपाद ने उनके श्रीकृष्ण सन्दर्भ में लिखा है– "महाकाश: परव्योमाख्य:, ब्रह्म विशेष लाभादाकाशस्तल्लिंगादिति न्याय प्रसिद्धेश्च, तद्गत:, ब्रह्माकारोदयानन्तरमेव वैकुण्ठ प्राप्ते:।" अर्थात् श्रीभगवान् के लोक को महाकाश कहा गया है, उसी का दूसरा नाम 'परव्योम' है। वह धाम ब्रह्म गुण विशिष्ट है, श्रुति में भी कहा गया है– आकाश स्ताल्लुंगात्" ब्रह्माकार के उदय के पश्चात् वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। इसके अधिष्ठाता देवता ही महा-संकर्षण हैं। इस महासंकर्षण का तात्पर्य बलदेव से नहीं है, इनका स्थान इससे भी बहुत ऊपर-गोलोक, गोकुल या श्रीवृन्दावन में है। अत: महा संकर्षण श्रीबलदेव का अंश विशेष हैं। वह बलदेव ही श्रीगौरलीला में श्रीनित्यानन्द के रूप में आविर्भूत हैं। क्षुद्र मानव बुद्धि इसे किस प्रकार से समझेगी। श्रीपाद स्वरूप-दामोदर ने अत्यन्त कठिन नित्यानन्द तत्त्व जिससे विश्व के मानवों के यत्किञ्चत् बोधगम्य हो सके, इसके लिये स्वयं उनके द्वारा रचित उल्लिखित श्लोक की चार श्लोकों में व्याख्या की है। उसका पहला श्लोक इस प्रकार है–

मायातीते व्यापिवैकुण्ठ लोके
पूर्णैश्वर्ये श्रीचतुर्व्यूह मध्ये।
रूपं यस्योद्भाति संकर्षणाख्यं
तं श्रीनित्यानन्दरामं प्रपद्ये॥

अर्थात् "मायातीत सर्वव्यापक श्रीवैकुण्ठधाम में चतुर्व्यूह के बीच में अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इस चतुर्व्यूह के अन्दर जो संकर्षण नामकरूप को उद्भासित करते हैं, मैं उन नित्यानन्द बलराम के शरणागत हुआ।" श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद इस श्लोक की व्याख्या में कहते हैं–

प्रकृतिर पार परव्योम नामे धाम।
कृष्ण विग्रह यैछे विभुत्वादि गुणवान्॥
सर्वग अनन्त विभु वैकुण्ठादि धाम।
कृष्ण कृष्ण अवतारेर ताहाञि विश्राम॥
ताहार उपरिभागे कृष्ण लोक ख्याति।
द्वारका मथुरा गोकुल त्रिविधत्वे स्थिति॥

★ ★ ★ ★ ★

एइ तिन लोके कृष्ण केवल लीलामय।
निजगण लञा खेले अनन्त समय॥
परव्योम मध्ये करि स्वरूप प्रकाश।
नारायण रूपे करे विविध विलास॥

★ ★ ★ ★ ★

सेइ परव्योमे नारायणेर चारि पाशे।
द्वारकादि चतुर्व्यूहेर द्वितीय प्रकाशे॥
वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्ना निरुद्ध।
द्वितीय चतुर्व्यूह एइ तुरीय विशुद्ध॥
ताँहा ये रामेर रूप महा संकर्षण।
चिच्छक्तिर आश्रय तेंहो कारणेर कारण॥
चिच्छक्ति - विलास एक शुद्ध सत्त्व नाम।
शुद्ध सत्त्वमय यत वैकुण्ठादि धाम॥
षड्विधैश्वर्य ताँहा सकल चिन्मय।
संकर्षणेर विभूति सब जानिह निश्चय॥
जीव नाम तटस्थाख्य एक शक्ति हय।
महा संकर्षण सब जीवेर आश्रय॥
याहा हैते विश्वोत्पत्ति याहाते प्रलय।
सेइ पुरुषेर संकर्षण समाश्रय॥
सर्वाश्रय सर्वाद्भुत ऐश्वर्य अपार।
अनन्त कहिते नारे महिमा याँहार॥
तुरीय विशुद्ध सत्त्व संकर्षण नाम।
तेंहो यार अंश सेइ नित्यानन्द राम॥ (चै.च. 1/5)

ये सभी तत्त्व मानवीय ज्ञान के अधिगम्य नहीं हैं। साधना के प्रभाव से मानवात्मा अविद्या के बन्ध से मुक्त होकर जितना ही जड़ातीत चिद्राज्य की ओर उन्नत मान होता है, उतना ही उसके हृदय में क्रमशः दिव्य ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता रहता है। जिसके द्वारा चिन्मय, आनन्दमय, रसमय तथा प्रेममय भगवत्स्वरूप तथा भगवद्धाम के तत्त्व की यथासम्भव उपलब्धि होती रहती है। साधारण मायाबद्ध मानव अनन्त असत्य के बीच, अल्पता के बीच-रोग, शोक, दु:ख दारिद्र के बीच-नश्वर दु:खाधीन देह को लेकर वास कर रहा है। ऐसी हालत में उनको नित्यानन्द तत्त्व अथवा नित्यानन्द धाम तत्त्व की उपलब्धि किस प्रकार से होगी? इसीलिये श्रीमन्महाप्रभु की उक्ति

है–"तोमारे बुझिते शक्ति मनुष्येर कोथा।" इसकी यथासम्भव उपलब्धि के लिये प्रत्यक्ष साधना की आवश्यकता है। यदि कोई महा महत् हमें श्रीनित्यानन्द तत्त्व समझा भी दें फिर भी वर्तमान हालत में हम उसे क्यों समझ पायेंगे? तथापि इन सभी शास्त्र तथा महाजनों की वाणी की आलोचना जरूरी है, क्योंकि वाणी का श्रवण-कीर्तन ही वह प्रत्यक्ष साधना है। जिससे मानव के हृदय की अज्ञान तमसा दूर होकर चित्त में क्रमशः तत्त्व ज्ञान का उदय हो सके। अज्ञता के कारण ही हम नित्यानन्द तत्त्व से इतने दूर बने हुये हैं। भगवत्कृपा से तथा सद्गुरु की कृपा से वैसे तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति होने पर देखा जायेगा। कि नित्यानन्द के हम इतने समीप हैं कि उतने समीप और कुछ भी नहीं है। आनन्द से सभी पदार्थों की उत्पत्ति है- आनन्द में ही स्थिति है- श्रुति की यह महावाणी भी वज्रघोष के साथ इस महा सत्य की ही हमारे पास घोषणा कर रही है। तात्त्विक विचार से समझा जायेगा कि, हम नित्यानन्द की ही सन्तान हैं, नित्यानन्द में ही विचरण कर रहे हैं, नित्यानन्द में ही अवस्थान कर रहे हैं, केवल अज्ञान-तमसावृत होकर अत्यन्त निकट रहने पर भी नित्यानन्द को खो दिया है तथा रोग-शोक-दु:ख-दैन्य के कारण हाहाकार कर रहे हैं। विशुद्ध भक्ति का उदय न होने पर यह अन्धकार नहीं मिटेगा तथा हमारे दु:खों का अन्त भी नहीं होगा।

श्रीगौरलीला में आनन्द तत्त्व साक्षात् श्रीमन्नित्यानन्द के रूप में ही आविर्भूत हैं। इनके तत्त्व को प्रकट करने के लिये श्रीपाद कविराज गोस्वामी महोदय ने थोड़ी बात में अनेकों प्रकार के अत्यन्त सूक्ष्म सार गर्भित तथ्यों की आलोचना की है। उनमें से पहले हमने परव्योम तथा संकर्षण इन दो तत्त्वों का संकेत प्राप्त किया है। उसमें संकर्षण तत्त्व अत्यन्त निगूढ़, अत्यन्त कठिन तथा जटिल है। श्रीकविराज गोस्वामीपाद के वर्णन से हम अवगत हुये हैं कि, परव्योम के अन्तर्गत चतुर्व्यूह के अन्दर द्वितीय व्यूह का नाम संकर्षण है, यह श्रीबलदेव के अंश हैं अर्थात् श्रीबलदेव ही एक प्रकार से महा संकर्षण के नाम से परव्योमान्तर्गत वैकुण्ठ में विहार कर रहे हैं। कारणार्णवशायी संकर्षण तथा शेष नामक संकर्षण के अंशी होने के कारण यह 'महासंकर्षण' के नाम से जाने जाते हैं। यह चिच्छक्ति अर्थात् श्रीकृष्ण के स्वरूपगत स्वप्रकाशशक्ति के आश्रय या नियामक हैं। पुरुषावतार गण विश्व की सृष्टि के कारण हैं, महासंकर्षण इस पुरुषावतारगणों के मूल अंशी होने से यह 'कारण के कारण हैं।

चिच्छक्ति के अनेकों विलास के अन्दर एक का नाम है 'शुद्ध सत्त्व', वैकुण्ठादि धाम समूह इस शुद्ध सत्त्व का विकार है अर्थात् सन्धिनी अंश प्रधान शुद्ध सत्त्व का नाम है 'आधार शक्ति', उससे भगवद्धाम का प्रकाश होता है। "यद्यपि असृज्य नितय चिच्छक्ति विलास। तथापि संकर्षण इच्छाय ताहार प्रकाश॥" (चै.च.) उस भगवद्दाम में षड्विध ऐश्वर्य परिपूर्णरूप से विकास को प्राप्त होता है। वहाँ की सभी वस्तुयें अलौकिक है। वह धाम समूह, ऐश्वर्य समूह तथा चिन्मय वस्तु समूह सभी श्रीसंकर्षण का वैभव हैं।

फिर जीव शक्ति श्रीभगवान् की तटस्था शक्ति के रूप में प्रसिद्ध है। यह महासंकर्षण उस तटस्था जीव शक्ति का भी आश्रय है। अर्थात् उनसे ही सृष्टि के प्रारम्भ में जीव समष्टि का प्रकाश होता है तथा प्रलय के समय उन्हीं में सभी का लय होता है। यद्यपि कारणार्णवशायी से ही जीवों के उद्गम तथा लय की बात ज्ञात होती है, फिर भी वह महासंकर्षण का अंश होने से जीव शक्ति का परमाश्रय महासंकर्षण के रूप में वर्णित हुये हैं। उस सम्पूर्ण भगवद्दाम के, जीव शक्ति के तथा माया-ब्रह्माण्ड के जो आश्रय है, जिनके अनन्त अचिन्त्य ऐश्वर्य का श्रीअनन्तदेव भी वर्णन करने में सक्षम नहीं होते हैं, उस तुरीय अर्थात् सम्पूर्ण उपाधि के अतीत परव्योमस्थ महासंकर्षण जिनके अंश हैं, वह बलदेव ही श्रीगौरलीला में श्रीनित्यानन्द के नाम से अवतीर्ण हैं। इसके पश्चात् श्रीकविराज गोस्वामीपाद ने कारणार्णव का विवरण व्यक्त करने के लिये श्रीस्वरूप दामोदर के कड़चा का श्लोक उद्धृत किया है—

माया भर्त्ताजाण्ड संघाश्रयांगः
शेते साक्षात् कारणाम्भो मध्ये।
यस्यैकांशः श्रीपुमाणादि देव-
स्तं श्रीनित्यानन्द रामं प्रपद्ये॥

अर्थात् जो माया के नियामक या प्रवर्त्तक हैं, ब्रह्माण्ड समूह की आश्रय मूर्ति हैं, जो कारण समुद्र में शयन किये हुये हैं, वह आदि देव साक्षात् प्रथम पुरुषावतार जो श्रीनित्यानन्द नामक राम का एक अंश हैं, मैं उनके चरणों में शरणागत हूँ।" इस श्लोक की व्याख्या में श्रीकविराज गोस्वामीपाद ने लिखा है—

वैकुण्ठ बाहिरे ये ज्योतिर्मय धाम।
ताहार बाहिरे कारणार्णव नाम॥

वैकुण्ठ बेड़िया एक आछे जलनिधि।
अनन्त अपार तार नाहिक अवधि॥
वैकुण्ठेर पृथिव्यादि सकल चिन्मय।
मायिक भूतेर तथि जन्म नाहि हय॥
चिन्मय जल सेइ परम कारण।
यार एक कणा गंगा जगत पावन॥
सेइत कारणार्णवे सेइ संकर्षण।
आपनार एक अंशे करेन शयन॥
महत्स्रष्टा पुरुष तेहों जगत कारण।
आद्य अवतार करे मायार ईक्षण॥
माया शक्ति रहे कारणाब्धिर बाहिरे।
कारण समुद्र माया स्पर्शिते ना पारे॥ (चै.च.)

श्रीकविराज गोस्वामीपाद ने यहाँ जिस कारणार्णव तथा कारणार्णव शायी महत्स्रष्टा पुरुष का परिचय प्रदान किया, वह आसान तथा सरल मालूम पड़ने पर भी वास्तव में अत्यन्त दुर्ज्ञेय तथ्य है। पहले तो कारणार्णव क्या वस्तु है उसकी धारणा करना ही अत्यन्त कठिन है। 'कारण' तथा 'अर्णव' इन दो शब्दों को लेकर 'कारणार्णव' पद बना है। कारण किसे कहते हैं? न्यायवर्त्तिकाकार कहते हैं, "कारणं हि तद्‌भवतियस्मिन् सति यद्‌भवति, यस्मिंश्चासति यन्न भवति- तत्कारणमे" अर्थात् जिसके रहने से कुछ होता है तथा जिसके न रहने पर वह नहीं होता, वही कारण है। भाषा परिच्छेदकार कहते हैं—

अन्यथा सिद्धि शून्यस्य नियता पूर्ववर्त्तिता।
कारणत्वं भवेत्तस्य त्रैविध्यं परिकीर्त्तितम्॥

कार्योपत्ति के बिना कार्य नहीं होता; जो अलग है, अर्थात् जो निरन्तर पूर्ववर्ती न रहने पर कार्योत्पत्ति असम्भव हो जाती है, वही उस कार्य का कारण है। यह कारण तीन भागों में विभक्त है। इस 'कारण' पद के बाद जो 'समुद्र' पद है, उसका क्या अर्थ हैं, इसके भी अनुसन्धान की आवश्यकता है। यहाँ समुद्र का मतलब हम जो विशाल विपुल जल-जगत् के रूप में जानते हैं जैसे हिन्द महासागर, अटलान्टिक महासागर यह वैसा नहीं है। ऋग्वेद संहिता में जगह-जगह एक श्रेणी के समुद्र का उल्लेख है, उसका अर्थ है अन्तरिक्ष। पुराण में देखा जाता है, विष्णु अनन्त शैय्या पर शयन किये रहते

हैं, यह अन्तरिक्ष रूपी समुद्र में ही अनन्त का वास है। कारणार्णव शायी नारायण प्रकृति के प्रवर्तक हैं, जीव समष्टि के भी प्रवर्तक हैं। इस समुद्र से ही जीव तथा जगत् की सृष्टि-प्रवर्तना हुआ करती है। अतः यह समुद्र ही जीव तथा जगत् का कारण स्वरूप है, इसलिये इसका नाम 'कारण' समुद्र है।' ऋग्वेद के स्थान-स्थान पर विशेष रूप से दशम मण्डल में कारणार्णव का उल्लेख देखने को मिलता है। मनुसंहिता में भगवान् मनु कहते हैं—

सो भिध्यायशरीरात् स्यत्सि सृक्षु र्विविधोः प्रजाः।
अप एव ससर्ज्जादौ तासु बीज मवा सृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशु सम प्रभम्।
तस्मिन् यज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः॥

अर्थात् "उस नारायण ने विशेष रूप से ध्यान करके विविध प्रजा की सृष्टि की वासना से सबसे पहले 'अप' की सृष्टि की। इसके पश्चात् उस जल के भण्डार में सृष्टि का बीज डाला। उसके फल से सहस्रांशु-के समान प्रभायुक्त एक सोने का अण्डा प्रकाशित हुआ, सर्वलोक-पितामह ब्रह्मा ने उसमें जन्म ग्रहण किया।" इसमें जिस जल की बात कही गयी है, वही कारणार्णव है। इस कारणार्णव में जो नारायण विराजमान हैं वही कारणार्णवशायी प्रथम पुरुष हैं, श्रीमद्भागवत में "जग्राह पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः" इस श्लोक में इन्हीं की बात कही गयी है। अतः हम वेद, मनुसंहिता, श्रीमद्भागवतादि शास्त्रों में कारणार्णव तथा कारणार्णवशायी प्रथम पुरुष का परिचय प्राप्त करते हैं। यह सब दुरुह तत्त्व आसानी से मानव के बोधगम्य नहीं होता है। इस कारणार्णव में अपरा प्रकृति तथा पराप्रकृति का बीज विलीन अवस्था में विद्यमान रहता है। परिदृश्यमान विश्व में हमें जो अनन्तकोटि जीवों का खेला दिखायी पड़ता है- कारणार्णव से ही ये समस्त जीव धराधाम तक विचरण करते रहते हैं। यह कारणार्णव जीवों का जीवन है। कारणार्णवशायी नारायण इस प्रकृति के तथा अप् अर्थात् कारणार्णव के जीव सम्बन्ध धारी अद्भुत तथा कथित अपराशि के प्रवर्तक हैं। अप् समुद्र ही सम्पूर्ण जीव-समष्टि का समाश्रय है। इस स्थान से ही अखिल ब्रह्माण्ड में जीव-समष्टि प्रेरित होकर कर्मफल का भोग करते हुये पुनः इस अप् समुद्र में ही पहुँच रहे हैं। जो भगवद्भजन पथ का अवलम्बन करते हैं, वे साधना की परिपक्व दशा में प्रेमप्राप्त करके चिन्मय परव्योम या महा वैकुण्ठ में जाते हैं। जो ब्रजलोक का भाव लेकर भजन करते हैं, वे अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य के निकेतन श्रीब्रजराजनन्दन

के आनन्दमय श्रीवृन्दावनधाम में गमन करते हैं। इनको और किसी दिन मृत्युमय संसार में पुनः लौटकर नहीं आना पड़ता है; लेकिन कारणार्णव में गये हुये जीवों को फिर लौटकर आना पड़ता है।

हमने नित्यानन्द तत्त्व बताने जाकर उनकी अंश कला का विचार, महासंकर्षण, कारणार्णव तथा कारणार्णवशायी प्रथम पुरुष की बात यथा बुद्धि बतायी। द्वितीय पुरुषावतार के उल्लेख में श्रीचैतन्यचरितामृत में श्रीस्वरूप दामोदर की कड़चा से श्लोक उद्धृत हुआ है—

यस्यांशांश श्रील गर्भोदशायी
यन्नाभ्यब्जं लोकसंघात-नालम्।
लोक स्रष्टुः सूतिका धाम धातु-
स्तं श्रीनित्यानन्द रामं प्रपद्ये॥

"जिनका नाभि कमल लोक समष्टि का आश्रय है तथा सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा का उत्पत्ति स्थान है, वह गर्भोदशायी जिनके अंश के अंश हैं उस नित्यानन्द नामक राम के मैं शरणागत हुआ।" श्रीमद्‌भागवत में गर्भोदशायी के बारे में इस प्रकार लिखा हुआ है—

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः।
नाभी ह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजाम्पतिः॥

अर्थात् पहले श्रीनारायण के योग निद्रा का विस्तार करके गर्भोदक में शयन करने पर उनकी नाभिरूपी ह्रद में स्थित कमल से विश्व स्रष्टागणों के पति ब्रह्मा उत्पन्न हुये थे। ऊपर लिखे हुये श्रीस्वरूप-दामोदर की कड़चा के श्लोक की व्याख्या में श्रीचैतन्यचरितामृत में लिखा हुआ है—

सेइ त पुरुष अनन्त ब्रह्माण्ड सृजिया।
सब अण्डे प्रवेशिला बहु मूर्त्ति हञा॥
भितरे प्रवेशि देखे सब अन्धकार।
रहिते नाहिक स्थान करिल विचार॥
निज अंगे स्वेद जल करिल सृजन।
सेइ जले कैल अर्द्ध-ब्रह्माण्ड भरण॥
ब्रह्माण्ड-प्रमाण पञ्चाशत् कोटि योजन।
आयाम विस्तार हये दुइ एक सम॥
जलेभरि अर्द्ध ताहा कैल निज वास।
आर अर्द्धे कैल चाँद भुवन प्रकाश॥

ताँहाइ प्रकट कैल वैकुण्ठ निज धाम।
शेष शयन जले करिला विश्राम॥
अनन्त-शय्याते ताँहा करिल शयन।
सहस्र मस्तक ताँर सहस्र बदन॥
सहस्र नयन हस्त सहस्र चरण।
सर्व-अवतार बीज जगत्-कारण॥
ताँर नाभि - पद्मेते हइल एक पद्म।
सेइ पद्मे हैल ब्रह्मार जन्म सद्म॥
सेइ पद्मनाले हैल चौद्द भुवन।
तेंहो ब्रह्मा हैञा सृष्टि करिल सृजन॥
विष्णु रूप हैञा करे जगत् पालने।
गुणातीत विष्णु स्पर्श नाहि माया गुणे॥
रुद्ररूप धरि करे जगत् संहार।
सृष्टि स्थितिप्रलय इच्छाय याँहार॥
हिरण्यगर्भ-अन्तर्यामी जगत्-कारण।
याँर अंगे करि स्थिर-चरेर कल्पन॥
हेन नारायण याँर अंशेर अंश।
सेइ प्रभु नित्यानन्द सर्व - अवतंस॥

श्रीकविराज गोस्वामीपाद कह रहे हैं, जो गर्भोदकशायी हैं वह हिरण्यगर्भ के अन्तर्यामी हैं। हिरण्यगर्भ के बारे में भी कुछ ज्ञातव्य तथ्य हैं। हमने इससे पहले कारणार्णव नामक एक प्रकार के अन्तरिक्ष का परिचय प्राप्त किया है। स्थान-स्थान पर शास्त्रकार गणों ने उसे 'अप्' के नाम से भी बुलाया है। ऋग्वेद में जिस अन्तरिक्ष का परिचय मिलता है सम्भवतया वही अन्तरिक्ष 'अर्णव' के नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में जिस प्रकार जल सृष्टि की बात कही गयी है, उसी प्रकार हिरण्यगर्भ की बात भी कही गयी है—

हिरण्य गर्भ समवर्त्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदधार पृथिवीं द्यामुतेमां
तस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(10/121/1 ऋक्)

श्रीसायनाचार्य ने इसके भाष्य में लिखा है, हिरण्मय अण्ड गर्भ की भाँति जिनके उदर में विद्यमान है, वह इस सूत्र की आत्मा हिरण्यगर्भ है। माया-प्रपंच की उत्पत्ति से पहले इनका आविर्भाव है। यह माया के अध्यक्ष हैं, सृष्टि की इच्छा करने वाले परमात्मा से उत्पन्न हुये हैं। यद्यपि परमात्मा ही हिरण्यगर्भ हैं, फिर भी उनके उपाधि भूत अन्तरिक्षवासी सूक्ष्म-भूत समूह के कर्ता के रूप में उत्पन्न हैं। यह पैदा होते ही एक अद्वितीय होकर समग्र सृष्ट ब्रह्माण्डादि सारे जगत् के अधीश्वर होते हैं। फिर यह केवल अधीश्वर है ऐसा नहीं है- हिरण्यगर्भ अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी को हमारे नेत्र पथ के गोचर कर रहे हैं। वेद के हिरण्यगर्भ से ही ब्रह्मा जन्म ग्रहण करते हैं। स्थावर जंगम पदार्थ समूह के सृष्टा-सृष्टि कर्ता स्थूल शरीर विशिष्ट समष्टिजीव ब्रह्मा का यह सूक्ष्म स्वरूप हैं। हिरण्यगर्भ हजारों-हजारों सूर्य की भाँति समुज्ज्वल है। मनु संहिता में सृष्टि तत्त्व मेधातिथि का भाष्य तथा कुल्लल की टीका के साथ पाठ करने पर यह विषय विस्तृत रूप से अवगत हुआ जाता है।

श्रीनारायण ने अपने अंग के पसीने के जल जिस अर्णव की सृष्टि की; वही "गर्भोदक" है। उसमें वह योगनिद्रा में निमग्न हो गये इनकी नाभिकमल से जो हिरण्मय अण्ड निकला, वह अत्यन्त अद्‌भुत ज्योति से पूर्ण था, हजार-हजार सूर्य की किरणें समवेत होने जिस प्रकार प्रखर तेज उत्पन्न होता है, यह स्वर्णाण्ड उसी प्रकार के तेज को लेकर प्रकट हुआ। यह जो हजार सूर्यांशु के समान विशाल स्वर्णाण्ड की सृष्टि की बात कही गयी, इससे यही उपलब्धि होती है कि ब्रह्माण्ड तब भी पेड़, पौधे, उद्‌भिदादि के वास के योग्य नहीं हुआ था, तब इसकी अत्यधिक तप्त अवस्था थी। यह तब ब्रह्मा के ही वास के योग्य था। क्रमशः शीतल होकर जीवों के वास के योग्य हुआ है। माया शक्ति को लेकर श्रीभगवान् की यह सृष्टि आदि लीला अत्यन्त ही सूक्ष्म है, साधारण को अचानक बोधगम्य नहीं होती। श्रीमन्नारायण की प्रकृति के इन नये-नये मन्दिरों में शयन की वासना यह एक महा रहस्यमय विषय है।

श्रीकविराज गोस्वामीपाद ने कहा है, हिरण्य गर्भ का अन्तर्यामी जगत् कारण श्रीगर्भोदकशायी का विराट्‌रूप प्रकल्पित हुआ है। श्रीमद्‌भागवत में नवीन उपासक गणों के चित्त की स्थिति के लिये विष्णुरूप की प्रकल्पना हुई है। मनुष्यों के जैसे आँख, कान, हाथ, पैर इत्यादि हैं उसी प्रकार चराचर विश्व-ब्रह्माण्ड श्रीभगवान् का रूप कहकर वर्णित हुआ है। जैसे चन्द्र, सूर्य

उनकी आँखें हैं, पर्वत समूह उनकी हड्डियाँ हैं, छोटी बड़ी नदियाँ शिरा, धमनियाँ हैं, उद्भिद समूह उनकी देह के रोम हैं इत्यादि। यह विशाल विश्व ब्रह्माण्ड श्रीविष्णु का देह है। श्रीमद्भागवत कहता है–

यस्ये हा वयवैर्लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणः।
कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्द्धं जघनादिभिः॥

(भा. 2/5/36)

अर्थात् जिस पुरुष के अवयव में मनीषिगण चौदह भुवन की कल्पना किया करते हैं, कटि (कमर) से सिर तक ऊर्ध्व अंग में पृथ्वी से लेकर सत्यलोक तक सात ऊर्ध्व लोकों की कल्पना तथा कटि से चरण तले तक निम्न अंग में अतल आदि सात अधो लोक की कल्पना हुआ करती है; इस विराट् स्वरूप के सम्बन्ध में एक विशेष ज्ञात करने योग्य तथ्य यह है कि–

यावन्न जायेत परावरे स्मिन्, विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः।
तावत् स्थवीय पुरुषस्य रूपं, क्रिया वसाने प्रयतः स्मरेतः॥

(भा. 2/2/14)

अर्थात् "ब्रह्मादि के मूल स्वरूप चैतन्यघन विग्रह के द्रष्टा श्रीभगवान् में जितने दिन भक्ति का उदय नहीं होता है, उतने दिनों तक आवश्यक कर्मानुष्ठान के बाद साधक संयत होकर पुरुष के विराट् स्वरूप का स्मरण करेंगे।" भक्ति उत्पन्न होने पर भी यदि विराट् की धारणा में चित्त का आवेश रहता है, तब भजन की क्षति (हानि) होने से ही श्रीमद्भागवत में यह सतर्क वाणी प्रदान की गयी है। जोभी हो, इस विराट् पुरुष की नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति है। यह गर्भोदशायी पुरुष श्रीनित्यानन्द के अंश के अंश हैं। अतः श्रीनित्यानन्द तत्त्व तथा उनकी महिमा समझने के लिये हमारी धरणा कितनी वृहत्तर होनी चाहिये वह आसानी से समझ में आती है। जिन्होंने विश्व के दीन, पातकी जनों को हरिनाम तथा प्रेमदान से धन्य करके वक्ष से लगा लिया है, इस विश्व सृष्टि के विषय में वह कितने-कितने वृहत्तर कार्यों के अधिनायक हैं, वह हम किसी भी प्रकार से बुद्धिगोचर करने में सक्षम नहीं होंगे। इसीलिये सार्थक है श्रीमन्महाप्रभु की निताइ स्तुति की वह वाणी- "तोमारे बुझिते शक्ति मनुष्येर कोथा।"

श्रीनित्यानन्द के अवतार के अन्दर और एक क्षुद्रांश का तथा एक दूर तर कला का उल्लेख किया है, श्रीपाद स्वरूप दामोदर ने–

यस्यांशांशांशः परमात्मा खिलानां
पोष्टा विष्णुर्भाति दुग्धाब्धिशायी।
क्षौणी भर्त्ता यत्कला सो व्यनन्त-
स्तं श्रीनित्यानन्द रामं प्रपद्ये॥

अर्थात् व्यष्टि जीवों के अन्तर्यामी तथा पालन कर्ता क्षीरोदशायी विष्णु; जिनके अंशांश के अंश हैं, तथा धरणीधर अनन्तदेव जिनकी कला हैं, उन श्रीनित्यानन्द राम के मैं शरणागत हुआ।" श्रीकविराज गोस्वामीपाद ने इस श्लोक की व्याख्या के प्रसंग में लिखा है—

नारायणेर नाभि नाल मध्येते धरणी।
धरणिर मध्ये सप्त समुद्रये गणि॥
ताँहा क्षीरोदधि मध्ये श्वेत दीप नाम।
पालयिता विष्णु ताँर सेइ निज धाम॥
सकल जीवेर तिहो हये अन्तर्यामी।
जगत्-पालक तिहो जगतेर स्वामी॥
युग-मन्वन्तरे करि नाना अवतार।
धर्म संस्थापन परे अधर्म संहार॥
देवगण ना पाय याँहार दर्शन।
क्षीरोदक तीरे जाइ करेन स्तवन॥
तबे अवतरि करे जगत् पालन।
अनन्त वैभव ताँर नाहिक गणन॥
सेइ विष्णु हय याँर अंशांशेर अंश।
सेइ प्रभु नित्यानन्द सर्व अवतंस॥ (चै.च.)

धरती के सात समुद्रों में जो क्षीर समुद्र है उसके अन्दर श्वेतद्वीप नामक एक स्थान है। वह पालन कर्ता विष्णु का स्वयं का आवास स्थान है। इस श्वेतद्वीप में वह विहार करते हैं। इस श्वेतद्वीप का परिचय लघुभागवतामृत में आठ श्लोकों में विष्णु धर्मोत्तर के वचनों से दिया गया है। ग्रन्थ विस्तार के भय से यहाँ श्लोकों को उद्धृत न करके उनकी व्याख्या दी जा रही है। रुद्रलोक के ऊपर पचास लाख योजन परिमित सभी लोक अगम्य श्रीविष्णु लोक की स्थिति की बात शास्त्र में बतायी जाती है। उसके ऊपर सुमेरु पर्वत के पूर्वदिशा के भाग में लवण समुद्र के बीच में सुवर्ण कान्ति विशिष्ट महान् विष्णु लोक विराजित ब्रह्मा उनके दर्शन के लिये वहाँ जाते हैं। वहाँ वह आषाढ़ के महीने की एकादशी तिथि को लक्ष्मी के साथ अनन्त शैय्या में

शयन करते हैं, सुमेरु के पूर्व की ओर क्षीर-समुद्र के बीच में विष्णु की एक और शुभ्र पुरी है; वहाँ वह वर्षा के चार महीने अनन्त शैय्या में लक्ष्मी के साथ विहार करते हैं। उसके दक्षिण में पच्चीस हजार योजन विस्तृत परम सुन्दर श्वेतद्वीप नाम से विख्यात एक द्वीप है। वहाँ के मनुष्यों का सूर्य के समान तेज है, चन्द्र की भाँति कान्ति है, वे अपनी प्रभा से देवगणों के भी अदृश्य हैं। यह श्वेत द्वीपाधिपति क्षीरोदशायी नारायण अखिल जीवों के अन्तर्यामी, विश्व के पालक तथा नियामक हैं। वह युग-मन्वन्तरादि में युगावतार तथा मन्वन्तरावतार के रूप में अवतीर्ण होकर अधर्म का नाश तथा धर्म की संस्थापना किया करते हैं। देवगण उनका दर्शन नहीं प्राप्त कर सकते हैं। धर्म की ग्लानि तथा अधर्म का विस्तार होने पर ब्रह्मा तथा धरती के साथ देवगण क्षीरोद के किनारे जाकर स्तुति करने पर यह अवतीर्ण होकर जगत् का पालन किया करते हैं। जिनके अनन्त वैभव की किसी में भी गणना करने की क्षमता नहीं है; वह तृतीय पुरुष केवल श्रीनित्यानन्द के अंशांश के अंश हैं। श्रीकविराज गोस्वामीपाद ने श्रीस्वरूप-दामोदर के उल्लिखित श्लोक की व्याख्या में श्रीअनन्तदेव की कथा का वर्णन किया है—

सेइ विष्णु शेष रूपे धरेन धरणी।
काँहा आछे मही शिरे हेन नाहि जानि॥
सहस विस्तीर्ण याँर फणार मण्डल।
सूर्य जिनि मणिगण करे झल मल॥
पञ्चाशत् कोटि-योजन पृथिवी-विस्तार।
यार एक फणे रहे सर्षप आकार॥
सेइत अनन्त शेष भक्त अवतार।
ईश्वर सेवन बिनु नाहि जाने आर॥
सहस्र बदने करे कृष्ण-गुण गान।
निरवधि गाय गुण अन्त नाहि पान॥
सनकादि भागवत शुने यार मुखे।
भगवानेर गुण कहे भासे प्रेम सुखे॥
छत्र पादुका शय्या उपाधान वसन।
आराम आवास यज्ञ सूत्र सिंहासन॥
एत मूर्त्ति भेद करि कृष्ण सेवा करे।
कृष्णेर शेषता पाञा शेष नाम धरे॥

सेइ त अनन्तयाँर कहि एक कला।
हेन प्रभु नित्यानन्द के जाने ताँर खेला॥ (चै.च.)

यह जो अनन्तदेव धरती को धारण करते हैं, वह हजारों-हजारों फैले हुये फनों के मण्डल से युक्त हैं। उन सब फनों की मणियाँ सूर्य की भाँति अनन्त समुज्ज्वल प्रभा से झिल मिला रहे हैं। अनन्तदेव के एक फन के किसी अज्ञात अंश पर पचास करोड़ योजन में फैली पृथ्वी सरसों के आकार में टिकी हुई हैं। अनन्तदेव उसका अस्तित्व बताने जाकर अनजान हैं, अतः पृथ्वी का भार उन्हें एक बूँद भी नहीं मालूम होता है। श्रीमद्‌भागवत में (5/17/21) दृष्ट होता है—

न वेद सिद्धार्थ मिव क्वचित् स्थित
भूमण्डलं मूर्धा सहस्रधामसु॥

अर्थात् "अनन्त मस्तकरूपी घर में एक सरसों के बराबर भूमण्डल किसी स्थान पर है, वह अनन्तदेव जानते ही नहीं हैं। श्रीअनन्तदेव के जब हजारों फणों की उल्लेख है तब वह सर्प के आकार के हैं समझ में आ रहा है, लेकिन वह स्वरूप से नराकृति, शुभ्र वर्ण हैं, सिर के ऊपर अनेकों फणों का मण्डल मण्डित है। जिस कारण उनकी धवल वर्ण भुजाओं आदि का वर्णन सुनने में आता है। श्रीमद्‌भागवत में (5/25/7) गद्य में वर्णित है- "हलककुदि कृत सुभग सुन्दर भुजः" अर्थात् जिनके सुभग तथा सुन्दर भुज स्कन्ध पर हल टिका हुआ है। फिर उसी अध्याय के पंचम गद्य में लिखा हुआ है- "चार्वंगवलाय-विलसित विशद विपुल धवल सुभग रुचिर-भुज रजत स्तम्भेषु" अर्थात् "नाग कुमारियाँ जिनके मनोहर धवलवर्ण के भुजारूपी रजत स्तम्भ में चन्दनादि का लेपन किया करती हैं।"

वह अनन्तदेव भक्त अवतार हैं, ईश्वर (श्रीकृष्ण) की सेवा के अलावा और कुछ भी नहीं जानते। वह अनन्तवदनों से निरन्तर श्रीकृष्ण के गुणों का गान करते हैं लेकिन उन गुणों का अन्त नहीं पाते हैं। "गायन् गुणान् दश शतानन आदि देवः शेषोधुनापि समवस्यति नास्य पारम्॥" (भा. 2/7/41) निरन्तर कृष्ण गुण का गान करने से यह ज्ञात हुआ कि वह भक्तावतार हैं। क्योंकि कृष्ण का गुण गान भक्त का ही कार्य है। सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार ये श्रीअनन्तदेव के श्रीमुख से श्रीमद्‌भागवत का श्रवण करते हैं। श्रीमद्‌भागवत के विश्व में आविर्भाव की दो धारायें हैं। प्रथम धारा में आदि वक्ता ब्रह्मा हैं, उनसे देवर्षि नारद, व्यासदेव, शुकदेव तथा सूतमुनि

इत्यादि के क्रम से श्रीमद्भागवत विश्व में प्रचारित हुआ है। दूसरी धारा में आदि वक्ता श्रीअनन्तदेव हैं। इनसे चतुःसन, सांख्यायन, पराशर, पुलस्त्य तथा मैत्रेय आदि के क्रम से श्रीमद्भागवत का प्रचार है। श्रीअनन्तदेव जब श्रीकृष्ण के गुणों का कीर्तन करते हैं, तब श्रीकृष्ण रसास्वादन जन्य प्रेम के सागर में प्रवाहमान हो जाते हैं।

श्रीअनन्तदेव ईश्वर की सेवा के अलावा कुछ भी नहीं जानते, वह मस्तक पर पृथ्वी को धारण करके भी छत्र, पादुका, शैय्या, उपाधान, वस्त्र (तकिया), आराम, आवास, यज्ञ सूत्र तथा सिंहासन इन दस रूपों में श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं। "दश देहधरि करे कृष्णेर सेवन।" (चै.च.) श्रीकृष्ण की शेषता अर्थात् अंशत्व या उपकारिता का धर्म प्राप्त करने के कारण वह 'शेष के नाम से कहे जाते हैं।'

श्रीअनन्त संहिता में वर्णित है—

निवास शय्यासनपादुकांशुकोपधान वर्षातपवारणादिभिः।
शरीरभेदैस्तदशेषतां गतै-यथोचितंशेषइतीरितोजनैः॥

अर्थात् "वासस्थान, शैय्या, आसन, पादुका, वस्त्र, उपाधान (तकिया) तथा वर्षा तथा धूप को रोकने वाला छत्र आदि विविध सेवाओं के लिये विविध मूर्तियाँ धारण करने से अनन्तदेव जन समाज में 'शेष' के नाम से जाने जाते हैं। यह शेष या अनन्तदेव जिनकी केवल एक क्षुद्रतम कला हैं, उन श्रीनित्यानन्द की लीला की महिमा कौन समझेगा?

श्रीकविराज गोस्वामीपाद ने नित्यानन्द तत्त्व के वर्णन में संकर्षण, कारणार्णवशायी, गर्भोदकशायी, क्षीरोद्कशायी तथा शेषदेव इन पाँच तत्त्वों की बातों का उल्लेख करते हुये कहा है- ये श्रीमन्नित्यानन्द के अंश तथा कलायें हैं। नित्यानन्द साक्षात् ब्रज के बलदेव हैं। इन बलदेव ने कभी श्रीकृष्ण के गुरु की भाँति, कभी सखा की भाँति या कभी भृत्य (नौकर) की भाँति द्वापर में लीला की है। श्रीचैतन्यचरितामृत में वह सब विवरण भी दिया गया है—

वृष हञा कृष्ण संगे माथा माथिरण।
कभु कृष्ण करेन ताँर पाद सम्वाहन॥
आपनाके भृत्य करि कृष्ण प्रभु ज्ञाने।
कृष्णेर कलार कला आपनाके माने॥ (चै.च.)

श्रीमद्भागवत से इसका उदाहरण दिया गया है यथा—

वृषायमाणा नर्द्दन्तौ युयुधाते परस्परम्।
अनुकृत्यरुत्यैर्जन्तुंश्चरेतुः प्राकृतौ यथा॥

(भा. 10/11/40)

अर्थात् "वृषवत् आचरण करते हुये श्रीकृष्ण तथा बलदेव इस प्रकार आवाज करके परस्पर युद्ध करते हैं। आवाज के द्वारा जन्तुओं की नकल करके लौकिक बालकों की भाँति विचरण करते हैं।"

क्वचित् क्रीड़ा परिश्रान्तं गोपोत्संगोपवर्हणम्।
स्वयं विश्राम यत्यार्यं पाद सम्वाहनाभिः॥

(भा. 10/15/14)

अर्थात् "किसी समय श्रीबलदेव खेल में थक कर किसी गोपबालक की गोद में सिर रखकर सोने पर श्रीकृष्ण स्वयं चरण दबाकर उनको विश्राम कराते हैं।"

केयं वा कुतः आयाता देवी ना नार्युतासूरी।
प्रायो मामास्तु मे भर्त्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी॥

(भा. 10/13/37)

ब्रजमोहन लीला में श्रीकृष्ण स्वयं जो सब गोवत्स तथा गोपबालक हुये थे, उनके प्रति स्वयं का तथा ब्रजवासीगणों का श्रीकृष्ण के समान प्रेम देखकर श्रीबलदेव कह रहे हैं—"यह कौन सी माया है? यह कहाँ से आयी? यह क्या किसी देवता की, या मनुष्य की, या फिर असुर की माया है? वैसा नहीं है। लगता है यह मेरे प्रभु श्रीकृष्ण की माया है! क्योंकि दूसरे की माया कभी मुझे मोहित नहीं कर सकती।" पुनः श्रीमद्भागवत में (10/68/37) श्रीबलदेव की उक्ति—

यसाङ्ध्रि पंकज रजोऽखिल लोक पालै
मौल्युत्तमैर्धृत मुपासित-तीर्थ तीर्थम्।
ब्रह्मा भावोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः
श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व॥

अर्थात् "ब्रह्मा, महादेव तथा मैं भी जिनकी कला के रज का केवल एक कण प्राप्त करने पर हमलोग अत्यन्त आदर के साथ सदा के लिये सिर पर धारण करके रखते हैं, अखिल लोक-सेवित गंगा आदि तीर्थों का तीर्थत्व प्रतिपादक है जिनके चरण कमलों का रज उन श्रीकृष्ण का फिर राज सिंहासन

कहाँ है? अर्थात् उनके सम्बन्ध में राज-सिंहासन अत्यन्त तुच्छ से भी अति तुच्छ है।" इस प्रकार बलदेव के ब्रज में श्रीकृष्ण के गुरु के रूप में, सखा के रूप में लीला करने पर भी श्रीकृष्ण के दासत्वाभिमान कभी भी तुच्छ नहीं है, वह अत्यन्त उच्च है। श्रीचैतन्यचरितामृत में लिखा हुआ है—

कृष्णदास अभिमाने ये आनन्द सिन्धु।
कोटि ब्रह्मसुख नहे तार एक बिन्दु॥
मुञि से चैतन्यदास आर नित्यानन्द।
दास भाव सम नहे अन्यत्र आनन्द॥
परम प्रेयसी-लक्ष्मी हृदये वसति।
तिहों दास्य सुख भागे करिया मिनति॥
दास्य भावे आनन्दित पारिषदगण।
विधिभव नारदादि शुक सनातन॥
नित्यानन्द - अवधूत सबाते आगल।
चैतन्येर दास्य-प्रेमे हइल पागल॥
श्रीवास हरिदास राम दास गदाधर।
मुरारि मुकुन्द चन्द्रशेखर वक्रेश्वर॥
ए सब पण्डित लोक परम-महत्त्व।
चैतन्येर दास्ये सबाय करये उन्मत्त॥

श्रीमन्नित्यानन्द की लीला कथा- श्रीमुरारिगुप्त की कड़चा में, कविकर्णपूर के श्रीचैतन्यचरित महाकाव्य में, श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक में कुछ-कुछ वर्णित हुई है। श्रीलोचनदास ने भी कुछ आलोचना की है। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद ने उनके विश्व विख्यात श्रीचैतन्यचरितामृत में नित्यानन्द तत्त्व का वर्णन करके भक्तगणों का महान् उपकार किया है। उन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृत की आदि लीला के पंचम परिच्छेद में श्रीस्वरूप दामोदर की कड़चा के श्रीनित्यानन्द विषयक पाँच श्लोक उद्धृत करके श्रीमन्नित्यानन्द की महिमा का जिस प्रकार से वर्णन किया है, वह मानवीय ज्ञान, बुद्धि के लिये अत्यन्त कठिन तथा दुष्प्रवेश्य ही लगता है। श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द तत्त्व के साथ द्रष्टा ऋषि श्रीपाद स्वरूप दामोदर ने जिस प्रकार प्रगाढ़ सूक्ष्म दृष्टि से श्रीनित्यानन्द महिमा का सन्धान दिया है, वह अत्यन्त ही सूक्ष्म तथा दूरदर्शी तत्त्ववेत्ता गणों की भी धारणा के अतीत है। सात्वत शास्त्र वेद का ही सारांश है। महा संकर्षण, कारणार्णवशायी, गर्भोदकशायी,

क्षीरोद्‌कशायी, हिरण्य गर्भ- यह सारे तत्त्व विशुद्ध वैदिक तत्त्व हैं तथा मन्त्रद्रष्टा ऋषिगणों के दिव्य नेत्रों के गोचर हैं।

श्रीमन्नित्यानन्द तत्त्व के वर्णन में प्रवृत्त होकर श्रीपाद स्वरूप दामोदर ने सूत्रों के रूप में उल्लिखित तत्त्वों का उल्लेख करके कहा है- श्रीमन्नित्यानन्द इन सारे आविभावों के बहुत ऊपर प्रतिष्ठित हैं। अतः श्रीपाद स्वरूप दामोदर के वर्णन में हम साक्षात् सम्बन्ध में नित्यानन्द का स्वरूप नहीं जान पाये हैं। उसमें केवल यही जाना गया है कि महा संकर्षणादि श्रीमन्नित्यानन्द के अंश तथा कला हैं। लेकिन पुनः पुनः एक बात सभी ने कही है कि, श्रीकृष्ण के बड़े भाई श्रीबलदेव ही श्रीगौर लीला में श्रीमन्नित्यानन्द के रूप में अवतीर्ण हुये हैं। इस वाक्य में भी उनकी महिमा सम्यक्‌रूप से नहीं स्फुटित हुई है; क्योंकि अवतार भेद से लीला भेद अवश्य स्वीकार्य है। इस युग में श्रीमन्नित्यानन्द को भक्त वात्सल्य, कारुण्यादि गुण समूह द्वापरयुग की लीला में श्रीबलदेव की करुणा आदि की तुलना में अत्यन्त व्यापकरूप से ब्रह्माण्ड में सर्वत्र प्रसारित हुआ है। हमने इससे पहले "एइ तुमि नित्यानन्द राम मूर्त्तिमत्त" महाप्रभु की निताइ की इस स्तुति के इस अंश की व्याख्या में उसकी किंचित् आलोचना की है। इस समस्त आलोचनाओं के द्वारा हम श्रीमन्महाप्रभु की "तोमारे बुझिते शक्ति मनुष्येर कोथा" इस श्रीमुख की वाणी की सत्यता की किंचित् उपलब्धि कर सकते हैं।

अन्त में निताइ की स्तुति में श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है, "परम सुसत्य तुमि यथा कृष्ण तथा॥" श्रीमन्नित्यान्नद साक्षात् ब्रज के बलदेव हैं यह जाना गया है। श्रीकृष्ण ने स्वयं तथा अंश कला आदि से जहाँ जितनी बार अवतीर्ण होकर लीला की है, उनकी लीला के नित्य संगी श्रीबलदेव ने उतनी बार ही उनके साथ अवतीर्ण होकर उनकी लीला की मुख्य सहायता की है। अतः जहाँ नित्यानन्द या बलदेव हैं, वहीं पर श्रीकृष्ण हैं तथा जहाँ कृष्ण है वहीं पर नित्यानन्द राम हैं इसकी भाँति सुन्दर सुसत्य और क्या है? फिर नित्यानन्द राम शेष या अनन्त के रूप में निरन्तर दस प्रकार की देह से निकट रहकर निरन्तर श्रीकृष्ण की सेवा किया करते हैं इसलिये जहाँ नित्यानन्द हैं वहीं श्रीकृष्ण हैं यह परम सुसत्य है।

अथवा "आयुर्घृतमितिवत्" जैसे कहा जाता है, "घी ही आयु है" लेकि घी तो आयु नहीं है, घी का सेवन करने से आयु की वृद्धि होती है, उसी प्रकार "जहाँ नित्यानन्द हैं वहीं कृष्ण हैं कहने पर निताइ के भजन में या उनके

आश्रय में अवश्य ही कृष्ण को प्राप्त हुआ जा सकता है- इसकी भाँति परम सुसत्य और कुछ भी नहीं है। इसीलिये साधारण साधक की बात तो दूर ब्रह्मा, महादेव, सनकादिक, व्यास, शुक, नारदादि भी श्रीकृष्ण की प्राप्ति के निमित्त श्रीअनन्तदेव की आराधना करते रहते हैं। व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने लिखा है—

कि ब्रह्मा कि शिव कि सनकादि कुमार।
व्यास शुक नारदादि भक्त नाम यार॥
सबार पूजित श्रीअनन्त महाशय।
सहस्र बदन प्रभु भक्ति रसमय॥
आदि देव महायोगी ईश्वर वैष्णव।
महिमार अन्त इहा ना जानेन सब॥
सवन शुनिले एबे शुन ठाकुराल।
आत्म तन्त्रे हेन मते वैसेन पाताल॥
श्रीनारद गोसाञि तुम्बुरु करि संगे।
ये यश गायेन ब्रह्म-स्थाने श्लोक बन्धे॥ (चै.च.)

तथाहि (भा. 5/25/9-11 श्लोक)-

उत्पत्ति-स्थिति-लय-हेतवोऽस्य कल्पाः
सत्त्वाद्याः प्रकृति गुणा यदीक्षयासन।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्
नानाधात् कथमुह वेद तस्य वर्त्म॥
मूर्त्तिं नः पुरुकृपया वभार सत्त्वं
संशुद्ध सदसदिदं विभातियत्र।
यल्लीलां मृगपति राददेहनवद्याम्
आदातुं स्वजन मनांस्युदार वीर्यः॥
यन्नाम श्रुतमनुकीर्त्तयेदकस्मात्
आत्तो वा यदि पतितः प्रलेम्भनाद् वा।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं
कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः॥

अर्थात् "इस विश्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय के हेतु रूपी सत्त्व, रजः तथा तमः ये प्राकृत गुणत्रय जिनकी दृष्टि के प्रभाव से अपना-अपना कार्य करने में समर्थ हैं, जिनका स्वरूप अनन्त तथा अनादि है, जो एक है फिर भी अपने में अनन्त सृष्टि को धारण कर रखा है, लोग उनका तत्त्व किस

प्रकार से जानेंगे ? इसमें प्रश्न हो सकता है, तो फिर मुमुक्षुगण किस प्रकार उनका भजन करेंगे ? उसके उत्तर में कहा जा रहा है, जिनमें स्थूल सूक्ष्म सृष्टि समायी हुई है, उन्होंने हमारे प्रति अनेक कृपा करके शुद्ध सत्त्व स्वरूप श्रीमूर्त्ति को प्रकटित किया है। स्वजनों के चित्ताकर्षण के लिये वह जो लीलायें विस्तार करते हैं, सिंह आदि भी उन भावों की नकल करके स्वजनों के चित्त को आनन्दित करने का प्रयास करते हैं। वह उदारवीर्य हैं, ऐसे उदारवीर्य को छोड़कर मोक्ष की कामना करने वाले और किसका आश्रय ग्रहण करेंगे ?" श्रीधर स्वामी कहते हैं, 'मृगपतिः' शब्द का अन्य प्रकार से अर्थ भी हो सकता है, "मृगन्त इति मृगाः काम प्रदाः तेषां पतिर्मुख्याः" अर्थात् कामप्रदगणों में जो श्रेष्ठ हैं, अतः वह आश्रित जनों की कामना पूर्ण करेंगे, इस बारे में और संशय कैसा ? वह जो कृपा करके श्रीविग्रह धारण करेंगे, वह तो बहुत थोड़ी बात है, उनके नाम की उदारता ही अत्यन्त विचित्र है। महापातकी भी यदि उनके नाम का कीर्तन करे तो वह भी शुद्धि का प्राप्त करता है, दूसरा वक्तव्य और क्या रह सकता है।

उनका नाम स्वयं कीर्तन न करके दूसरे के मुख से सुनने पर या अचानक उच्चारण करने पर, विपदा में पड़कर उनको पुकारने पर अथवा प्रलोभन या परिहास के साथ नामोच्चारण करने पर तुरन्त ही अशेष पाप का नाश हो जाता है। अतः ऐसे उदार वीर्य शेष देव का परित्याग करके मोक्ष कामी व्यक्ति और किसका आश्रय ग्रहण करेगा ?

सृष्टि स्थिति प्रलय सत्त्वादि यत गुण।
याँर दृष्टिपाते हय जाय पुनः पुनः॥
अद्वितीय रूप सत्य अनादि महत्त्व।
तथापि अनन्त हये, के बुझे से॥
शुद्ध सत्त्व मूर्त्ति प्रभु धरे करुणाये।
ये विग्रहे सभार प्रकाश सुलीलाये॥
याँहार तरंग शिखि सिंह महाबली।
निजजन मनोरंजे हइ कुतूहली॥
ये अनन्त नामेर श्रवण संकीर्त्तने।
ये-ते-मते केने नाहि बोले ये-ते-जने॥
अशेष जन्मेर बन्धछिण्डे सेइ क्षणे।
अतएव वैष्णव ना छाड़े कभु ताने॥

'शेष' बइ संसारेर गति नाहि आर।
अनन्तेर नामे सर्व जीवेर उद्धार॥ (चै.भा.)

सर्ववेदान्त सार श्रीमद्भागवत में जिनकी दूर तर कला श्रीअनन्तदेव के भजन की जब इस प्रकार की महिमा दिखायी पड़ती है, तब उनके मूल स्वरूप प्रेमघन मूरत श्रीनिताइचाँद के भजन की महिमा कौन कुछ सकता है? श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने सार बात कही है—

संसारेर पार हइ भक्तिर सागरे।
ये डुबिबे से भजुक निताइ चाँदेरे॥ (चै.भा.)

भक्तिरस में डूब जाना ही निताइ भजन का मुख्य फल है। उसके आनुषंगिक रूप से ही संसार का क्षय हो जाता है। प्रेम के बिना श्रीकृष्ण को प्राप्त करने पर भी उनके माधुर्य का आस्वादन नहीं किया जा सकता। इसका प्रमाण है- प्रकट लीला के समय असुरों ने श्रीकृष्ण का दर्शन करके भी उनके साथ युद्ध-विग्रह आदि किया है। इसीलिये शास्त्र में प्रेम को ही आवश्यक तत्त्व कहा गया है, श्रीकृष्ण को नहीं। प्रेम प्राप्त करने पर ही यथारूप में श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो जाती है। प्रेमघन-मूरत श्रीनिताइचाँद के भजन से उस प्रेम के सागर में अवगाहन किया जाता है।

प्रेम के फिर शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर इन पाँच प्रकार के भाव के अन्तर के कारण आस्वादन में अन्तर या भिन्नता दिखायी पड़ती है। शान्त से दास्य में शान्त और दास्य से सख्य में, शान्त, दास्य तथा सख्य से वात्सल्य में, सबसे ऊपर मधुर भाव में सबसे अधिक आस्वादन का चमत्कार निहित है। श्रीनिताइ के भजन से ब्रज के मधुर रस जातीय सर्वोत्कृष्ट प्रेम को ही प्राप्त करेक साधकात्मा धन्य हो जाती है। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने लिखा है—

ये भक्ति गोपिकागणे कहे भागवते।
नित्यानन्द हैते ताहा पाइल जगते॥ (चै.भा.)

ब्रजगोपियों में फिर श्रीराधारानी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके साथ श्रीकृष्ण की आराधना या युगल उपासना ही इस विशेष कलि में श्रीमन्महाप्रभु की अनर्पितचरी करुणा का योगदान है। श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरणाश्रित गौड़ीय वैष्णवगण युगलोपासक हैं। इस अत्यन्त दुर्लभ भक्ति के भण्डारी श्रीनिताइचाँद हैं। इसीलिये श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय ने उनकी प्रार्थना गीतिका में लिखा है—

निताइ पद कमल, कोटि चन्द्र सुशीतल,
ये छायाय जगत जुड़ाय।
हेन निताइ बिने भाइ, राधाकृष्ण पाइते नाइ,
दृढ़ करि धर निताइयेर पाय॥

श्रीनरोत्तमदास ठाकुर महाशय ने कहा, निताइ के बगैर श्रीराधाकृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता या प्राप्त करना उचित नहीं है; अतः पाने का प्रसन्न करना भी उचित नहीं है! अब प्रश्न हो सकता है, भगवत्प्राप्ति के सम्बन्ध में शास्त्र का विधान यह है कि जो जिस भगवत्स्वरूप की उपासना करेंगे, उपासना की सिद्धि में प्रेम प्राप्त करके उनको ही प्राप्त होंगे। श्रीराधाकृष्ण के उपासक युगल की आराधना से प्रेमप्राप्ति के पश्चात् युगल चरण प्राप्त करेंगे यह निश्चित है; तो श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय ने निताइ के बिना श्रीराधाकृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता या पाने की चेष्टा करना उचित नहीं है, ऐसी बात क्यों कही?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि श्रीश्रीराधाकृष्ण की उपासना अन्यान्य भगवत्स्वरूप की उपासना की भाँति नहीं है। यह परम रहस्यमय है, अज, भव, रमा, उद्धवादि के लिये भी अप्राप्य है। इस विशेष कलि में श्रीमन्महाप्रभु ने ही करुणा करके इस कलि के मानव के लिये उसे सुलभ बनाया है। अतः श्रीराधाकृष्ण की प्राप्ति के लिये श्रीगौरांग का भजन तथा गौर-कृपा अत्यन्त आवश्यक है। श्रीगौरांग के भजन के अनुरूप ही साधकगणों के चित्त में श्रीश्रीराधाकृष्ण का स्फुरण होता है। श्रीमन्महाप्रभु के प्रिय पार्षद श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है—

यथा यथा गौर पदारविन्दे, विन्देत भक्ति कृत पुण्य राशिः।
तथा तथोत्सपीति हृद्यकस्मात्, राधा पदाम्भोज सुधाम्बुराशिः॥

(चै. चन्द्रा. ८८)

अर्थात् "पुण्यात्मा भक्त-साधकों की श्रीगौरसुन्दर के श्रीचरणों में जिस परिमाण में भक्ति का उदय होगा, उसी अनुपात में उनके हृदय में श्रीराधारानी के चरण-कमलरूपी अमृत जल का भण्डार उच्छ्वसित हो उठेगा।"

इसीलिये महाजन ने गाया है—

यदि गौर नाहत, कि मेने हइत, केमने धरिताम दे।
राधार महिमा, प्रेमरस सीमा, जगते जानातो के?

मधुर वृन्दा- विपिनमाधुरी, प्रवेश चातुरी सार।
वरज युवति, भावेर आरति, शकति हइत कार?

श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय की प्रार्थना गीतिका में दिखायी पड़ता है—

ये गौरांगेर नाम लय,   तार हय प्रेमोदय,
तारे मुञि जाइ बलिहारि।
गौरांग-गुणेते झुरे,   नित्यलीला तारे स्फुरे,
से जन भकति अधिकारी॥
गौर-प्रेम-रसार्णवे,   से तरंगे येवा डुबे,
से राधामाधव अन्तरंगा॥   (इत्यादि)

पुन: श्रीगौरांग के चरणों में भक्ति तथा उनकी कृपा प्राप्त करनी हो तो श्रीमन्नित्यानन्द के चरणों में भक्ति तथा उनका भजन करना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरी ओर नित्यानन्द तत्त्व में आधे तिल के बराबर भी द्वेष या उपेक्षा रहने पर किसी भी प्रकार से श्रीगौरांग की कृपा को प्राप्त नहीं किया जा सकता। श्रीगौरांग की श्रीमुख की वाणी ही इसका विशेष प्रमाण है। यथा श्रीचैतन्य भागवत में—

हाते तिन तालि दिया श्रीगौर सुन्दर।
सबारे कहेन अति अमाया-उत्तर॥
प्रभु बले एइ नित्यानन्द-स्वरूपेरे।
ये करये भक्ति श्रद्धा, से करे आमारे॥
इहान चरण ब्रह्मा-शिवेरो वन्दित।
अतएव इहाने करिह सबे प्रीत॥
तिलार्द्धेक इहाने याहार द्वेष रहे।
भक्त हइलेओ से आमार प्रिय नहे॥
इहान बातास लागिबेक यार गाय।
ताहारे ओ कृष्ण ना छाड़िबे सर्वथाय॥

ब्रजरस के उपासकों को श्रीमन्महाप्रभु की इस श्रीमुख की वाणी के मर्म को समझते हुये उपलब्धि करनी होगी। श्रीमन्महाप्रभु स्वयं प्रियभक्त गणों के निकट निताइ के भजन की आवश्यकता का उल्लेख करने जाकर पहले हाथ से तीन ताली बजा रहे हैं। इससे एक तरफ वह जैसे इस अत्यन्त रहस्यमय विषय के प्रति अखिल भक्तगणों का ध्यानाकर्षण कर रहे हैं, वैसे ही त्रिसत्य की भाँति निताइ के भजन की अवश्य कर्त्तव्यता का प्रतिपादन कर रहे हैं। प्रभु कह रहे हैं- "नित्यानन्द के प्रति भक्ति श्रद्धा करने का अर्थ है

उनके प्रति भक्ति श्रद्धा करना भक्ति ही भगवान् की प्रसन्नता का एकमात्र कारण है। अत: निताइ के भजन से श्रीगौर की भजन करने वाले के प्रति अधिक प्रसन्नता उत्पन्न होती है यह जाना गया।

प्रभु कह रहे हैं, "जीव की बात क्या, परमाधिकारी ब्रह्मा, शिव आदि भी निरन्तर निताइ के चरणों की वन्दना किया करते हैं। अत: भक्तगण! तुम सभी निताइ के चरणों की भक्ति करना। दूसरी ओर यदि आधे तिल के समान इनके प्रति किसी का भी द्वेष या उपेक्षा रहे तो- वह भक्त होने पर भी कभी भी मेरा प्रिय नहीं है, जानना।" गीता शास्त्र में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के प्रति कहा है, "यो मद् भक्त: स मे प्रिय:" अर्थात् भक्त ही श्रीकृष्ण का प्रिय होता है। श्रीमन्महाप्रभु कह रहे हैं, मेरा भक्त होकर भी या मेरा भजन करके भी यदि किसी की श्रीनित्यानन्द में केवल आधे तिल के समान द्वेष अथवा उपेक्षा रहती हैं तो वह व्यक्ति कभी भी मेरा प्रिय नहीं होता। इस वाक्य से यह ज्ञात हो रहा है कि उसका गौर भजन सम्पूर्ण निष्फल है। निताइ के भजन की बात दूर ही रहे, निताइ के शरीर की हवा जरा सी अंग से लगने पर ही वह अवश्य श्रीकृष्ण को प्राप्त हो जाते हैं। इसके द्वारा यह निगूढ़ वैष्णव सिद्धान्त अवगत हुआ कि श्रीनिताइचाँद के भजन से श्रीगौरांग तथा श्रीराधाकृष्ण की कृपा प्राप्ति तथा उनकी प्राप्ति अत्यन्त सुलभ हो जाती है। श्रीमन्महाप्रभु के परम प्रिय पार्षद श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी चरण का चरित्र ही इसका उत्कृष्ट तथा उज्ज्वल उदाहरण है।

धनाढ्य व्यक्ति की एक मात्र सन्तान श्रीरघुनाथ, सप्तग्राम के शासन कर्ता हिरण्य गोवर्धन मजूमदार की विशाल सम्पदा के एक मात्र उत्तराधिकारी थे, लेकिन वैराग्य उनकी सहजात सम्पदा थी। श्रीभगवच्चणारविन्द-मकरन्द की लालसा में जिनका हृदय व्याकुल था, पार्थिव ऐश्वर्य-सम्पदा तथा भोग विलास की सामग्री उनके लिये नरक से भी बढ़कर अत्यधिक घृणा के योग्य थी। यौवन काल में ही रघुनाथ श्रीमन्महाप्रभु के प्रेम के विशाल आकर्षण से नीलाचल जाकर महाप्रभु के श्रीचरणाश्रय के लिये अत्यधिक बैचेन हो गये थे तथा बार-बार भागने का प्रयास करने पर अन्त में आत्मीय-स्वजनों के द्वारा बिल्कुल बाँध दिये गये थे।

इस अवसर पर एक दिन उन्होंने सुना कि, श्रीमन्महाप्रभु के आदेश से प्रेम प्रचार के लिये प्रेम के पागल श्रीनिताइ चाँद प्रेम विह्वल पार्षदों के साथ गौड़ में आकर पाणिहाटी ग्राम में अद्भुत प्रेमदान लीला कर रहे हैं। रघुनाथ

व्याकुल चित्त से प्रभु निताइचाँद के दर्शन की आकांक्षा से पाणिहाटी की ओर रवाना हो गये तथा वहाँ गंगा के किनारे वृक्ष के तले विशाल वेदी पर बैठे हुये विशाल तेज: पुंज कलेवर प्रेममय प्रभु श्रीश्रीनिताइचाँद का दर्शन प्राप्त किया। उन्हें घेरकर वेदी के ऊपर तथा नीचे अनेकों प्रेम विह्वल पार्षदगण संकीर्तन कर रहे थे। सभी का तेज पूर्ण शरीर था तथा वे अद्‌भुत अश्रु, पुलक, कम्पादि सात्त्विक विकारों से सुशोभित थे। प्रभु का प्रभाव देखकर रघुनाथ विस्मृत हुये तथा दूर से ही प्रभु के चरणकमलों को लक्ष्य करके धरती पर लोट गये। प्रभु का कोई सेवक यह देखकर बोला– 'प्रभु! वो देखो, दूर से रघुनाथ आपको दण्डवत् कर रहे हैं।' प्रभु ने सेवक की बात सुनकर रघु को पास बुलाया। प्रभु का प्रभाव देखकर संकोच वश रघुनाथ निकट न जाकर दीनातिदीन भाव से कृतांजलि पुट होकर दूर खड़े रहे। अपार करुणा के सागर प्रभु ने स्वयं उनको आकर्षण करके लाकर ब्रह्मा-महेश्वर आदि के भी वांछित संसार के ताप का शमन करने वाला अपना सुशीतल श्रीचरणरविन्द युगल श्रीरघुनाथ के सिर पर रख दिया। त्रैलोक्य दुर्लभ निताइ के चरणों को सिर पर धारण करने का महासौभाग्य प्राप्त करके रघुनाथ कृत कृत्य हो गये। श्रीचैतन्यचरितामृत में वर्णित है—

शुनि प्रभु कहे-चोरा! दिलि दरशन।
आय आय आजि तोरे करिमु दण्डन॥
प्रभु बोलाय, तेहों निकट ना करे गमन।
आकर्षिया तार माथे धरिल चरण॥
कौतुकी नित्यानन्द सहजे दयामय।
रघुनाथे कहे किछु हइया सदय॥
निकटे ना आइस मोर भाग दूरे दूरे।
आजि लागि पाइयाछों दण्डिमु तोमारे॥
दधि चिड़ा भक्षण कराह मोर गणे।
शुनि आनन्दित हैल रघुनाथ मने॥

हास्य रसिक प्रभु निताइचाँद करुणा कोमल स्वर में परिहास करते हुये बोले, 'चोरा! तुम दूर-दूर रहते हो, मुझसे नहीं मिलते हो। आज तुम पास मिल गये हो, तुम्हें चोरी के लिये यथायोग्य दण्ड दान करुँगा। आज मेरे गणों को दही चिड़वा खिलाओ।' प्रभु ने रघुनाथ को 'चोरा!' कहकर सम्बोधित किया। जिस प्रकार चोर दूसरों के धन को चुपके से चुराता है, उसी प्रकार

निताइ के धन गौरचरणों को, उन्हें बताये बिनाही इतने दिन रघु ने प्राप्त करने का प्रयास किया है। वास्तव में निताइ अगर कृपा करके न दें तो कोई भी गौरचरण नहीं प्राप्त कर सकता। इसीलिये प्रभु ने रघु को 'चोर' कहकर सम्बोधन किया।

रघुनाथ साधारण चोर नहीं हैं, वह प्रेमभक्ति के चोर हैं; इसीलिये उनके प्रति दयालु प्रभु निताइचाँद का दण्ड भी अत्यन्त ही कल्याणकारी तथा शुभ है। श्रीनिताइचाँद की करुणा के साथ उनके पार्षद महाप्रेमी, परम महद् वैष्णवगणों की सेवा के कारण उनकी कृपारूपी मणिकांचन का संयोग रघु के सभी प्रकार के बन्धनों का खण्डन करके शीध्र ही गौर चरण प्राप्त करा देगा– करुणाघन मूरत प्रभु निताइचाँद के कृपारूपी दण्ड की यह शैली है!

प्रभु के इस कृपा दण्ड को रघुनाथ ने उनके प्रति प्रभु की परम करुणा ही समझी। चिड़वा, दही, दूध, मेवावाटी, चीनी, केला इत्यादि के द्वारा महामहोत्सव का अनुष्ठान हुआ। दयालु निताइचाँद रघुनाथ के प्रति कृपा करके उस उत्सव में नीलाचल से उनके प्राणों के प्राण श्रीगौरांग को आकर्षण करके लाये। किसी-किसी महानुभाव ने गौर का दर्शन भी प्राप्त किया। दोनों भाइयों ने पार्षदगणों के साथ रघुनाथ के भक्तिरस-निषिक्त नैवेद्य परम सुख के साथ भोजन किया। सैकड़ों वैष्णव, ब्राह्मण, सज्जन, अतिथि, आगन्तुक प्रभु के प्रसाद से सम्मानित हुये। राघव पण्डित ने कृपा करके दोनों भाइयों का बचा हुआ पात्र रघुनाथ को प्रदान किया। रघुनाथ के प्रति प्रेम के कारण दोनों भाइयों ने रात में भी श्रीराघव पण्डित के घर पर नृत्य, कीर्तन, प्रसाद सेवन आदि किया। उसके पश्चात् महाप्रभु नीलाचल चले गये।

अगले दिन प्रात: प्रभु निताइचाँद के गंगा स्नान करके उस वटवृक्ष के तले बैठने पर रघुनाथ ने साष्टांग प्रणाम करके राघव पण्डित के द्वारा अपने दिल की प्रार्थना प्रभु के चरणों में ज्ञापन करायी—

अधम पामर मुञि हीन जीवाधम।
मोर इच्छा हये - पाङ् चैतन्य चरण॥
वामन हञा येन चान्द धरिबारे चाय।
अनेक यत्न कैनु जाइते कभु सिद्ध नय॥
यत बार पालाङ् आमि गृहादि छाड़िया।
पिता माता दुइ जना राखये बान्धिया॥

तोमार कृपा बिने केह चैतन्य ना पय।
तुमि कृपा कैले ताँरे अधमेहो पाय॥
अयोग्य मुञि निवेदन करिते करों भय।
मोरे चैतन्य देह गोसञि हइया सदय॥
मोर शिरे पद धरि करह प्रसाद।
निर्व्विघ्ने चैतन्य पाङ् कर आशीर्वाद॥ (चै.च.)

राघव पण्डित के द्वारा निवेदित रघुनाथ की दैन्य विनयपूर्ण वाणी सुनकर सहज में दयामय श्रीनिताइचाँद के हृदय में स्थित करुणा का सागर समुच्छ्वसित हो उठा! उन्होंने रघु को पास बुलाकर उनके सिर पर श्रीपाद पद्म अर्पण किया तथा अत्यन्त ही स्नेह, करुणा के साथ बोले—

तुमि ये कराइले एइ पुलिन - भोजन।
तोमाय कृपा करि चैतन्य कैला आगमन॥
कृपा करि कैल दुग्ध चिपीट भक्षण।
नृत्य देखि रात्रे कैल प्रसाद भोजन॥
तोमा' उद्धारिते गौर आइला आपने।
छुटिल तोमार यत विघ्नादि बन्धने॥
स्वरूपेर स्थाने तोमा' करिबे समर्पणे।
अन्तरंग भृत्य करि राखिबेन चरणे॥
निश्चिन्त हइया जाह आपन भवने॥
अचिरे निर्व्विघ्ने पाबे चैतन्य चरणे॥ (चै.च.)

श्रीमन्नित्यानन्द के आशीर्वाद से धन्य रघुनाथ ने अत्यन्त शीघ्र ही सभी बाधा-विपत्तियों को लाँघकर नीलाचल में श्रीमन्महाप्रभु के निकट जाने का सौभाग्य प्राप्त किया। निताइचाँद की कृपा से पुष्ट रघुनाथ को देखते ही प्रभु ने उनको अत्यन्त दुर्लभ रत्न की भाँति वक्ष के साथ जकड़ लिया।

स्वरूपादि सह गोसाञि आछेन बसिया।
हेन काले रघुनाथ मिलिला आसिया॥
अंगने दूरे रहि करेन प्रणि पात।
मुकुन्द दत्त कहे एइ आइला रघुनाथ॥
प्रभु कहे 'आइसे' तेंहो धरिल चरण।
उठि प्रभु कृपाय ताँरे कैल आलिंगन॥
स्वरूपादि सब भक्तेर चरण वन्दिल।
प्रभु कृपा देखि सबे आलिंगन कैल॥ (चै.च.)

रघुनाथ के प्रति प्रभु श्रीनिताइचाँद के "स्वरूपेर स्थाने तोमा' करिबे समर्पण" इस आशीर्वाद को अक्षयश: सत्य किया। अत्यन्त शीघ्र ही रघुनाथ को ब्रजरस माधुर्य में निमग्न करके धन्य करने की अभिलाषा से प्रभु ने ब्रज रस तत्त्व के यथार्थ शिक्षा गुरु यहाँ तक कि साक्षात् ब्रज रस की ही मूर्ति श्रीस्वरूप के हाथों में समर्पण किया। स्वरूप ने महाप्रभु के आदेश को शिरोधार्य करके रघुनाथ को वक्ष के साथ जकड़कर आत्मसात् कर लिया।

रघुनाथेर क्षीणता मालिन्य देखिया।
स्वरूपेर कहे कृपा आर्द्र-चित्त हैञा॥
एइ रघुनाथे आमि सोंपिल तोमारे।
पुत्र-भृत्य रूपे तुमि कर अंगीकारे॥
तिन रघुनाथ नाम हय आमार गणे।
'स्वरूपेर रघुनाथ आजि हैते इहार नामे॥
एत कहि रघुनाथेर हस्त धरिल।
स्वरूपेर हस्ते ताँर समर्पण कैल॥
स्वरूप कहे महाप्रभुर ये आज्ञा हइल।
एत कहि रघुनाथे पुन आलिंगिल॥ (चै.च.)

श्रीमन्नित्यानन्द की कृपा से रघुनाथ के अन्दर अलौकिक वैराग्य तथा अनौखी भजननिष्ठा का उदय हुआ। ज्ञान, वैराग्य समन्वित अपने विमल भक्ति योग के वितरण के लिये जिनका कल्याणमय अवतार है, उन श्रीमन्महाप्रभु के परम अन्तरंग भक्तों में गिने गये रघुनाथ। निताइचाँद का उनके प्रति "अन्त:रंग भृत्य करि राखिबेन चरणे" यह शुभाशीर्वाद भी सफल हुआ। रघुनाथ के क्रमश: उत्कर्ष को प्राप्त कठोर वैराग्य के आचरण तथा अलौकिक भजननिष्ठा को देखकर प्रभु ने अपने प्राणों के समान प्रिय गोवर्धन शिला तथा गुञ्जा (वैजयन्ती) की माला उनको प्रदान किया।

शंकरानन्द सरस्वती वृन्दावन हइते आइला।
तेंहो सेइ शिला, गुञ्जामाला लञा गेला॥
पार्श्वे गाँथा गुञ्जा माला गोवर्द्धन-शिला।
दुइ वस्तु महाप्रभुर आगे आनि दिला॥
दुइ अपूर्व वस्तु पाञा प्रभु तुष्ट हैला।
स्मरणेर काले गले परे गुञ्जामाला॥
गोवर्द्धन-शिला कभु हृदये-नेत्रे धरे।
कभु नासाय घ्राण लय प्रभुधरे शिरे॥

नेत्र जले सेइ शिलाभिजे निरन्तर।
शिलाके कहेन प्रभु कृष्ण कलेवर॥
एइ मत शिला माला तिन वत्सरधरिला।
तुष्ट हैया शिला माला रघुनाथे दिला॥ (चै.च.)

श्रीरघुनाथ को अपने हाथ से यह गुञ्जा माला तथा गोवर्द्धन शिला प्रदान में भाव गम्भीर महाप्रभु का क्या गूढ़ उद्देश्य निहित था- प्रभु की कृपा से रघुनाथ को उसकी उपलब्धि प्राप्त हुई थी। गुंजामाला प्रदान से प्रभु ने रघुनाथ को श्रीराधारानी के चरणों में समर्पण किया तथा गोवर्धन शिला देकर प्रभु ने उनको गोवर्धनवास का इशारा किया- प्रभु की इस कृपा की उपलब्धि प्राप्त करके रघुनाथ बाहरी स्मृति खो बैठे। उन्होंने कायमनो वाक्य से गौरचरणों में आत्म समर्पण किया।

रघुनाथ सेइ शिला माला यवे पाइल।
गोसाञिर अभिप्राय एइ भावना करिल॥
शिला दिया गोसाञि मोरे समर्पिला गोवर्धने।
गुञ्जामाला दिया दिला राधिका चरणे॥
आनन्दे रघुनाथेर बाह्य विस्मरण।
कायमने सेविलेन गौरांग चरण॥ (चै.च.)

क्रमशः रघुनाथ की भजननिष्ठा त्याग, वैराग्य एक धारणा से परे सूक्ष्म राज्य में जाकर प्रविष्ट हो गयी- जो विश्व के त्याग वैराग्य के इतिहास में अत्यन्त ही विरल है। पुरी में महाप्रसाद विक्रय की प्रथा चिरन्तन है। प्रसाद विशेषताओं का जो प्रसाद दो तीन दिन में भी नहीं बिकता था, जो मनुष्यों के आहार के लिये सर्वथा अनुपयुक्त होता था, उसे वे लोग गाय के सामने डाल देते थे। गायें जितना सम्भव होता खाती थीं, जो सब सड़ा गला प्रसाद सड़ी दुर्गन्ध के कारण गायें भी नहीं खा पाती थीं, रघुनाथ सारे दिन भजन करके रात को वह प्रसाद घर लाकर पर्याप्त पानी डालकर धोकर उसमें से गला हुआ हिस्सा धोकर अन्दर जो सूक्ष्म कड़ा अंश प्राप्त करते थे उस प्रसाद को नमक मिलाकर अमृत के समान समझ कर आहार करते थे।

प्रसादान्न पसारिर यत ना बिकाय।
दुइ तिन दिन हैले भात सड़ि जाय॥
सिंह द्वारे गाबी आसे सेइ भात डारो।
सड़ा गन्धे तैलंगा गाइ खाइते ना पारे॥

सेइ भात रघुनाथ रात्रे धरे आनि।
भात पाखलिया पेले दिया बहु पानि॥
भितरेर दृढ़ येइ माजि भात पाय।
लोण दिया माखि सेइ सब भात खाय॥ (चै.च.)

श्रीस्वरूप दामोदर ने एक दिन रघुनाथ का इस प्रकार प्रसाद सेवन दर्शन किया तथा परम सन्तुष्ट होकर उसका थोड़ा सा सेवन करके परितृप्त हुये। श्रीगोविन्द के मुख से श्रीमन्महाप्रभु भी यह समाचार पाकर एक दिन स्वरूप तथा रघुनाथ के प्रसाद सेवन के समय अचानक वहाँ पहुँच गये तथा बोले—

काँहा वस्तु खाओ सभे, आमाय ना देओ केने।
एतबलि एक ग्रास करिल भक्षणे॥
आर ग्रास लैते स्वरूप हाते त धरिल।
तोमार योग्य नहे बलि बले काड़ि निला॥
प्रभु कहे निति निति नाना प्रसाद खाइ।
ऐछे स्वादु आर कोन प्रसादे ना पाइ॥ (चै.च.)

रघुनाथ की महाप्रसाद के प्रति निष्ठा, अलौकिक त्याग वैराग्य तथा भजन निष्ठारूपी साधारण स्वादिष्ट उपकरण समूह गायों के द्वारा भी अवहेलना किये गये सड़े हुये महाप्रसाद के साथ मिलकर श्रीमन्महाप्रभु के लिये इतना स्वादिष्ट हुआ था। अलौकिक त्याग, वैराग्य के अलावा भी निताइ कृपा पुष्ट रघुनाथ दैन्य, निरभिमानता, भजन, साधन, नियम निष्ठा इत्यादि अनन्त गुणों की खान थे।

अनन्त गुण रघुनाथेर के करिबे लेखा।
रघुनाथेर नियम येन पाषाणेर रेखा॥
साढ़े सात प्रहर जाय याँहार स्मरणे।
आहार-निद्रा चारि दण्ड सेहो नहे कोन दिने॥
वैराग्येर कथा ताँर अद्‌भुत कथन।
आजन्म नादिल जिह्वाय रसेर स्पर्शन॥
छिण्डा कानि काँथा बिनु ना परे वसन।
सावधाने प्रभुर कैल आज्ञार पालन॥ (चै.च.)

इस प्रकार कठोर नियम निष्ठा के साथ लम्बे सोलह वर्ष की अवधि तक श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरणों के तले रहकर दिव्योन्मादी श्रीगौरसुन्दर की अद्‌भुत विरह लीला की रसमाधुरी के आस्वादन का सौभाग्य प्राप्त किया

रघुनाथ ने। देखते ही देखते वो सौभाग्य के दिन समाप्त हो गये। नीलाचल का पूर्णचन्द्र अचानक हँसते-हँसते अस्त हो गया। चारों तरफ अन्धकार छा गया। भक्तवृन्द बज्राहत की भाँति स्तम्भित, हतवाक् तथा विरह से जड़वत् हो गये। देखते ही देखते स्वरूप भी अन्तर्धान हो गये। रघुनाथ महा विरह से अधीर होकर प्राण त्याग का संकल्प लेकर श्रीवृन्दावन आये तथा श्रीरूप-सनातन के आदेश से प्राण त्याग का संकल्प छोड़कर श्रीकुण्ड के तट पर भजन रस में निमग्न हो गये। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद ने लिखा है—

वृन्दावने दुइ भाइर चरण देखिया।
गोवर्धने त्यजिब देह भृगुपात करिया॥
एइत निश्चय करि आइला वृन्दावने।
आसि रूप-सनातने वन्दिला चरणे॥
तबे दुइ भाइ ताँरे मरिते ना दिल।
निज तृतीय भाइ करि निकटे राखिल॥
महाप्रभुर लीलायत-बाहिर अन्तर।
दुइ भाइ ताँर मुखे शुने निरन्तर॥
अन्न जल त्याग कैल अन्य कथन।
पल दुइ-तिन माठा करेन भक्षण॥
सहस्र दण्डवत् करेन लये लक्ष नाम।
दुइ सहस्र वैष्णवेर नित्य परणाम॥
रात्रिदिने राधा कृष्णेर मानस सेवन।
प्रहरेक महाप्रभुर चरित्र-कथन॥
तिन सन्ध्या राधाकुण्डे अपतित स्नान।
ब्रजवासी वैष्णवे करे आलिंगन-मान॥
सार्द्ध सप्त प्रहर करे भक्तिर साधने।
चारिदण्ड निद्रा-सेहो नहे कोन दिने॥ (चै.च.)

श्रीपाद रघुनाथ की नीलाचल में असाधारण गौर कृपा की प्राप्ति तथा ब्रजधाम में श्रीराधाकुण्ड तटाश्रय से जिस अद्भुत राधानिष्ठा का उदय हुआ था, वह यहाँ जिस प्रकार निरन्तर श्रीराधा के विरह सागर में मग्न हुये थे, उनकी रचित स्तवावली ग्रन्थ के विलाप कुसुमांजलि इत्यादि स्तव समूह ही इसका ज्वलन्त साक्ष्य प्रदान किया करते हैं। ग्रन्थ विस्तार के भय से हमने यहाँ उसकी आलोचना नहीं की। जिनकी इसे विशद्रूप से जानने की इच्छा

है, वे मेरे द्वारा सम्पादित, स्तवावली, विलाप कुसुमांजलि इत्यादि ग्रन्थों का पाठ कर सकते हैं। श्रीपाद रघुनाथ की इन सब असाधारण भजन सम्पत्ति के मूल में निहित था उनके प्रति श्रीश्रीनिताइचाँद की अपार करुणा तथा हार्दिक आशीर्वाद, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद ने अपने उदाहरण में सामान्य कारण अथवा कारण के आभास मात्र से ही निताइचाँद की असाधारण करुणा की बात श्रीचैतन्यचरितामृत में व्यक्त करके जहाँ निताइ वहीं 'श्रीकृष्ण हैं' इस सन्दर्भ में उत्कृष्ट उदाहरण प्रदान किया है।

श्रीकविराज गोस्वामीपाद के उनके पूर्वाश्रय झामटपुर गाँव में रहते समय उनके घर में एक दिन अहोरात्र संकीर्तन का आमन्त्रण प्राप्त होकर श्रीनित्यानन्द के पार्षद महा प्रेमाविष्ट श्रीमीनकेतनरामदास का शुभागमन हुआ था, वैष्णव गणों के उनकी श्रीचरण वन्दना करने पर प्रेमाविष्ट दशा में वह किसी के ऊपर चढ़ जाते थे, किसी को वंशी से मारते थे, फिर किसी को धौल भी जमाते थे। उनके जिस नेत्र में जिसको मन होता था वह उनके उसी नेत्र में अविरल अश्रु की धारा देख पाते थे। एक ही समय में उनके किसी अंग में पुलक, किसी अंग में कम्प, किसी अंग में जड़ता इत्यादि असाधारण सात्त्विक विकार दिखायी पड़ता था, वह जब 'नित्यानन्द' कहकर हुंकार करते थे तब सभी का चित्त चमत्कृत हो जाता था।

उत्सव की समाप्ति पर श्रीरामदास के साथ कविराज गोस्वामी के भाई का नित्यानन्द तत्त्व के सम्बन्ध में कुछ वादानुवाद हो गया। उनके भाई का श्रीमन्महाप्रभु में दृढ़ विश्वास रहने पर भी नित्यानन्द में वैसा विश्वास नहीं था- यही वादानुवाद का कारण था। इस पर श्रीकविराज गोस्वामी ने उनके भाई की भर्त्सना की थी। रामदास दु:खी होकर वंशी तोड़कर चले गये। नित्यानन्द में अविश्वास तथा उनकी भक्त के प्रति अवज्ञा के कारण उसी समय उनके भाई का सर्वनाश हुआ था। इधर उस कारण के आभास से ही श्रीकविराज गोस्वामी के प्रति अहैतुकी करुणामृत की धारा बरसी थी, हम उसे श्रीकविराज गोस्वामीपाद की अमृतमयी वाणी में ही आस्वादन करेंगे।

भाइ के भर्त्सिनु मुञि लञा एइ गुण।
सेइ रात्रे प्रभु मोरे दिला दरशन॥
नैहाटि निकटे झामट पुर नामे ग्राम।
ताहा स्वप्ने देखा दिल नित्यानन्द राम॥
दण्डवत् हइया आमि पड़िनु पायेते।

निज पादपद्म प्रभु दिला मोर माथे॥
उठ उठ बलि मोरे बले बार बार।
उठि ताँर रूप देखि हैनु चमत्कार॥
श्याम-चिक्कण कान्ति प्रकाण्ड शरीर।
साक्षात् कन्दर्प यैछे महा मल्ल वीर॥
सुबलित हस्त-पद कमल लोचन।
पट्ट वस्त्र शिरे पट्ट वस्त्र परिधान॥
सुवर्ण कुण्डल कर्णे स्वर्णांगद बाला।
पायेते नूपुर बाजे कण्ठे पुष्प माला॥
चन्दन लेपित अंग तिलक सुठाम।
मत्त गज जिनि मदमन्थर पयान॥
कोटि चन्द्र जिनि मुख उज्ज्वल वरण।
दाड़िम्ब बीज सम दन्त ताम्बूल चर्व्वण॥
प्रेमे मत्त अंग डाहिने वामे दोले।
कृष्ण कृष्ण बलिया गम्भीर बोल बोले॥
रांगा यष्टि हस्ते दोले येन मन्त सिंह।
चारि पारो बेड़ियाछे चरणेते भृंग॥
पारिषद गणे सब देखि गोप वेश।
कृष्ण कृष्ण कहे सबे सप्रेम आवेश॥
शिंगा बंशी बाजाय केह, केह नाचे गाय।
सेबक जोगाय ताम्बूल चामर ढुलाय॥
नित्यानन्द स्वरूपेर देखिया वैभव।
किवा रूप गुण लीला अलौकिक सब॥
आनन्दे विह्वल आमि किछु नाहि जानि।
तबे हासि प्रभु मोरे कहिलेन वाणी॥
'अये अये कृष्ण दास' ना करत भय।
वृन्दावने जाह ताहाँ सर्व लभ्य हय॥
एत बलि प्रेरिला मोरे हात सानि दिया।
अन्तर्ध्वनि कैला प्रभु निज गण लञा॥
मूर्च्छित हइया मुइ पड़िनु भूमिते।
स्वप्न भंग हैले देखि हैयाछे प्रभाते॥
कि देखिनु कि शुनिनु-करिये विचार।

प्रभु आज्ञा हैल वृन्दावन जाइबार॥
सेइ क्षणे वृन्दावने करिनु गमन।
प्रभुर कृपाते सुखे आइनु वृन्दावन॥
जय जय नित्यानन्द नित्यानन्द राम।
याँहार कृपा ते पाइनु वृन्दावन धाम॥
जय जय नित्यानन्द जय कृपामय।
याँहा हैते पाइनुरूप सनातनाश्रय॥
याँहा हैते पाइनु रघुनाथ महाशय।
याँहा हैते पाइनु श्रीस्वरूप आश्रय॥
सनातन कृपाय पाइनु भक्तिर सिद्धान्त।
श्रीरूप-कृपाय पाइनु भक्तिरस प्रान्त॥
जय जय नित्यानन्द-चरणारविन्द।
याँहा हैते पाइलाम श्रीराधागोविन्द॥
जगाइ माधाइ, हैते मुञि से पापिष्ठ।
पुरीषेर कीट हैते मुञि से लघिष्ठ॥
मोर नाम शुने येइ, तार पुण्य क्षय।
मोर नाम लय येइ, तार पाप हय॥
एमन निर्घृण मोरे केवा कृपा करे।
एक नित्यानन्द बिनु जगत-भितरे?॥
प्रेममत्त नित्यानन्द कृपा अवतार।
उत्तम अधम किछु ना करे विचार॥
ये आगे पड़ये तारे करये निस्तार।
अतएव निस्तारिला मो-हेन दुराचार॥ (चै.च.)

श्रीमन्नित्यानन्द के श्रीचरणों के आश्रय के बिना श्रीगौरांग तथा श्रीराधाकृष्ण की करुणा की प्राप्ति सर्वथा ही असम्भव है। इसीलिये श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय ने उनकी प्रार्थना के पदों में गौड़ीय वैष्णवगणों के सम्बन्ध तत्त्व के निर्धारण के प्रसंग में कहा है—"धन मोर नित्यानन्द, पति मोर गौरचन्द्र, प्राण मोर युगल किशोर।" इस पद्यांश में अपने उपास्य तत्त्व के प्रति निष्ठा प्रकट की है श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय ने। गौड़ीय वैष्णवगणों का एक साथ श्रीश्रीगौर-निताइ तथा श्रीश्रीराधागोविन्द आराध्य तत्त्व है। श्रीश्रीनिताइ-गौर की उपासना के बिना अत्यन्त रहस्यमय श्रीराधामाधव की आराधना में अधिकार नहीं प्राप्त किया जा सकता, क्योंकि ब्रह्मा-महेश्वर आदि के लिये

भी दुर्गम तथा दुर्लभ श्रीयुगल उपासना इस विशेष कलि में श्रीश्रीनिताइ गौर का ही अवदान है।

श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय पतिव्रतानारी के दृष्टान्त से श्रीश्रीगौरगोविन्द के चरणों में अपनी निष्ठा प्रकट कर रहे हैं। पतिव्रता नारी को पति की सेवा के लिये धन की अत्यन्त आवश्यकता होती है, धन के बिना कभी भी पति की सेवा सम्भव नहीं है। फिर केवल धन रहने से भी नहीं चलेगा, पति जीवित तथा स्वस्थ रहना चाहिये। क्योंकि पति के बिना पतिव्रता की दुनियाँ सूनी है। सबसे ऊपर उसका अपना पति जीवित रहना जरूरी है, क्योंकि शरीर में प्राण न रहने पर आराध्य देवता पति ही उसके उस शरीर को जला देंगे। अत: पतिव्रता का धन, पति तथा प्राण तीनों ही समान रूप से काम्य हैं। उसी प्रकार गौड़ीय वैष्णवगणों के श्रीनित्यानन्द, श्रीगौरांग तथा श्रीराधामाधव एक साथ उपास्य हैं।

श्रीनिताइ उनका धन हैं। निताइ के भजन के द्वारा ही उनका श्रीगौरांग का भजन, उनकी सेवा या गौरांग को सुख प्रदान करना सम्भव है क्योंकि नित्यानन्द तत्त्व में एक बूँद भी उपेक्षा या उदासीनता रहने पर श्रीगौरांग का पर्याप्त भजन करने पर भी गौर की प्रसन्नता कभी भी सम्भव नहीं है। हमने इससे पहले इस विषय की विशद आलोचना की है।

श्रीश्रीगौरांग गौड़ीय-वैष्णवरूपी पतिव्रता रमणियों के पति के समान है। पति के बिना जिस प्रकार पतिव्रता की दुनियाँ सूनी है, उसके रूप, गुण आदि को धिक्कार है; उसी प्रकार गौरांग के बिना गौड़ीय वैष्णवों का सब कुछ सूना है तथा उनके सम्पूर्ण सद्गुण आदि सभी का धिक्कार हो जाता है! श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद ने लिखा है—

कदा शौरे गौरे वपुषि-परम प्रेम रसदे
सदेक प्राणे निष्कपट कृत भावोऽस्मि भविता।
कदा वा तस्या लौकिक सदनुमानेन मम हृद्य-
कस्मात् श्रीराधापद नखमणि ज्योतिरुद्गत॥

(श्रीचैतन्य चन्द्रामृतम्-68)

अर्थात् "श्रेष्ठ ब्रज रस प्रदाता, साधुजनों के एक मात्र प्राण-स्वरूप, श्रीकृष्ण के श्रीगौर विग्रह में कब मेरी निष्कपट प्रेमभक्ति होगी, उस निष्कपट प्रेम के अलौकिक सदनुमान के द्वारा कब अचानक मेरा हृदय श्रीराधा के पद नख मणि की ज्योति से समुद्भासित हो उठेगा?" जो सोचते हैं, जब श्रीगौरांग

श्रीराधाकृष्ण का मिलित विग्रह हैं, तब गौरांग की आराधना से ही श्रीराधामाधव की आराधना हो जायेगी, अलग से और श्रीराधाकृष्ण की आराधना की क्या आवश्यकता है? वे समझ कर देखें कि, निश्चय ही उनकी गौर आराधना निष्कपट आराधना नहीं है। निष्कपट रूप से गौर-आराधना सम्पन्न होने पर दिल में ब्रज प्रेम माधुरी के आस्वादन की आकांक्षा या इच्छा प्रबल हो उठेगी ही। फिर कोई-कोई सोचता है, श्रीराधा कृष्ण ही जब प्रेम का विषय तत्त्व हैं, श्रीगौरांग आश्रय तत्त्व हैं, उन्होंने भक्त के भाव से ब्रज रस का आस्वादन किया है अत: श्रीराधाकृष्ण ही आराध्य हैं, गौरांग नहीं। उनकी आराधना भी निष्कपट नहीं है, क्योंकि श्रीगौरांग ही श्रीराधाकृष्ण के प्रेम के प्रदाता हैं, उनकी आराधना के अलावा किसी की भी राधा-कृष्ण के भजन में प्रवेश प्राप्ति ही सम्भव नहीं है। श्रीनिताइचाँद के पादपद्मों के आश्रय से कभी साधक के मन में उक्त प्रकार की भ्रान्ति नहीं जागती है। वे ही कह सकते हैं- "धन मोर नित्यानन्द, पति मोर गौरचन्द्र, प्राणभोर युगलकिशोर", इसीलिये श्रीगौरसुन्दर ने श्रीमुख से कहा है, "परम सुसत्य तुमि यथा कृष्ण तथा।"

महामहैश्वर्य- माधुर्य के अतल स्पर्शसिन्धु श्रीमन्नित्यानन्द की महिमा का वर्णन मेरे जैसे अज्ञ, अयोग्य व्यक्ति के लिये बिल्कुल ही असम्भव है, यहाँ तक कि अत्यन्त हास्यास्पद प्रयास मात्र है, यह कहना ही उचित है। फिर भी कुछ महानुभावों की आज्ञा से तथा प्रेरणा से इस भारी कार्य में हस्तक्षेप करके श्रीमन्नित्यानन्द की उत्ताल तरंग से युक्त कल्लोल कोलाहल में मतवाले महिमासिन्धु के तट पर खड़े होकर विस्मय से हतवाक् तथा स्तम्भित हुआ हूँ केवल। समझ गया हूँ, उस महिमा सिन्धु में अवगाहन तो दूर, उसकी एक बूँद का स्पर्श करने की योग्यता या अधिकार मेरा नहीं है। दूर से उस सिन्धु के लिये प्रणाम करके वर्णन को विराम दिया। जो लिखा है, महामहिमा श्रीमन्नित्यानन्द का गूढ़ गम्भीर माहात्म्य उससे अत्यधिक तरल हुआ है, पतित पावन, अदोष दर्शी प्रभु श्रीश्रीनिताइचाँद उसके लिये क्षमा करें। श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द-गत प्राण भक्तवृन्द इस दीन जन के प्रति कृपाशीर्वाद का वर्षण करें।

॥ जय निताइ! जय गौर हरि॥